बहुभाषीय देशीय वेबिनार

कला , साहित्य और संस्कृति

5, 6 और 7 नवंबर 2020

भाषा विभाग

नैपुण्या इंस्टिट्यूट ऑफ़ मैनेजमेंट एंड इन्फॉर्मेशन टेक्नोलॉजी

(NIMIT)

भाषा : हिन्दी

ग्रन्थकार

भाषा विभाग

नैपुण्या इंस्टिट्यूट ऑफ़ मैनेजमेंट एंड इन्फॉर्मेशन टेक्नोलॉजी , पोन्गम

पहला संस्करण : मार्च 2021

कुल पृष्ठ : 160

ISBN No. 9789389942170

प्रकाशक

प्रोज़ो पब्लिशिंग

उत्तर प्रदेश - 201301

मुद्रक

एस एम बुक सेन्टर

एस एम कॉम्प्लेक्स

अंगमाली

Introduction

The very concept of organising a Multilingual National Seminar was a dream of the Languages Department, and almost all preparations were made to hold it last year, but unfortunately with the arrival of covid-19, our plans were thwarted, and had to be postponed.

Again this year, in spite of it being a very challenging year, with online sessions, we, as a department thought of realising our dream of organising an online Multilingual webinar in all the three Languages: English, Hindi and Malayalam on three consecutive days: November 5, 6, and 7.

Though it was extremely challenging, our efforts paid off. Eminent speaker and author Dr Pramod K Nayar, University of Hyderabad inaugurated and conducted the first session on literary gerontology, Forget/ting Poetry: Alzheimer's Disease and Much Verse", with an air of freshness to a new domain of study. The second session was by Dr. Babu K Viswanathan, Associate Professor, Sree Shankaracharya University of Sanskrit, Kalady and the third session was conducted by Dr Fr Sunil Jose, Assistant Professor, St Joseph's College, Devagiri. The discussion was on the nuances in art and literature.

The responses from the audience was overwhelming and we had a number of paper presentations in all the three languages.

We also planned to release three ISBN journals with the names En-Contours (English), Naihika(Hindi), and Bodhika(Malayalam). The best papers after intense scrutiny have been published in this book. The work was never easy, but the stakeholders consistently persevered to make this a reality. Let me extend a word of gratitude to the coordinators of this endeavour, who spent sleepless nights working on it. Ms Lekha Willy, Dr Tessy Poulose and Ms Rejitha Ravi and all the other Department team members who have relentlessly spent time and their effort to see this venture to fruition.

Let me also thank Professor Mr. Philip P. J for his constructive suggestions and inputs in the successful running of this webinar. I also thank the Management and staff of Naipunnya who wholeheartedly supported the Department to organise the webinars and to publish the journals.

A big thank you to the audience of the webinars and the paper presenters. We could not have achieved our dream without you.

Ms. Grace K Benny
Head of the Department
Department of Languages
NIMIT

'समकालीनता ' एक दृस्टि है। अपने समय को, अपने समय के जीवन को समझने एवं व्यवस्थापित करने की एक नयी दृष्टि के रूप में ' समकालीनता ' को रेखांकित किया जा सकता है। समय समय के सिद्धांत, चिंतन, एवं आशय ' समकालीनता ' को रूपायित करने में अपनी भूमिका अदा करते रहे है। 'आधुनिकता' ने जीवन के केन्द्र में से ईश्वर को अलग करके मनुष्य को वहाँ प्रतिष्ठित किया था तो 'उत्तराधुनिकता ' ने इसकी घोषणा की थी कि मनुष्य, मनुष्यता एवं यथार्थ का खात्मा हो गया है। यंत्रों के विकास से संबद्ध ' आधुनिकता ' की अवधारणाओं को उत्तराधुनिकता ने पूरी तरह से बदल डाला था और 'उत्तर उत्तराधुनिकता ' के इस दौर में हम देख रहे है कि मनुष्य स्वयं यंत्रों से ज्ञान प्राप्त कर रहा हे।

अतीत, वर्तमान एवं भविष्य के नैर्यतर्य पर दृष्टि रखते हुए विकास की संभावनाओँ को मानव के आतंरिक एवं बाहरी विकास के अनुकूल बना दिया जाए तो 'समकालीनता ' का बोध पूर्णतः सार्थक हो उठता है।

हमें खुशी है कि नैपुण्या कॉलेज के भाषा विभाग की तरफ से आयोजित वेब संगोष्ठी में समकालीन साहित्य के कई मुद्दों को 'समकालीनता' के परिप्रेक्ष्य में बड़ी तीव्रता से समझने की कोशिश की गई। उनकी यह कोशिश कई लोगों को प्रेरणा एवं प्रोत्साहन देती रहे तथा साहित्य एवं जीवन के अन्तर्सम्बन्धों को बड़ी सूक्ष्मता से पहचानने में हर किसी की मदद करती रहे। इस वेब संगोष्ठी से सम्बब्धित शोध पत्रिका ' नै हि का ' के लिए मेरी शुभकामनाएँ।

डॉ बाबू के विश्वनाथन
एसोसिएट प्रोफेसर
श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय
कालड़ी

संगोष्ठी आयोजन समिति

रेव. फ़ा. डॉ. पोलचन के जे
(प्रिंसिपल , कार्यकारी निदेशक, NIMIT)

विभागाध्यक्ष
श्रीमती ग्रेस के बेन्नी

वेबिनार समन्वयक
डॉ . टेसी पौलोस

आयोजन समिति
श्रीमती ग्रेस के बेन्नी
श्री . फिलिप पी जे
फा. एंटनी कल्लूकारन
श्री. सेबास्टियन पूनोलिल
श्री. अनु रहीम
डॉ. टेसी पौलोस
डॉ. अम्बिली एम एच

संकलन और संपादन
डॉ. टेसी पौलोस
डॉ. अम्बिली एम एच

अनुक्रमणिका

1. डॉ.चित्रा.पी — पृ.सं.
   साहित्य का सौंन्दर्यशास्त्र:रामविलास शर्मा की अवधारणाएँ — 8
2. डॉ प्रिया ए
   कला , साहित्य और संस्कृति का अद्भुत सामंजस्य 'कोणार्क ' — 11
3. डॉ. लिबी चेरियान
   कही ईसुरी फाग में संस्कृति की झाँक — 18
4. विपिन कुमार वी
   भारतीयता एवं संस्कृति का प्रतीक : 'पद्मावत' — 22
5. जयदेवी. वि.ए
   भारतीय संस्कृति और हिन्दी साहित्य — 26
6. डॉ .सुर्यबोस
   डॉ .रविशर्मा मधुप की 'बूँद –बूँद बनती सरिता' नामक लघु कविता संग्रह में मूल्य की खोज — 40
7. डॉ. विपिन कुमार वी
   आधुनिक समाज और मीडिया विमर्श के आयाम — 45
8. डॉ. कविता वी. राजन
   अस्मितामुलक विमर्श और समकालीन हिंदी दलित कविता — 48
9. डॉ. रंजित एम्
   अरुण कमल की रचनाओं में भारतीयता की तालाश — 55
10. वर्णा एस
    अपवित्र आख्यान आधुनिक राष्ट्र और राजनीति का सही आख्यान — 60
11. अनिता डी किनी
    'अंधेर नगरी' - हास्य-नाटक की कथा-वस्तु, राजनीतिक संदर्भ, भाषा-प्रयोग — 69
12. डॉ. सोनिया.एस
    अज्ञेय के यात्रावृत्तान्त के परिप्रेक्ष्य में भारतीय संस्कृति: एक झलक — 73
13. डॉ. सीमा एस
    राही मासूम रजा के उपन्यास में बेरोजगारी और यथार्थ — 76
14. डॉ. प्रसीजा एन.एम्
    मेहरुन्निसा परवेज़ के उपन्यासों में चित्रित सांस्कृतिक पक्ष — 79
15. डॉ गायत्री के
    नवें दशक की कहानियों में मानवीय संबंध (महिला लेखन का संदर्भ) : एक सामान्य परिचय — 82

16. अश्वति ए के
राजेंद्र यादव के 'सारा आकाश' उपन्यास में चित्रित मध्यवर्गीय आर्थिक समस्या 86
17. कृष्णप्रिया
पोस्ट कोलोनियल दुनिया : सच्च या झूठ 90
18. एंजेल रॉय
संजीव कुमार मित्रा और वर्तमान परिदृश्य 92
19. डॉ.सुनिता एम.एस
'पारिस्थितिक नारीवाद' सांस्कृतिक परिदृश्य में नवीन अवधारणा 96
20. डॉ. जितेंद्र पायसी
कला, साहित्य और संस्कृति 100
21. सजना वी.ए
हिंदी हाइकु कविता में पर्यावरण बोध 104
22. डॉ. अजित एस भरतन
हिंदी साहित्य : वैश्वीकरण का प्रभाव 112
23. सचिन के सजी
भारतीय संस्कृति हमारी पहचान 114
24. ऐश्वर्या अनिलकुमार
राकेश कुमार सिंह के उपन्यासों में चित्रित आदिवासी संस्कृति और कला 116
25. डॉ लीना सामुएल
मानवीय संस्कृति को बचाने की कोशिश करती कलात्मक अभिव्यक्ति 125
26. अजिता कुमारी ए आर
महिला रंगकर्मी अमाल अल्लाना का योगदान - एक झलक 132
27. तंकम्मा एम एस
कमल कुमार की कहानियों में स्त्री अस्मिता की तलाश 138
28. राधिका आर वी
कला , साहित्य और संस्कृति 145
29. डॉ. अश्वति. वी.के
हिन्दी कहानियों में आदिवासी विमर्श 150
30. डॉ. अबिंली. एम. एच
'इदन्नमम' में स्त्री का प्रतिरोधी स्वर 152
31. डॉ. टेसी पौलोस
'भूमिका और अन्य कहानियाँ ' में चित्रित सामाजिक समस्याएँ 156

साहित्य का सौंन्दर्यशास्त्र:रामविलास शर्मा की अवधारणाएँ

डॉ.चित्रा.पी
प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय, कालडी

मनुष्य के इन्द्रियबोध का संसार बहुत विशाल है । इन्द्रियबोध की व्यापकता की वजह से ही ललित कलाएँ देशकाल की सीमा पार करके सार्वजनीन तौर पर लोकप्रिय बनती हैं । लेकिन सौंन्दर्य इन्द्रियबोध तक सीमित नहीं है । भावजगत और विचारजगत में भी सौंन्दर्य की सत्ता है । कलाकार का सौंन्दर्यबोध भौतिक सामाजिक संबंधों से प्रेरित होता है । अपनी मेहनत पर जीनेवाले मनुष्य के लिए सौंन्दर्य कर्ममय जीवन से बाहर नहीं होता ।

हिन्दी आलोचना को नये आयामों में विकसित करनेवाले आलोचक हैं डॉ. राम विलास शर्मा । साहित्य के समाज शास्त्रीय अध्ययन की रुझान उनकी आलोचना की मुख्य पहचान है । उनके साहित्य सिद्धांत के रूपायन में मार्क्सवादी चिंतन का सक्रिय योगदान है । उनके अनुसार मार्क्सवाद समाज को समझने और उसे बदलने का विज्ञान है । भारतीय समाज को समझने के लिये एक दृष्टिकोण प्रदान करनेवाली विचारधारा के रूप में मार्क्सवाद उनके लिये महत्वपूर्ण है । मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र का सैद्धातिंक विवेचन करते हुए उन्होंने सौंन्दर्यबोध को सामाजिकता से जोडा है । डॉ. शर्मा के अनुसार साहित्य वैयक्तिक आत्मिक प्रयास नहीं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक प्रक्रिया का अंग है । साहित्य में वैयक्तिक मूल्यों की नहीं, सामाजिक मूल्यों की स्वीकृति रहती है । वैयक्तिकता और सामाजिकता को वे एक- दूसरे का पूरक मानते हैं । "मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास उसके सामाजिक जीवन से संभव हुआ है, इसलिए व्यक्ति और समाज की स्वाधीनता परस्पर विरोधी न होकर एक- दूसरे के आश्रित है ।"[1] काव्य के कलात्मक सौंन्दर्य को निखारने वाला तत्व भी विषयवस्तु की सामाजिकता ही है ।

डॉ. शर्मा के अनुसार कला का चरम मूल्य सौंन्दर्य नहीं, मानव मूल्य है । मानवीयता के आधार पर ही वे सौंन्दर्य को भी परिभाषित करते है । प्रकृति, मानव जीवन तथा लालित कलाओं के आनंददायक गुण को वे सौंन्दर्य की संज्ञा देते हैं । जीवन में जो असुंदर या कुरूप है, कला में उसकी भी परिणति सौंन्दर्य में होती है । डॉ. शर्मा सौंन्दर्यशास्त्र का मानव जीवन से गहरा संबध मानते हैं । इसके अन्तर्गत साहित्य तथा अन्य ललित कलाओं में वर्णित सौंन्दर्य के अलावा मानव जीवन और प्रकृति का भी सौंन्दर्य आता है । सौंन्दर्यशास्त्र में सौंन्दर्य और उसकी अनुभूति का जो विवेचन प्राप्त होता है उससे हमारी सौंन्दर्य चेतना का विकास होता है, मानव जीवन और उसके सामाजिक तथा प्राकृतिक परिवेशा और

सुंदर बन जाता है ! "सौंन्दर्यबोध एक संश्लिष्ट इकाई है । सौंन्दर्य प्रकृति में है, मनुष्य के मन में भी उसकी अनुभूति व्यक्तिगत होती है, समाजगत भी । व्यक्ति समाज का अंग है, इसलिए न तो समाज निरपेक्ष व्यक्ति की सत्ता होती है, न समाज निरपेक्ष सौंन्दर्यानुभूति की संभावना होती है ।"[2] डॉ. शर्मा के मत में कला के माध्यम के अनुरूप उसकी विषयवस्तु में इन्द्रियबोध, भाव या विचार का अनुपात निश्चित होता है । कलाकार का सौंन्दर्यबोध भौतिक सामाजिक संबंधों से प्रेरित आर्थिक सौंन्दर्य का रूप होता है । अपनी मेहनत पर जीनेवाले मनुष्य के लिए सौंन्दर्य कर्ममय जीवन से बाहर नहीं होता। जीवन की कठोर परिस्थितियाँ मनुष्य की सौंन्दर्यवृत्ति को कुंठित कर देती हैं । मार्क्सवाद को केवल उपयोगितावादी सिद्धांत मानने को डॉ. शर्मा तैयार नहीं । "मार्क्सवाद पर अक्सर यह आरोप लगाया जाता है कि उसे उपयोगितावाद के अलावा सौंन्दर्य से काम नहीं । लेकिन सौंन्दर्य का विरोधी कौन है, वे जो करोडों आदमियों को गरीबी और भुखमरी के हवाले करके उनकी सौंन्दर्यवृत्तियाँ कुंठित कर देते हैं या वे जो उनकेलिए भी इनसान की ज़िन्दगी चाहते हैं, उनके अधिकारों के लिए लडते हैं उस समाज की रचना करते हैं जहाँ मनुष्य की सौंन्दर्यवृत्ति कुंठित न होकर पल्लवित हो सके।"[3] इससे यह स्पष्ट है कि मार्क्सवादी सौंन्दर्य चेतना ऐन्द्रियता का विरोध नहीं करती । वह जीवन और साहित्य में आनंद को स्थान देने के पक्ष में हैं। लेकिन शाश्वत सौंन्दर्य की खोज में सामाजिकता या सामयिकता को नकारना समीचीन नहीं है । क्योंकि किसी भी कृति के कलात्मक सौंन्दर्य का निखार उसकी विषयवस्तु की सामाजिकता से जुडा है । सौंन्दर्य और उपयोगिता में विरोध मालूम पडता है, पर उनकी एकता के बिना साहित्य – रचना असंभव है ।

डॉ. शर्मा के मत में चूँकि सौंन्दर्य समाज सापेक्ष्य अनुभूति है, इसलिए कलाकार का सौंन्दर्यबोध आर्थिक जीवन से प्रभावित तो है, पर उसे आर्थिक जीवन का यांत्रिक प्रतिबिंब नहीं मान सकते । "सौंन्दर्य का स्रोत जनता है । समाज के भीतर जो जीर्ण और मरणशील तत्व है, जो जीवंत और उदीयमान तत्व है, इनसे बाहर सुन्दर –असुन्दर की सत्ता नहीं है । जो जीर्ण और मरणशील है उनकेलिए सुन्दरता मृत्यु में है, अन्याय और अत्याचार को फरेब से ढकने में है, भविष्य से त्रस्त होने और क्षण में ही जीवन की साधें पूरी करने में है, अज्ञान और अत्याचार और अन्याय की दुनिया को दफनाने में है, सुख और शांति के उज्ज्वल भविष्य की ओर बढने में है । साहित्य उस मंज़िल तक पहुँचने का शक्तिशाली साधन है ।"[4]

सौंन्दर्य की सत्ता को वस्तुगत मानने के कारण डॉ. शर्मा के अनुसार शुद्ध सौन्दर्य नाम की कोइ चीज़ नहीं होती। "जैसे मनुष्यों से बाहर मनुष्यता की सत्ता नहीं है , वैसे ही सुंदर वस्तुओं (या सुंदर भावों, विचारों) से बाहर सौंन्दर्य की सत्ता नहीं है । और तमाम सुंदर वस्तुएँ तमाम सुंदर भाव , विचार मनुष्य के लिए , उसकी सेवा करने केलिए उसका हित साधने के लिए हैं, मनुष्य उन सुंदर वस्तुओं, सुंदर भावों, विचारों के लिए उंनकी सेवा करने के लिए नहीं है । साहित्य भी मनुष्य के लिए है, साहित्य का सौंन्दर्य मनुष्य के उपयोग के लिए है, मनुष्य साहित्य के लिए नहीं है ।"[5]

मार्क्सवाद के धारातल पर खडे होकर डॉ. शर्मा ने हिन्दी आलोचना को प्रगतिशील जनवादी परंपरा से जोडने का कार्य किया है । अपने समय के साहित्य की मूल्यवत्ता एवं अर्थवत्ता का निर्धारण करते हुए, रचना और आलोचना की ज़िम्मेदारी का एहसास दिलाते हुए उन्होंने अपनी आलोचना दृष्टि को तार्किक और वैज्ञानिक सिद्ध कर दिया है । हिन्दी की सैद्धांतिक आलोचना को शास्त्रीय दुरूहता से मुक्त कर सामाजिक चिन्तन के पक्ष में खडा करने में डॉ. शर्मा की अहम भूमिक रही है । सौंन्दर्यशास्त्र को समाजशास्त्र से संपृक्त करके हिन्दी आलोचना के लिए एक नए मानदंड प्रस्तुत करने में डॉ. शर्मा का अवदान निश्चय ही महत्वपूर्ण है ।

भूमंडमलीकरण के वर्तमान दौर में सौंन्दर्य की धारणाएँ लगातार परिवर्तित होती रहती हैं । जैसे शंभुनाथ के शब्दों में "आज कला एक तरह से "पूँजी" है । वैश्वीकरण के अर्थतंत्र ने सौंन्दर्यशास्त्र को अपने कब्ज़े में ले लिया है और बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ ही बता रही है कि क्या सुन्दर है, उनके कब्ज़े में विकसित तकनीक भी है, जिसके बल पर दुनिया को डिजिटल संस्कृति से घेरा जा रहा है वैश्वीकरण के वर्तमान संस्कृतिक प्रभामंडल को लेकर आनंद और मातम दोनों के दृश्य एक – साथ देखने को मिलेंगे । इस परिदृश्य में निस्संदेह सौंन्दर्य की परंपरागत अवधारणाओं की पुनःप्रतिष्ठा की चीखें भी ज़िन्दा है ।"[6]

बदलती हुई परिस्थितियों में इतिहास, संस्कृति, लेखन, समीक्षा विचाराधारा सभी के अंत की घोषणाओं की भरमार में सौंन्दर्य की संकल्पनाओं की पुनः परीक्षा एवं परिष्कार के लिए भी समय और स्थान निकालना ही पडेगा ।

संदर्भग्रंथ सूची

1. स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य, पृष्ठ. 33
2. हिन्दी की प्रगतिशील आलोचना, पृष्ठ. 132
3. मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य, पृष्ठ. 259
4. मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य, पृष्ठ. 301
5. मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य, पृष्ठ.291
6. आलोचना –जुलाई- सितंबर -2003

कला, साहित्य और संस्कृति का अद्‌भुत सामंजस्य 'कोणार्क'

डॉ. प्रिया ए.
असिस्टेंट प्रोफेसर
के.जी.कॉलेज,पाम्पाडी,कोट्टयम

कला एवं साहित्य, संस्कृति के संवाहक हैं। भारतीय संस्कृति के विभिन्न पक्ष कला और साहित्य के माध्यम से प्रकट होते हैं। साहित्य लेखन भी एक प्रकार की कला है। कला की पूर्णता उसकी रसात्मकता या आस्वादन पक्ष से ही होती है। इस पक्ष के तहत हम पाठक, श्रोता या दर्शक हो, स्थूल जगत से सूक्ष्म की ओर यात्रा करते हैं। आस्वादन पक्ष एक ऐसा मनोवैज्ञानिक पक्ष है, जो हमें कला या साहित्य के माध्यम से आनंद की, या रस निष्पत्ति की चरम सीमा तक ले जाता है। जिस कला में सुकुमारता और सौंदर्य की अपेक्षा रहती है तथा जिसकी सृष्टि मुख्यतः मनोविनोद के लिए हो, ऐसी कलाओं को ललित कलाएँ (Fine arts) कहा जाता है। ललित कला के अन्तर्गत दृश्यकला (Visual arts), मूर्तिकला, चित्रकला, वास्तुकला (Photography) आदि आता है) और प्रदर्शन कला (Performance arts) के अन्तर्गत नृत्य, संगीत, नाट्य, भाषण एवं अभिनय आदि आते हैं। इस मायने में साहित्य का क्षेत्र ललित कलाओं की श्रेणी में आता है।

कला, साहित्य और संस्कृति के समन्वय को जगदीशचन्द्र माथुर का ऐतिहासिक नाटक 'कोणार्क' संपन्न करता है। कोणार्क में दृश्यकला एवं प्रदर्शन कला का एक अद्‌भुत सामंजस्य देख सकते हैं। उसकी कथावस्तु मुख्य रूप से कोणार्क मंदिर की स्थापना को लेकर है। कोणार्क एक भौतिक स्मारक नहीं बल्कि भारत के साँस्कृतिक वैभव का धरोहर है। कोणार्क का सूर्य मंदिर उड़ीसा प्रान्त में चंद्रभागा नदी के सागर संगम पर स्थित है। इस नाटक में नाटककार ने कोणार्क मंदिर के भव्य सौंदर्य एवं शिल्पियों की कलाकृति को विशेष महत्व दिया है। ऐतिहासिक नाटक का प्रमुख पात्र उत्कल राज्य का प्रधान शिल्पी और कोणार्क का निर्माता विशु का कथन है कि ''हमने पत्थर में जान डाल दी है, उसे गति दे दी है। वह भूल रहा है कि वह धरती का पदार्थ है। उसके पैर धरती

पर नहीं टिकते। पत्थर का यह मन्दिर आज कल्पना के स्पर्श से हवा की तरह गतिमान, किरण की तरह स्पर्शहीन, सुगन्ध की तरह सर्वव्यापी हो रहा है।''[1] नाटक के माध्यम से माथुर ने उस समय की तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था का भी वर्णन किया है।

नाटककार ने कोणार्क मंदिर के भव्य सौंदर्य एवं शिल्पियों की कलाकृति को विशेष महत्व दिया है। इस नाटक के माध्यम से रचनाकार ने उस समय के तत्कालीन - सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था को स्पष्ट किया है। शिल्पियों के दण्डाधिकारी द्वारा हाथ कटवाने का आदेश कथा का चरमोत्कर्ष है। इस एकाँकी में पुरुष पात्रों की संख्या अधिक हैं - मुख्य रूप से विशु, धर्मपद, सौम्य, चालूक्य महादण्डाधिकारी राजीव एवं उत्कल नरेश पात्र के रूप में आते हैं।

विशु प्रस्तुत नाटक का प्रमुख पात्र महाशिल्पी था। वह सरल, सहृदय एवं उत्तम विचारों वाला था। कोणार्क मंदिर की स्थापना के लिए अथक प्रयास करता है। धर्मपद को अपना पद देने के लिए भी सहर्ष तैयार होता है। क्योंकि वह महाचालुक्य के दंड से भयभीत था। वह कभी भी नहीं चाहता है कि कोणार्क मंदिर की स्थापना अपूर्ण रहे या शिल्पियों को अकारण ही अपने हाथ गँवाने पड़ें। इस घोर समस्या का समाधान विशु धर्मपद की सहायता से करता है। इस प्रकार विशु एक सहृदय एवं उदार विचारोंवाला कलाकार है एवं कला के प्रति समर्पित व्यक्ति है। धर्मपद एक महत्वाकाँक्षी, निश्छल एवं व्यवहार कुशल युवक है। विपत्ति में वह अपने अपमान की चिन्ता न करते हुए कोणार्क मंदिर में कलश स्थापना का प्रयास करना चाहता है। वह एक कर्तव्यपरायण और आत्मविश्वासी युवक है। उसे ज्ञात था कि कलश की स्थापना करना सरल नहीं है। पर वह एक बार प्रयत्न करके सभी शिल्पियों को दंड से बचाना चाहता है। इस प्रकार चारित्रिक विश्लेषण करने पर नाटक का श्रेष्ठ पात्र धर्मपद को ही मान सकते हैं। पराए दुःख में सहभागी बनना उसके जीवन का मुख्य लक्ष्य है। नरसिंह देव के प्रति धर्मपद की भावना यों है - ''आज ही तो हमारे भाग्य का फैसला है। जिस सिंहासन को तुम आज डावाडोल कर रहे हो, वह हमारे ही तो कन्धों पर टिका है। क्या उस पर वह बैठेगा, जिसके कारण सैकड़ों घर उजड़ चुके हैं, वह जिसने कोणार्क के सौन्दर्य-निर्माता शिल्पियों को ठीकरों से तुच्छ मान ठुकराया? कलिंग हमारा है और उसके अधिपति हैं हमारे प्रजावत्सल नरेश श्री नरसिंहदेव।''[2] महामात्य चालूक्य के क्रूर व्यवहारों के प्रति घृणा यहाँ प्रकट

होती है। चालूक्य को महाराज के पद पर देखना कोई नहीं चाहता है। कलिंग देश के राजा के रूप में वहाँ की जनता नरसिंह देव को ही मानती है।

सौम्य नाट्याचार्य है, इसके कारण वह कलाकार एवं शिल्पियों को सम्मान देता है। उसके मन में शिल्पियों के प्रति भावना को इस संवाद के द्वारा स्पष्टता मिलती है - ''शिल्पी तुम विष्णु हो, शंकर नहीं। निर्माता हो, संहारक नहीं।.... और फिर ये स्तंभ और ये पाषाण। इन्हें तो भूकंप ही गिरा सकता है, अथवा काल की गति।''[3] संसार में निरंतर होनेवाले तीन प्रकार के कार्य उत्पत्ति, पालन और संहार व सृष्टि, स्थिति एवं संहार के उदात्त संकल्प को भी यहाँ प्रतिष्ठित किया है। सौम्य के हृदय में उत्कल नरेश के प्रति सम्मान की भावना है। महाराज चालुक्य (महामंत्री) को वे हृदयहीन व्यक्ति घोषित करते हैं। सौम्य का चरित्र आदर्श एवं उत्तम विचारोंवाला नाट्याचार्य का है।

नाटक के प्रतिनायक के रूप में महामंत्री चालुक्य हमारे सामने उपस्थित है। वह अत्यंत क्रूर एवं दुष्ट प्रवृत्ति का शंकालु व्यक्ति है। उसको किसी भी व्यक्ति के प्रति विश्वास न था। प्रत्येक राज्य कर्मचारी को शंका की दृष्टि से देखता था। उसके मन में कला या कलाकारों के प्रति कोई सम्मान की भावना नहीं है। उसके निर्मम चरित्र का परिचय इस संवाद के द्वारा लक्षित होता है - ''मैं तुम जैसे लोगों को राह पर लाने की युक्ति भलीभांति जानता हूँ। विशु, बरसों से बिन-माँगी प्रशंसा सुनते-सुनते तुम अपने को दंडविधान से परे समझने लगे हो। आज मैं तुम्हारे इस घमंड को चूर करने ही आया हूँ। ...सुन लो और कान खोलकर सुन लो! आज से एक सप्ताह के अन्दर यदि कोणार्क देवालय पूरा न हुआ; तो तुम लोगों के हाथ काट दिए जाएँगे।''[4] यह वाक्य उसके हृदयहीनता एवं क्रूर मानसिकता का प्रतीक है।

उत्कल नरेश नरसिंहदेव को एक कुशल शासक एवं आदर्श विचारों के नेता के रूप में हम देख सकते हैं। वर्तमान समय में भी ऐसे कुशल राजनीतिज्ञ की आवश्यकता समाज की प्रगति के लिए बहुत ज़रूरी है। समाज के सही उन्नायक की भूमिका में नरसिंहदेव का चरित्र शोभित होता है। उनके हृदय की दया व सद्भावना के कारण देश की पूरी प्रजा के दिल में वे बसते हैं। वे कहते हैं कि ''हम महामात्य को आदेश देंगे कि कोई अनुचित बात न होने दें। राज्य के स्तम्भ तो सामन्त और श्रेष्ठीगण हैं, किन्तु निर्धन प्रजा को सुखी रखने में ही हमारी कीर्ति है।''[5] वे महामात्य पर विश्वास करके संपूर्ण राज्य का उत्तरदायित्व सौंप कर बंग विजय के लिए प्रस्थान करते हैं। वे सरल

व सहृदय व्यक्ति हैं। कला एवं कलाकारों के प्रति उनकी उदात्त भावना को यह संवाद प्रस्तुत करता है - ''विह्वल हम हो रहे हैं विशु! यहाँ से तीन कोस पर मन्दिर की गगनचुम्बी पताका को देखकर हम बालकों की भाँति अधीर हो उठे।''[6]

प्रस्तुत नाटक का प्रधान मूर्तिकार पात्र है राजीव। राजीव के कथन के द्वारा हम नाटक के चरित्रों का उचित विश्लेषणात्मक अध्ययन कर सकते हैं। महामंत्री चालुक्य की दुष्टता के कारण वह उन्हें घृणा करता है। उत्कल नरेश एवं अन्य शिल्पियों के प्रति उदारता का भाव रखता है। वह कला का पारखी एवं सम्मान करनेवाला आदर्श पुरुष है। नाटकीय तत्वों के आधार पर प्रस्तुत नाटक सफल एवं उत्तम है।

नाटक की संपूर्ण कथावस्तु कोणार्क के मंदिर निर्माण पर आधारित है। आदि से लेकर अंत तक सबका केन्द्र बिन्दु यह मंदिर ही है। शीर्षक सार्थक और औचित्यपूर्ण हैं। जगदीशचन्द्र माथुर ने प्राचीन कला एवं संस्कृति का जीवंत रूप प्रस्तुत किया है। कला को जीवन-यापन का श्रेष्ठ साधन मानने का संदेश इसमें मिलता है। वास्तविक कलाकार की निष्ठा को भी इसमें व्यक्त किया है। पद लालसा से मुक्त होकर, पद का घमंड या लालच की भावना के अभाव में ही सच्चा कलाकार प्रतिष्ठित होता है। सच्चे कलाकार के मन में मानवता एवं करुणा की लहरें उमड़ने की आवश्यकता को भी वे स्पष्ट करते हैं। लेखक के मन में कला व कलाकार के प्रति जो आदर की भावना है; उसकी सही पहचान पाठक उचित रूप में कर सकता है। सर्वस्व अर्पण करके कलाकारों एवं जन-सामान्य को आनंद की अनुभूति के धरातल पर उतारने के सफल प्रयास अपनी इस नाट्य कृति के तहत संपन्न हुआ है।

तीसरे अंक के साथ नाटक का अंत होता है। कोणार्क मंदिर एवं शिल्पियों पर चालुक्य की सेना द्वारा आक्रमण होता है। एक क्रांति मच जाती है, दुरभिसंधी का एक अपूर्व प्रतिकार जिसमें अपने राज्य के क्षेत्र रक्षण का दायित्व है, कला और अपने आराध्य पर सर्वस्व अर्पित करने का समय आता है। इसमें सभी शिल्पी और सभी मज़दूर शामिल हुए हैं। अंततोगत्वा इस आपद धर्म में सब कुछ नष्ट हो जाता है। बचती है एक खंडित कला, एक अपूरित प्रेम और उसकी रहस्यगाथा। कलाकार के भीतर उपजते तमाम अंतर्द्वन्द्वों का उल्लेख इस नाटक में मिलता है। कलाकार पर

सत्ताधारियों द्वारा होनेवाले हमले को धर्मपद इसप्रकार अभिव्यक्त करते हैं - ''आज शिल्पी पर अत्याचार का प्रहार हो रहा है। कला पर मदान्धता टूट पड़ी है। सौन्दर्य को सत्ता पैरों के तले रौंद रही है। और कोणार्क-आपका सुनहरा सपना, जिस घोंसले में आपके अरमानों का पंछी बसेरा लेने जा रहा था - वही कोणार्क, एक पामर, पापी, अत्याचारी के हाथ का खिलौना बन जाएगा। आतंक के हाथों में जकड़ी हुई कला सिसकेगी। वही कारीगर की सबसे बड़ी हार होगी, सबसे भारी हार।''[7] चालूक्य ने कोणार्क पर हमला करने का षड्यंत्र रचा है। इस समस्या को धर्मपद यहाँ प्रस्तुत करते हैं।

नाटक के अंत में एक सच्चे कलाकार का मानसिक द्वन्द्व देख सकते हैं। प्रमुख पात्र विशु है, पर यह उसका छद्मनाम है। वास्तविक नाम तो श्रीधर है। श्रीधर एक शबर बाला पर आसक्त हो जाता है, लेकिन उसके गर्भधारण करने पर लोक लाज के भय से वह आत्मनिर्वासित होता है। उसके निर्वासन का कारण उसकी भीरुता है। वह दुनिया के प्रश्नों के डर से मुँह छिपाकर भाग जाता है। उसमें विद्रोह करने का सामर्थ्य नहीं था। लेकिन उसके भीतर इच्छाएँ शेष थीं, वासनाओं का ज्वार उभर रहा था, महत्वाकांक्षा हिलोरें ले रही थीं, पर वास्तव में वेदना की मरुभूमी उसे जला रही थी। अब कला ही उसके लिए एकमात्र साध्य और साधन थी, कल्पना ही उसके जीवन का आधार बनी हुई थी। वह निर्णय कर लेता है कि उसे जीना है तो रचना होगा, रचे बिना कुछ नहीं होगा। विशु बारह वर्षों से अनवरत रूप में कोणार्क की रचना में दत्तचित्त होकर लगा हुआ है। उसके साथ बारह सौ अन्य शिल्पी और हज़ारों की संख्या में श्रमिक इस महत्त कार्य में जुडे हैं। अन्न-जल और अनेक आवश्यकताओं की परवाह किए बिना अपूर्व और कालातीत कीर्ती का साक्ष्य कोणार्क मंदिर के पूर्तीकरण के काम में मग्न था। पर नाटक के अंत में सृष्टिकर्ता के हाथों से ही उस मंदिर का संहार भी करने को विवश होता है। इस महान कलाकृति के अंत के साथ-साथ मानवीय कल्पना, मेधा, पराक्रम और त्रासदी युक्त अंत को हम देख सकते हैं। विशु भगवान सूर्य को संबोधित करके कहते हैं कि ''भगवन, मैं यह कैसे सह सकता हूँ? तुम, मेरे, सारे जगत के प्रतिपालक हो; पर मैं यह कैसे भूल सकता हूँ कि मैं तुम्हारा निर्माता हूँ। तुम मेरे देव हो! तुम्हें मेरा कहा करना होगा। कोणार्क शिल्पी की पराजय का प्रतीक नहीं हो सकता। मैं और तुम मिलकर

ऐसा नहीं होने देंगे।...नहीं!''[8] विशु कभी भी चालूक्य जैसे क्रूर व्यक्ति को कोणार्क का स्वामी मानने के लिए तैयार नहीं होता। एक ओर राजा नरसिंह देव की रक्षा और दूसरी ओर कोणार्क मंदिर की रक्षा करना चाहता है।

कोणार्क एक शिल्पी का प्रतिशोध बनकर हमारे सामने उपस्थित होता है। सूर्य प्रकाश का अधिष्ठाता है और प्रसिद्धी का अधिपति भी। यह मंदिर अपने प्रारूप में 24 पहिए का एक विशाल रथ है जिसे सात अश्व खींच रहे हैं। स्थूल भित्तियों पर सूक्ष्म चेष्टाओं के साथ अंकित मुद्राएँ सधे चित्रकार को भी विस्मित कर देती हैं। ऐसे सौन्दर्य के प्रतिरूप कोणार्क मंदिर का सर्वनाश खुद निर्माता के हाथों से ही संभव होता है। नाटक के अंत में कोणार्क को सत्ताधारी चालूक्य के हाथों से बचाने की कोशिश विशु करता है। पर चालूक्य के कुतंत्र ने कोणार्क पर विनाश की जाल बिछा दी। धर्मपद के साथ पूरे शिल्पी पत्थर और अपने हथियारों से चालूक्य से लडने के लिए तैयार हुए। कोणार्क मंदिर की पुण्यभूमि पर एक कूटनीतिज्ञ का शासन बिलकुल शोभा नहीं देता। विशु मानता है कि कोणार्क मंदिर कभी भी शिल्पी की पराजय का प्रतीक नहीं बन सकता। इसलिए सृष्टिकर्ता ही उसका विध्वंस करने के लिए विवश हो जाता है। अंत में विशु इस प्रकार कहता है कि ''प्रतिशोध.... मेरे देवता!.... मेरे दिवाकर, शिल्पी का प्रतिशोध....!''[9] यह कहकर वह गर्भगृह के अंदर पत्थर पर प्रहार करता है। चुंबक को तोड देता है। इस प्रकार देवमूर्ति एवं शिखर, मंदिर की दीवारें छत सब नीचे गिर पडते हैं। इस प्रकार कोणार्क मंदिर खंडहर बन जाता है।

कोणार्क नाटक कला के माध्यम से नाटककार ने जीवन को सत्यम, शिवम् सुन्दरम् से समन्वित करने का प्रयास किया है। इस नाटक के द्वारा पाठकों के मन में संवेदनाएँ उभरती हैं एवं आत्म मंथन की दशा से रस निष्पत्ति संभव होती है। ज्ञान, मनोरंजन, सौंदर्य, उल्लास आदि तत्वों की प्रवाहमयता से प्रस्तुत नाटक उत्तम बन जाता है। कोणार्क मंदिर मानव जीवन को संपूर्ण रूप में प्रतिबिम्बित करता है। कोणार्क मंदिर की विशेषता को नाटककार ने यहाँ प्रस्तुत किया है। नृत्य, संगीत और स्थापत्य कला के अद्‌भुत सामंजस्य से यह नाटक श्रेष्ठ बनता है। तीन अंकों से युक्त इस नाटक के अंत में खंडित कला, अपूर्ण प्रेम और उसकी रहस्यमय गाथा का अंत हो जाता है। सर्वनाश हो जाता है। सृष्टि कर्ता विशु के हाथों से ही मंदिर का नाश हो जाता है। शिल्पी का

प्रतिशोध सौंदर्य के धाम को ध्वस्त कर देता है। कलाकार के भीतर उपजते तमाम अंतर्द्वन्द्वों का परिचय यह नाटक प्रस्तुत करता है। कला, साहित्य और संस्कृति का एक अद्‌भुत सामंजस्य कोणार्क नाटक के माध्यम से हमारे सामने प्रस्तुत होता है।

संदर्भ

1. जगदीशचंद्र माथुर - कोणार्क - पृ. 26
2. वही - पृ. 58
3. वही - पृ. 32
4. वही - पृ. 38
5. वही - पृ. 54
6. वही - पृ. 48
7. वही - पृ. 76
8. वही - पृ. 77
9. वही - पृ. 81

कही ईसुरी फाग में संस्कृति की झाँक

डॉ. लिबी चेरियान
हिन्दी विभाग
एम.ए इन्टरनैशनल स्कूल, कोतमंगलम

संस्कृति समाज की निजी उपज है। हर एक समाज का स्वरूप सांस्कृतिक मूल्यों पर निर्भर है। साहित्य संस्कृति एवं समाज का दर्पण है। समाज के विभिन्न पक्षों की अभिव्यक्ति इसके द्वारा संभव है। सामाजिक विचारधारा हमेशा विश्वास, वेश-भूषा, पहनाई, पर्व, त्योहार, परंपरा, भाषा, संगीत, नृत्य कानून और संस्कृति से जुडा हुआ है। साहित्य यथार्थ ज़िंदगी की कलात्मक अंकन है, जो मानवीय संवेदना से निसृत है। "साहित्य सामाजिक समस्याओं के प्रति रचनात्मक सोच और सर्जनात्मक ऊर्जा प्रदान करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।"[1] भारतीय परिवेश हमेशा किसान संस्कृति से जुडा हुआ है। यहाँ धार्मिक संस्कृति का असर भी है। खेती-बारी से जुडी त्योहार-पर्व संस्कृति दर्शनीय है। "Culture- Every human society has a culture. Culture includes a society's arts, beliefs, customs, institutions, inventions, language, technology and values. A culture produces similar behaviour and thought among most people in a particular society."[2] "जब चारों ओर फूल खिले हैं। बसंत झूम रहा है तो किसान का दिल उमगें क्या न करे जो कलाकार अपने मुरीदों का मुरीद होता है, वही सच्चा कलाकार है।"[3]

शहरीकरण, औद्योगीकरण से समाज को नया रूप मिलने लगा। आधुनिक शिक्षित युवा पीढ़ी गाँव छोडकर शहर या विदेश में रहते वक्त निजी संस्कृति से अलग होने लगी। वे अनजाने से अन्य संस्कृतियों का हिस्सा बाँटती है जो सांस्कृतिक संकट का कारण बन जाता है। "सांस्कृतिक संकट हमारे लिए नया नहीं है। आज यह संकट अपनी केन्द्रीय चिन्ता के साथ हमारे समक्ष मौज़ूद है।.....बदलनेवाली शक्तियाँ आर्थिक संकट के साथ सांस्कृतिक संकट भी पैदा करती है।"[4]

संस्कृति की झलकों से साहित्य की खिलकत हुई। विशेषत: उपन्यासों की धुरी ही सांस्कृतिक पक्षधरता से है। बुंदेलखंड की फाग संस्कृति से पिरोयी हुई रचना है मैत्रेयी पुष्पा की कही ईसुरी फाग। फागों में वहाँ की संस्कृति है। सांस्कृति के विभिन्न धरातल इस उपन्यास की प्रतति है।"...स्त्री ने जन्म-जन्मांतर का फासला तय कर लिया । तभी से अपने बुंदेलखंड में लखन लला का रुतबा ढीला पड गया। औरतें हरदौल को याद करने लगीं। उनका प्रेम स्त्रियों के मान का विषय बना। यह रिवाज़ स्त्रियों का ही चलाया हुआ है।"[5] संस्कृति से संबंधित कई नियमों का बोझ हमेशा नारियों के कंधों पर रखा हुआ है। इसलिए पीछे हटानेवाली लड़कियों की लंबी कतार भारतीय समाज का अंग है। इस सिलसिले से हटकर अपनी ओढ़नी को खींचकर आगे आनेवाले पात्रों से मैत्रेयी ने साहित्य जगत में अपनी रास्ता स्वयं खुल दी।

नाटकों को देखने में रोकी हुई लड़कियों के जो ज़माने भारत में प्रचलित था, उसकी प्रतिनिधि है इस उपन्यास की सरस्वती। कलाकारों की ओर से जो नकारात्मक दृष्टिकोण था उसका मिसाल है नर्तकी कंचना। नर्तकियों के प्रति समाज का व्यवहार वेश्या की तरह होता था। वह किसी की सखी नहीं, पारिवारिक जीवन से भी वंचित है। "कंचना वेश्या थी जिसे समाज में पतिव्रता होने का सम्मान नहीं मिला। अत: सती कहलाने की हकदार नहीं मान गई।"[6] इसलिए वह कहती है- "मैं वेश्या हूँ रानी नहीं। वेश्या किसी की पत्नी नहीं होती.....किसी की गुलाम भी नहीं होती । वह अपनी मर्जी की मालिक आज़ाद स्त्री होती है।"[7] ये शब्द उस समाज के आदर्श नारी के अनुरूप नहीं, नया आज़ाद खोजने का है। विधवा सरस्वति को बचपन से कला के प्रति रुचि है। लेकिन उस समय वे स्त्रियों केलिए निषिद्ध थे। "...मायके औरत ससुराल में नाटक नौटंगी और फाग सहर को औरतें केलिए नहीं बताया गया, अपराध भी है, पाप भी।"[8] गंगिया नामक पात्र कला के प्रति उत्सुक होने के कारण पति से अलग हो गयी। पुरुष वर्चस्वीय समाज में विधवाओं के जकडनों का मुख्य कारण सांस्कृतिक मनोभाव ही है। उनके संत्रास, घुटन का वक्तव्य है- "हम तो अभागे हैं बेटा। अभागा आदमी तकदीर से लडते-लडते चिडचिडा जाता है अकेली राँड-विधवा जनी का दुख तुम कैसे जानोगे।"[9]

इलाकों में प्रचलित लोककथाओं से सांस्कृतिक पुट मिलती है। घूँघट उठाना ही अपराध माननेवाले लोग संस्कृति के भागीदार हैं। फाग की नायिका रजऊ हमेशा बदनाम का शिकार बन जाती है। रज्जो घूँघट खींचकर आगे बढ़ते वक्त उसके मुँह पर अनचाहे मुद्रा थी। रजऊ प्रेमिका होने के कारण बदनामी है। सालिगराम से प्रस्तुत कहानी की नारियाँ -ओरछा की रानी, कंचना, रायप्रवीण, रजऊ-तत्कालीन सामाजिक-सांस्कृतिक संकटों से जूझती नारियों के प्रतीक हैं । वे विभिन्न सांस्कृतिक मनोभावों से जूझते, तौहीन बर्दाश्त नारियाँ हैं। विमला बेडिनी के मत में पुराना होना सबसे बडा अभिशाप है । जाति के अनुसार नाम बुलाना सांस्कृतिक व्यवहार है। करिश्मा बेडिनी का कहना है- "बेडिनी कहकर हमें जो नीचा दिखाया जाता है.....तुम जैसी तमाम औरतें घूँघटों में बेचेहरा बेनाम मर जाती है राति-रिवाज़ जानलेवा है।"[10] हर समाज का अपनी परंपरा है,रीति-रिवाज़ है। जो लीक से हटकर आगे बढ़ता है वहाँ संकट शुरू होता है । इसके कई परिवेश प्रस्तुत रचना में दृष्टव्य हैं।

इस उपन्यास में केवल प्राचीन संस्कृति का ही नहीं आधुनिक शिक्षित समाज का चित्र भी है। ऋतु शोध करनेवाली लड़की है । वह उच्चशिक्षा के क्षेत्र में होनेवाले समस्याओं से विवश है। लीक से हटकर फाग के आधार पर रजऊ पात्र के पीछे जानेवाली ऋतु को निर्देशक से शोध की दायरे से बाहर न जाने का आदेश मिलता है- "तुम उन प्रविधियों के दायरों से बाहर जा रही हो जो विश्वविद्यालय ने शोध प्रबंधों केलिए तय की है। याद रखना कि तुमको अपनी बात विद्वानों के लिखित मतों और इतिहास ग्रन्थों के आधार पर सिद्ध करनी होगी।"[11] "रिसर्च करो, कंप्यूटर सीखने साईबर कैफे जाओ, पत्रकारिता करो, ब्यूटीशियन का कोर्से करो,....."[12]

प्रस्तुत उपन्यास का सांस्कृतिक परिवेश आज़ादी पूर्व समाज से लेकर समकालीन समाज तक व्याप्त है। आज़ाद पूर्व भारत के संग्राम, रानी लक्ष्मी की वीरमृत्यु संबंधी परिवेशों के द्वारा उस ज़माने की प्रांतीय संस्कृति का झलक मिलता है। ऋतु के प्रेमी माधव गुजरात में पहुँचकर हिंदु-मुस्लिम दंगे में पीडित होने से धार्मिक संस्कृति का नंगा परिवेश उभर आता है। विशेषत: कलाकारों की ओर व्याप्त उदासीन और उपेक्षित मनोभाव के साथ इस विधा

के अनैतिक एवं भ्रष्टाचार व्यवहार देखा जा सकता है। माधव ऋतु से व्यक्त करता है- "साहित्य से आदमी की आजीविका नहीं चलती। पेट केलिए दूसरे धन्धे तलाशने पड़ते हैं।....भूख आदमी को कहाँ से गुज़र देती है, यह मैं ने दंगों के दौरान देखा और समझा।"[13] इसके नायक ईसुरी रीतिकालीन लोककवि थे। लेकिन रीतिकालीन साहित्यकारों के फेहरिस्त में उनका नाम नहीं है। "वे कलाकार उन इंजिनियरों डाक्टरों वैज्ञानिकोंसे तो ज़्यादा गैरतमंद है।"[14] "पुरस्कार की जूरी बनने से पहले पुरस्कृत चुन लिया जाता है।"[15] सांस्कृतिक आयोजनों के नाम पर ज़ारी व्यवहार के साथ राजनैतिक संकट का चित्र भी है। अंग्रेज़ियों के विरुद्ध अडिग खडी ज़माने उस समय की सांस्कृतिक संत्रास का पक्ष है। "हम बैलगाडियों से ही फिरंगियों का रास्ता रोक देंगे। किसान लोग बंदूक छीन लेंगे। हथियार एसे ही जमा देंगे।"[16] "बेडिनियों के अंतरंग को ही नहीं, राष्ट्रीय मुक्ति-संग्राम में उनकी कारागर भूमिकाओं का उल्लेख कर उपन्सास ने हम पाठकों की दृष्टि को नई दिशा और विस्तार दिया है।.....1857 के मुक्ति-संग्राम से लेकर गुजरात के नरसंहार तक हैला हुआ उपन्यास हम पाठकों को कई सवालों के मार्फत घेरता भी है।"[17]

इसप्रकार संस्कृति का दर्पण कहे हुए लोककथा संबंधी फागों की डोर से बनाया हुआ प्रस्तुत उपन्यास बुंदेलखंड संस्कृति का एक नया खोज है। इसमें समाज के विभिन्न धरातलों पर भिन्न-भिन्न कालखंडों में व्याप्त सांस्कृतिक झाँक उभर आता है।

संदर्भग्रंथ सूची

1. सुरेंन्द्र वर्मा- अक्षरा सितंबर 2009 पृ.सं- 40

2. The World Book Encyclopedia ci-czVolume 4 P.No. 1186

3. मैत्रेयी पुष्पा- कही ईसुरी फाग पृ.सं. 136

4. वीरेंन्द्र मोहन- इतिहास और संस्कृति, पृ.सं. 16

5.मैत्रेयी पुष्पा- कही ईसुरी फाग, पृ.सं. 127

6.मैत्रेयी पुष्पा- कही ईसुरी फाग, पृ.सं. 129

7.वही, पृ.सं.130

8. वही, पृ.सं. 57

9. वही, पृ.सं. 52

10. वही, पृ.सं. 231

11.वही, पृ.सं. 92

12. वही, पृ.सं. 287

13.वही, पृ.सं.306

14. वही, पृ.सं. 58

15. वही, पृ.सं. 257

16. वही, पृ.सं. 242

17. विजय बहादुर सिंह- मैत्रेयी पुष्पा स्त्री होने की कथा, पृ.सं. 208,210

भारतीयता एवं संस्कृति का प्रतीक : 'पद्मावत'

विपिन कुमार वी
अतिथि अध्यापक
श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय, कालडी
(प्रादेशिक केंद्र, पन्मना)

यह हमें भलीभाँति ज्ञात है कि भक्तिकाल के निर्गुण भक्ति शाखा के कवियों में मलिक मुहम्मद जायसी का अहम स्थान है । निर्गुण भक्तिधारा के प्रेममार्गी कवि के रूप में उनकी ख्याति विशिष्ठ है । इसीलिए उन्हें हिंदी प्रेमाख्यानक काव्य परंपरा का सर्वश्रेष्ठ कवि माना जाता है । हिंदी साहित्य के प्रबंध काव्य रचकारों में उनका स्थान अत्यधिक महत्वपूर्ण है । देखा जाए तो पद्मावत की रचना के रूप में उनके अंतरमन की प्रेम पीडा कथा का आधार लेकर संपूर्ण एवं साकार हो उठी है । उनका यह महाकाव्य अवधी भाषा में रचित है, जिसमें चित्तौड के राजा रत्नसेन तथा सिंहलद्वीप की राजकुमारी पद्मावती के प्रणय का चित्रण है । साथ ही उनका यह महाकाव्य सूफी काव्यधारा का प्रतिनिधि-ग्रंथ भी है । "पद्मावत का वातावरण कवि द्वारा इस प्रकार निर्मित किया गया है, जिसमें आध्यात्मिक संकेत निरंतर पाए जाते हैं । इस प्रेम के लोकोत्तर परिवेश में प्रकृति अलौकिक व्यंजना के साथ अंकित हुई है । इसी प्रकार प्रकृति पर इस परम सौंदर्य के प्रभाव का कई रूपों तथा स्तरों पर वर्णन किया गया है ।"[1] दूसरे प्रेमाख्यान काव्यों से अलग 'पद्मावत' दो महान संस्कृतियों के आस-पास की कथा को भी अपना आधार बनाता है । हिंदू और मुस्लिम संस्कृति के बीच सूफीवाद की परिकल्पना इसे श्रेष्ठ काव्य बनाती है । इस महाकाव्य में भारतीय समाज एवं उसकी संस्कृति के लगभग हर एक बिंबों तथा पहलुओं पर ध्यान दिया गया है । इस प्रेमाख्यान में जायसी ने भारतीय समाज को ही उजागर किया है । जायसी ने पद्मावत में जहाँ विरह की तीव्र व्यंजना की है, वहीं प्रेम की तीव्रता को भी प्रस्तुत किया है । पद्मावत का समूचा कलेवर जायसी ने भारतीयता के माध्यम से रचा है । इसलिए पद्मावत स्वरूप निर्माण में जायसी ने भारतीयता को भी महत्वपूर्ण रूप से अपनाया है और विवेचित किया है । भारतीयता का गहरा संबंध भारतीय संस्कृति से जुड़ा है ।

भारतीय संस्कृति की परंपराओं को, आस्थाओं को, लोक विश्वासों को केंद्र बनाकर जायसी ने अपूर्व काव्य-कौशल का परिचय दिया है । इसी संदर्भ में आचार्य रामचंद्र शुक्ल की कथन महत्वपूर्ण हैं- "हिंदू हृदय और मुसलमान हृदय आमने-सामने करके अजनबीपन मिटानेवालों में इन्हीं का नाम लेना पडेगा । इन्होंने मुसलमान होकर हिंदुओं की कहानियाँ हिंदुओं की ही बोली में पूरी सहृदयता से कहकर उनके जीवन की मर्मस्पर्शिनी आस्थाओं के साथ अपने उदार हृदय का पूर्ण सामंजस्य दिखा दिया ।"[2] किसी देश या समाज के विभिन्न जीवन-व्यापारों या सामाजिक संबंधों में मानवता की दृष्टि से प्रेरणा प्रदान करनेवाले आदर्शों को संस्कृति नाम ददिया गया है । भारतीयता का आधार इससे और अधिक मजबूत बनता है । "संस्कृति धीरे-धीरे विकसित होनेवाली एक कृत्रिम किंतु अनिवार्य स्थिति है जो कि मूलतः नैसर्गिक न होकर भी निरंतर विकसित होती हुई परिस्थितियों के प्रति प्रकृत या स्वाभाविक हो जाती है ।"[3] भारतीयता से जुड़े इन्हीं संस्कारों को जायसी अपने महाकाव्य में समायोजित करते

हैं । प्रेमाख्यान के उपसंहार में जायसी ने यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि कहीं न कहीं यह प्रेम-कथा आध्यात्म के रंग में रंगी है । देखा जाए तो इसे सूफीवाद का प्रभाव भी माना जा सकता है -

'मैं एहि अरथ पंडितन बूझा । कहा कि हम किछु और न सूझा ।।
चौदह भुवन जो तर उपराही । ऐ सब मानस के घट माँही ।।
तन चितउर मन राजा कीन्हा । हिय सिंघल बुधि पद्मिनी चीन्हा ।।'

उपसंहार में जायसी ने तन, मन, हृदय, बुद्धि, गुरू, जगत्, निर्गुण ब्रह्म आदि के आधार पर भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति के साथ महाकाव्य की कथावस्तु को जोडने का विनम्र प्रयास किया है । धार्मिक-स्थानों की एक बड़ी परंपरा भारतीय संस्कृति में रही है । बादशाह दूती खंड और चित्तौड आगमन खंड में जायसी ने नदी-स्नान आदि के बारे में सूचना दी है –

'बन बन हरेऊँ वनखंडा । जल जल नदी अठारह गंडा ।।
गै असवारि परथमै , मिलै चले सब भाइ ।।
नदी अठारह गंडा मिली समुद्र कहँ जाइ ।।'

अठारह गंडा अर्थात नदियों में स्नान की बात करते हैं । कामरूप, कामेच्छा, जादू-टोना भारतीय संस्कार में आज भी बसा है जो भारतीयता की बुनियाद है । जायसी इसे भी आधार बनाते हैं –

'एहि कर गुरु चमारिन लोना । सीखा कांवरु पाढ़न टोना ।'

भारतीयता की दृष्टि से दान-पुण्य इष्टार्थ की पूर्ति के लिए किया जाता है । ऐसा माना जाता है कि दान करने से भंडार घटता नहीं है –

'धनपति उहइ जेहिक संसारू । सबहि देह नित घट न भंडारू ।।'

भारतीय समाज में तावीज, गंडा आदि पहनने का प्रचलन रहा है जो भारतीयता की जड़ों में समाहित है । मंत्रोत्कीर्ण अंगूठी में भी इतनी मानी जाती थी कि उसे धारण करके व्यक्ति अतिमानवीय शक्तियों को भी वशीभूत कर सकता है, जो कि 'पद्मावत' में आए सुलेमान की अंगूठी से संबंधित उल्लेख से प्रकट है –

'हाथ सुलेमा केरि अंगूठी । जग कहँ जिअन दीन्ह तेहि मूठी ।।'

'पद्मावत' में भारतीय समाज के आर्थिक जीवन को भी दर्शाया गया है । इसके अंतर्गत सिंहलद्वीप के बाज़ारों के वर्णन समकालीन व्यापार की अवस्था को हमारे सामने लाते हैं । कवि के मुताबिक वहाँ का व्यापार उच्च-स्तर का था तथा थोक, क्रय-विक्रय के सौदे लाखों और करोड़ों के होते थे –

'पै सूठि ऊँच वनिज तहँ केरा । धनी पाउ निधनी मुख हेरा ।।
लाख करोरन्हि वस्तु बिकाई । सहसन्हि केर न कोइ ओनाई ।।'

सामाजिक उत्सव तथा लोक-जीवन का विवरण जायसी ने मौकये वारदात की तरह दिया है । प्रस्तुत शब्दों से वे दीपावली का वर्णन इस प्रकार करते हैं-

'अबहूँ निठुर आब यहि बारा। परब देवारी होइ संसारा ।
सखि झूमक गावै अंग मोरी । हौ झुराव बिछुरी जेहि जोरी।।'
भारतीय सभ्यता में स्त्रियों का स्थान प्रमुख रहा है । स्त्रियों के सोलह श्रृंगार का वर्णन भी जायसी करते हैं-

'पुनि सोरह सिंगार जस चारिहुं जोग कुलीन ।
दीरघ चारि-चारि लघु चारि सुभर चहुँ खीन ।।'

भारतीयता के परिप्रेक्ष्य से देखा जाए तो पारिवारिक जीवन में संस्कारों का विशेष महत्व है । पद्मावती के जन्म पर जब नामकरण स्कार हुआ तब 'देवी पूजन' का लोकाचार जायसी ने दिखाया है । विवाह के अवसर पर होनेवाले लोकाचारों का उल्लेख तथा विवाह के अवसर पर पंडित की भूमिका का वर्णन भी उन्होंने किया है । निश्चय ही जायसी ने हिंदू, जन-जीवन को निकट से देखा-परखा था । इसी कारण उन्होंने हिंदू रीति-रिवाजों, जीवन पद्धति, लोक मान्यताओं, परंपराओं, व्रत-त्यौहार आदि का विशद वर्णन किया है । इस्लाम का प्रभाव भी तत्कालीन भारतीय परंपराओं से इतर भी वे गये हैं । हिंदू धर्म में पाँच तत्वों से सृष्टि की उत्पत्ति मानी जाती है, लेकिन जायसी ने इस्लाम मतानुसार चार तत्वों की प्रधानता को ही स्वीकार किया है –

'कीन्हेसि अगिनी पवन जल खेहा । कीन्हेसि बहुतेइ रंग उरेहा ।।'

डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में – "मुसलमानी मत में केवल चार तत्वों से सृष्टि मानी जाती है ।" (मध्यकालीन हिंदी काव्य में भारतीय संस्कृति, पृ. 273) जायसी ने 'पद्मावत' में इस्लाम मत के दर्शनों का कुछेक जगह विस्तार दिया है ।

तत्कालीन भारतीय समाज एवं संस्कृति में पारंपरिक विश्वासों और क्रियाकलापों की अधिकता है । देखा जाए तो ये परंपराएँ आज भी मौजूद हैं । पद्मावत में आज की परंपराओं को तलाशा जा सकता है । जायसी ने गुरू, अतिथि, माता-पिता के संदर्भ में भारतीय उच्च आदर्शों को दिखाया है । डॉ. रामचंद्र तिवारी के अनुसार- "प्रेमिका की प्राप्ति के लिए नायक के अथक उद्योग का चित्रण करके उसने भारतीय समाज-मर्यादा का आदर्श उपस्थित किया है । पार्वति और महादेव को परीक्षक और सहायक कल्पित करके कवि ने भारतीय जन-जीवन के आदिम विश्वास को मूर्त किया है ।"[4] तत्कालीन भारतीय समाज में सती प्रथा थी । जायसी ने इसी प्रथा को निभाते हुए रत्नसेन की मृत्यु के पश्चात् पद्मावती और नागमती दोनों पत्नियों को सती करा दिया है, यहाँ तक कि जब अलाउद्दीन दुर्ग पर आक्रमण करता है, तो केवल हाथ मलता रह जाता है और उसके मुख से निकल पड़ते हैं-

'यह संसार झूठा है।'
छार उठाइ लीन्ह एक मूठी, दीन्ह
उडाइ परिथमी झूठी ।'

'बारहमासा' गाने की एक सुदीर्घ परंपरा रही है । पद्मावती में विरह की तीव्रता दिखाने के लिए जायसी ने 'बारहमासा' का भी चित्रण किया है । डॉ. कौसर यजदानी मानते हैं- "जायसी ने 'पद्मावत' के पात्रों में सामाजिक अभीष्ट गुणों का पोषण कर सामाजिक आदर्श की स्थापना भी की है ।"[5]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि जायसी ने पद्मावत में भारतीयता के स्वरूप और भारतीय समाज के संस्कारों को ही दिखाया है । इसके माध्यम से तत्कालीन समाज एवं संस्कृति के अध्ययन में अपेक्षित सहयोग प्राप्त किया जा सकता है, भारतीयता की पहचान को उभारा जा सकता है । कवि समाज के विभिन्न पहलुओं पर बारीकी से नज़र रखता है, जिसका प्रमाण जायसी ने 'पद्मावत' में दिया है । निस्संदेह यह महाकाव्य देश और काल की सीमा से परे एक कालजयी रचना है, जो हमारी मध्यकालीन परंपराओं से हमें अवगत कराता है तथा भारतीयता से जुड़े विभिन्न पहलुओं और संदर्भों से हमें परिचित कराता है ।

संदर्भ : -

1. डॉ. रघुवंश, जायसी : एक नई दृष्टि, लोक भारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण-1993, पृ.179
2. रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, अशोक प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण-2003, पृ. 59
3. डॉ. मदनगोपाल गुप्त, मध्यकालीन हिंदी काव्य में भारतीय संस्कृति, नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली 7, संस्करण 1968, पृ.41
4. डॉ. रामचंद्र तिवारी, मध्ययुगीन काव्य-साधना, विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1987, पृ.96
5. डॉ. कौसर यजदानी, सूफी दर्शन एवं साधना, जेन्युइन पब्लिकेशंस एंड मीडिया प्राइवेट लिमिटे, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1987, पृ.342

भारतीय संस्कृति और हिन्दी साहित्य

जयदेवी. वि.ए
शोध छात्रा, हिन्दी विभाग
महाराजास कॉलेज, एरणाकुलम

संस्कृति अत्यन्त व्यापक और गंभीर अर्थ का बोधक है। मनुष्य की अमूल्य निधि उसकी संस्कृति है। संस्कृति एक ऐसा पर्यावरण है, जिसमें रहकर व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी बनता है। और प्राकृतिक पर्यावरण को अपने अनुकूल बनाने की क्षमता आर्जित करता है। एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से और एक समूह को दूसरे समूहों से जो अलग करती है वह संस्कृति ही है। संस्कृति का वर्तमान रूप किसी समाज के दीर्घ काल तक अपनायी गयी पद्धतियों का परिणाम है। 'संस्कृति' शब्द का अर्थ संस्कृत भाषा में 'सम्' उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय लगने पर प्राप्त होता है।

संस्कृति का अर्थ कुछ विद्वानों ने सभ्यता भी माने हैं। इसके लिए अंग्रेजी का 'कल्चर' शब्द लगाया है।

संस्कृति मानुष्य को मानवता की ओर प्रेरित करनेवाले आदर्शों, आचार-विचारों और कार्य अनुष्ठानों का समष्टि का नाम है। अन्य जीवन व्यापी सत्यों के समान इस शब्द का भी आज अनेक विधी से प्रयोग हो रहा है। इतिहासवत्ता, दार्शनिक, धर्मविद, समाजशास्त्रीय और साहित्यिक अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार संस्कृति के स्वरूप को ग्रहण करते हैं। किसी देश का कलात्मक और बौद्धिक विकास संस्कृति है। दार्शनिक लोग संस्कृति को जीवन का प्रकाश और सौन्दर्य मानते है। धार्मिक दृष्टि से मनुष्य के लौकिक पारलौकिक सर्वाभ्युदय के अनुकूल आचार-विचारों को संस्कृति कहा जाता है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से संस्कृति लिखे हुए व्यवहार की वह समग्रता है, जिसमें मनुष्य का व्यक्तिमत्व पलता और पनपता है।

अतः संस्कृति का निश्चित स्वरूप निरूपित करने केलिए परिभाषाओं को देखे जाए तो अनेक विद्वानों ने संस्कृति का भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ दी है।

अंग्रेजी शब्द

अंग्रेजी में संस्कृति को 'कल्चर' शब्द का प्रयोग किया गया है। लैटिन भाषा के 'कल्ट' या 'कल्टस' से लिया गया है, जिसका अर्थ हुआ जोतना, विकसित करना या परिष्कृत करना और पूजा करना। संक्षेप में हम कह सकते हैं किसी वस्तु को यहाँ तक संस्कारित और परिष्कृत करना कि इसका अंतिम उत्पाद हमारी प्रशंसा और सम्मान प्राप्त कर सके।

'संस्कृति' शब्द का अर्थ हुआ उत्तम या सुधरी हुई स्थिति। मनुष्य स्वभावतः प्रगतिशाली प्राणी है। मनुष्य के जीवन पद्धति रीति-रिवाज, रहन-सहन, आचार-विचार अनुसंधान और आविष्कार जिसके द्वारा मनुष्य पशुओं से जंगलि जानवरों से ऊपर उठता है, सभ्य बनता है। सभ्यता संस्कृति का अंग है। सभ्यता से मनुष्य का भौतिक क्षेत्र की प्रगति सूचित होती है जब संस्कृति से मानसिक क्षेत्र की प्रगति सूचित होती है। मनुष्य भौतिक क्षेत्र से सुधार

होकर कबी संतुष्ट नहीं हो सकता। वह केवल भोजन से नहीं जीता है शरीर के साथ मन की भी भूख होती है। मन और आत्मा को तृप्ति मिलने के लिए मनुष्य अपना विकास करता है वह केवल संस्कृति से ही हो सकती है।

संस्कृति एक व्यवस्था है, जिसमें हम जीवन के प्रतिमानों, व्यवहार के तरीकों, अनेकानेक भौतिक एवं अभौतिक प्रतीकों परंपराओं, विचारों, सामाजिक मूल्यों, मानवीय क्रियाओं और आविष्कारों को शामिल करते हैं। सर्व प्रथम वायु पुराण में धर्म, अर्थ, काम, तथा मोक्ष विषयक मानवीय घटनाओं को संस्कृति के अंतर्गत समाहित किया गया। इसका तात्पर्य यह हुआ कि मानव जीवन के दिन-प्रतिदिन के आचार-विचार, जीवन शैली तथा कार्य-व्यवहार ही संस्कृति कहलाती है। मानव समाज के धार्मिक, दार्शनिक, कलात्मक, नीतिगत विषयक कार्य-कलापों, परंपरागत प्रथाओं, खान-पान, संस्कार इत्यादि के समन्वय को संस्कृति कहा जाता है। अनेक विद्वानों ने संस्कार के परिवर्तित रूप को ही संस्कृति स्वीकार किया है।

नृविज्ञान में 'संस्कृति' शब्द का प्रयोग अत्यन्त व्यापक अर्थ में है 'जो समस्त सीखा हुआ व्यवहार' होता है। अर्थात् वे सब बातें हम समाज के सदस्य होने के नाते सीखते हैं। इस अर्थ में संस्कृति शब्द परंपरा का पर्याय है। प्रसिद्ध मानव विज्ञानी मैलिनोव्स्की के अनुसार "मानव जाति की समस्त सामाजिक विरासत या मानव की समस्त संचित सृष्टि का ही नाम संस्कृति है।" इस अर्थ में संस्कृति में शामिल है, मानव निर्मित वह स्थूल वातावरण, जिसे मानव ने अपने उद्यम, कल्पना ज्ञान-विज्ञान और कौशल द्वारा रचकर प्राकृतिक जगत् के ऊपर एक स्वनिर्मित कृत्रिम जगत् स्थापित किया। नृविज्ञान इस मानव द्वारा निर्मित कृत्रिम जगत् को ही संस्कृति की संज्ञा देता है। इस कृत्रिम जगत् को रचने की प्रक्रिया में संस्कृति के अंतर्गत विचार, भावना, मूल्य, विश्वास, मान्यता, चेतना, भाषा, ज्ञान, कर्म, धर्म इत्यादि जैसे सभी अमूर्त तत्व स्वयं शामिल हैं, जबकि दूसरी ओर संस्कृति में विज्ञान और प्रौद्योगिकी एवं श्रम और उद्यम से सृजित भोजन, वस्त्र, आवास और भौतिक जीवन को सुविधाजनक बनाने वाले सभी मूर्त और अमूर्त स्वरूप भी शामिल हैं। मानवविज्ञान संस्कृति के अमूर्त स्वरूपों को आध्यात्मिक संस्कृति कहता है और मूर्त रूपों को भौतिक संस्कृति की संज्ञा देता है। इस प्रकार इन दोनों संस्कृतियों के संयुक्त विकास से परिष्कार पाकर मनुष्य सुसंस्कृत बनता है।

संस्कृति का परिभाषा

संसार के सभी विद्वानों ने संस्कृति शब्द की विभिन्न परिभाषाएँ, व्याख्याएँ की हैं। कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं मिल पाती फिर भी इतना स्पष्ट ही है कि संस्कृति उन भूषण रूपी सम्यक् चेष्टाओं का नाम है, जिनके द्वारा मानव समूह अपने आन्तरिक और बाह्य जीवन को, अपनी शारीरिक मानसिक शक्तियों को संस्कारवान, विकसित और दृढ़ बनाता है। वस्तुतः संस्कृति इतनी व्यापक और बृहद् चेष्टाओं का भण्डार है जो सनातन काल से क्रमिक रूप में निखरति आई है और जिन्होंने मानव के सर्वांगीण विकास में पूरा-पूरा योगदान भी दिया है। संस्कृति मानव समूह के उन आचार-विचारों की प्रणाली का प्रतिनिधित्व करती है जो मनुष्य को सुसंस्कृत बनाकर उसे सभी प्रकार योग्य और समर्थ बनाती है। संस्कृति शब्द की व्युत्पत्ति को लेकर विद्वान लोग एकमत नहीं है। श्री चन्द्र जैन ने इस के बारे में अपना मत प्रकट करते हुए कहा हैः- "संस्कृति शब्द सम उपसर्ग के साथ संस्कृति की (डु) कृ

(ञ) धातु से बनता है, जिसका मूल अर्थ साफ या परिष्कृत करना है।" संस्कृति शब्द की व्युत्पत्ति पर अपना मत प्रकट करते हुए रवीन्द्रकुमार ने यह कहा है कि "संस्कृति जीवन में शांति प्रदान करनेवाले तत्वों का नाम है।"

संस्कृति का परिभाषा बताते हुए श्री टायलर ने कहा है- "समाज के सदस्य के नाते मनुष्य जो ज्ञान, विश्वास, कला, नीति, कानून, रीति-रिवाज या अन्य कोई योग्यता प्राप्त करता है, उन सबके जटिलता पूर्ण संग्रह को संस्कृति कहते हैं।"

सर मोनियर विल्यमः- संस्कृति की परिभाषा सर मोनियर विल्यम के संस्कृत, इग्लिश डिक्शनरी में इस प्रकार मिलती है, "तैयार करना, रचना या कृति संस्कार द्वारा पवित्र करना संकल्प तथा प्रयत्न द्वारा कार्य की संपन्नता करना संस्कृति है।"

मैथ्यू अर्नाल्ड ने लिखा है- "विश्व के सर्वोत्कृष्ट कथनों और विचारों का ज्ञान भण्डार ही संस्कृति है।" श्री नेहरू जी ने लिखा है- "संस्कृति शारीरिक मानसिक शक्तियों के प्रशिक्षण, दृढ़ीकरण या विकास परंपरा और उससे उत्पन्न अवस्था है।" श्री राजगोपालाचार्य ने संस्कृति की परिभाषा ऐसे दी है- "किसी भी जाति अथवा राष्ट्र के शिष्ट पुरुषों में विचार, वाणी एवं क्रिया का जो रूप व्याप्त रहता है, इसी का नाम संस्कृति है।" एक अन्य विद्वान ने कहा है – संस्कृति का उद्गम संस्कार शब्द है। संस्कार का अर्थ है वह क्रिया जिससे वस्तु के मल (दोष) दूर होकर वह शुद्ध बन जाय। मानव के मल-दोषों को दूर कर उसे निर्मल बनाने वाली प्रक्रियाओं का संग्रहीत कोष ही संस्कृति है।

एक वाक्य में सभ्यता, सज्जनता, शिष्टता, जो हमें दूसरों के साथ रहने की विशेषता, दूसरों के साथ जीने में आनन्द की कला सिखावे उसे संस्कृति कहते है। संस्कृति आसमान की तरह व्यापक और समुद्र की तरह गहरी संकल्पना है। इसी तरह बहुत-सी परिभाषाएँ मिलती हैं। बहुत अर्थ भी मिलती हैं।

भारतीय संस्कृति के मूल भूत तत्व

भारतीय संस्कृति से भारतीय जीवन-दृष्टि का बोध होता है। भारतीय संस्कृति जीवन में उच्चतम मूल्यों को महत्व देती है। वह अपने अन्तर्निहित ऐसे दिव्य गुण रखती है। जो शाश्वत हैं। अतः वह अनेक मानवीय मान्यताओं की संस्थापक है। वह अनेक गौरवपूर्ण तत्वों से अभिमण्डित है।

आध्यात्मिकता

भारतीय संस्कृति की अपनी मौलिकता है। भारतीय संस्कृति का लक्ष्य मानव का आध्यात्मिक उत्थान करना है। वह तत्व उसका स्वर्ण-स्तम्भ है। भारतीय संस्कृति आध्यात्मिकता एवं नैतिक मान्यताओं की सुदृढ नहीं पर अवस्थित है। फलतः हमारे ऋषियों ने संस्कृति का प्रतिपादन अध्यात्म की आधार शिला पर किया है। भारतीय संस्कृति में मानव जीवन को पवित्र एवं उत्कृष्ट बनाने केलिए आध्यात्मिक उपचार दिए हैं। अतः भारतीय संस्कृति आत्मोपलब्धि पर बल देती है। आध्यात्म से तात्पर्य आत्मा का चिंतन इस दृष्टि से आध्यात्मिकता का मुख्य लक्ष्य मानव का आत्मिक उत्कर्ष करना है। इसके आधार पर भारतीय संस्कृति वैदिक युग में अपने उच्चतम रूप में

प्रतिफलित हुई है। भारत के इस आध्यात्मिक गुण के आदार पर ही उसकी प्रतिष्ठा बढ़ी हुई थी तथा उसे अन्य देशों द्वारा प्राचीन काल से आदर की दृष्टि से देखा जा रहा है। इसी कारण स्वामी दयानन्द सरस्वदी ने कहा है, भारत की सबसे बड़ी सम्पत्ति उसकी आध्यात्मिकता-निधि है। अतः सब कुछ खोकर भी उसकी रक्षा अनिवार्य है। परिणामतः भारतीय संस्कृति की आत्मा उसका आध्यात्मिक धरातल है।

वेद भारतीय धर्म-शास्त्र के सब से पहले और प्रमुख आधार हैं। वैदिक संस्कृति में शाश्वत तत्व प्रतिष्ठित हैं। भारतीय संस्कृति के आदि स्त्रोत इन वेदों में विश्व की प्राचीनतम भाषा वैदिक संस्कृत में जीवन-दर्शन सम्बन्धी उच्च स्तरीय उपदेश निहित हैं। इन दिशा निर्देशन तत्वों में लौकिक एवं पारलौकिक विधियों का ऐसा विधिवत् विधान किया गया है कि कहा जा सकता है कि वेदवाणी की दृष्टि किसी विशेष जाति या देश केलिए सीमित न होकर समग्र संसार एवं मानव-मात्र केलिए है। वेद का कथन है कि सब मनुष्य एक ही परम पिता परमात्मा के पुत्र हैं तथा इस तथ्य में भारतीय संस्कृति का दृढ़ विश्वास है।

श्रृणबन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राड़आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः।–यजुर्वेद 99.5

सब मनुष्य एक ही परम पिता परमात्मा के अमृत पुत्र है। अतः सारि मानव जाति अमृत पुत्र है। सब भगवान् की ही विभूति हैं। इस मंत्र में समस्त मानव जाति को एक इकाई के रूप में संबोधित किया गया है। इसलिए ईश्वर ने सूर्य, चंन्द्रमा, गगन एवं जल सब के लिए समान बनाया है। इस तथ्य का समर्थन अन्य मंत्रों से भी होता है। जैसेः-

ना बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्व।

यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त।।

यजुर्वेद 32.90

हे मनुष्यों जिस शुद्ध स्वरूप परमात्मा में योगिराज विद्वान् मनुष्य मुक्ति-सुख को प्राप्त होकर आनन्द करते हैं उसी को सर्वज्ञ, सर्वोत्पादक और सर्वदा सहायताकार मानना चाहिए। अन्य किसी को नहीं।

वसुदैव कुटुम्बकम्

भारतीय संस्कृति श्रेष्ठतम मानवीय मूल्यों की जन्मदात्री है। उसका उद्घोष है कि जब मनुष्य-मात्र, चाहें वे किसी भी देश, जाति, धर्म एवं रंग के हों, एक ही परम पिता परमेश्वर के पुत्र हैं तो निश्चितः निष्कर्ष निकलता है कि वे सब आपस में भाई हैं।

भारतीय संस्कृति जिन गुणों से युक्त है उनमें सर्वश्रेष्ठ गुण उसका विश्वमुखी होना है। अपने इस गुण के बल पर उसे विश्व संस्कृति का मूलाधार होने का गौरव प्राप्त है। इसी को दृष्टि में रखकर भारतीय संस्कृति 'वसुदैव कुटुम्बकम्' के सूत्र द्वारा विश्व को एकता का उत्कृष्ट उपदेश देती है। 'वसुदैव कुटुम्बकम्' अर्थात् यह समस्त वसुधा

एक ही कुटुम्ब का है। इस उदात्व तत्व में विश्व बन्धुत्व की मंगलमयी भावना सन्निविष्ट है। इस प्रकार के तत्व ही भारतीय संस्कृति को दीप्ति एवं उद्दीप्त करते हैं।

अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्।

उदारचरितानां तु, वसुधैव कुटुम्बकम्।।

हितोपदेश 9.69 तथा शार्ङ्गधरपद्धति,

श्लोक 273

अर्थात् यह मेरा है, यह पराया है, ऐसे विचार संकीर्ण मानसिकता के लोग रखते हैं। उदार हृदय एवं उच्च चरित्र वाले व्यक्ति केलिए सारा संसार ही कुटुम्ब के समान है। ज्ञानी पुरुष के लिए सब चीज़ों में ब्रह्मा है और ब्रह्मा में सब चीज़ें हैं। वह सर्वत्र एक ही ब्रह्मा तत्व ही देखता है। इस प्रकार तत्व ज्ञानी व्यक्ति विश्व बन्धुत्व का संरक्षक है। वसुदैव कुटुम्बकम्-यह जीवनोपयोगी नीति ग्रंथ हितोपदेश का उदात्त उपदेश है। भारतीय संस्कृति सब मानव में समान आत्मा का दिग्दर्शन करना सिखाती है। अतः वसुदैव कुटुम्बकम् भारतीय संस्कृति का चरम मूल तत्व है। उसने मानव हित चिंतन में देश-काल की परिधि को स्वीकार नहीं किया है।

संकीर्णता क्षुद्र व अनुदार मन का सृजन करती है। भारतीय संस्कृति वस्तुतः संकुचित मानसिकता से पृथक रह कर वात्सल्य एवं विश्व बंधुत्व की भावना से प्रेरित होकर संपूर्ण मानव कुल को अपने कुटुम्ब अर्थात् परिवार के समान मानने का परामर्श देती है। संपूर्ण संसार उसकी दृष्टि में एक इकाई है। विश्व के सभी मनुष्यों में एकता की अनुभूति करना ही विश्व बन्धुत्व है। मानव जाति की एकता ही भारतीय संस्कृति का मानव केलिए सर्वोत्तम शुभ संदेश है। इस प्रकार भारतीय संस्कृति ने विश्व की मानव जाति को एक परम पिता परमात्मा की संतान मानकर सब को भाई माना है क्यों कि मानवीय संवेदना में क्षेत्रीयता का बोध नहीं होता।

'वसुदैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा विवध जातियों एवं धर्मावलम्बियों में आत्मियता, सद्भावना, सहिष्णुता एवं विश्व बन्धुत्व की भावना को प्रोत्साहित करने में सक्षम है। अतः भारतीय संस्कृति विश्व को एकता का उपदेश देती है। वसुदैव कुटुम्बकम् की आंतरिक अनुभूति ही मानव एकता केलिए एक वास्तविक प्रेरणा शक्ति सिद्ध हो सकती है। इस सूक्ति द्वारा विश्व की एकता को उस सीमा तक अस्तित्व में लाया जा सकता है जहाँ तक मानव प्राणी इस आन्तरिक बंधन की अनुभूति अनुभव करें। इसी भाव को पुष्ट करने केलिएः

'सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु।'

अथर्ववेद 19.96.3 का सूक्त निरूपित किया गया है। जिसका तात्पर्य है कि पूर्व, पश्चिम, उत्तर एवं दक्षिण सब दिशाओं के मनुष्य मेरे मित्र होवें अर्थात् विश्व के मानव परस्पर मित्र भाव से मिल-जुलकर रहें। वेद समस्त संसार के प्रणियों के साथ साम्य भाव, प्रेम एवं मित्रता का भाव रखने का उपदेश देते हैं ताकि देशों की सीमाएँ मनुष्यों में भेद न कर सकें। इस प्रकार वसुदैव कुटुम्बकम् में विश्व बन्धुत्व की वृत्ति से युक्त समस्त समाज की

संरचना करने का भाव अन्तर्निहित है। भारतीय संस्कृति की महत्ता यह है कि वह मानवता के आदर्श गुणों पर आधारित है। वह केवल भारत की ही धरोहर नहीं अपितु वीश्व-जनीन है। उसका मत है मानव कुल एक है।

भारतीय संस्कृति का उद्देश्य निर्दिष्टि हैः- मानव-मात्र के मन में ऐक्य भावना प्रस्थापित करना। भारतीय संस्कृति समस्त मानवों में एक ही आत्मा का दिग्दर्शन करना सिखाती है। वसुदैव कुटुम्बकम् में भूलोक के एकत्व की भावना अत्यधिक गहन होकर उजागर हुई है। भगवत गीता में भी विश्व बन्धुत्व का उपदेश संसार का मार्ग-दर्शन करता हैः-

लभन्ते ब्रह्मिर्वाणमृषयः क्षीणकत्मषाः।

छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहितेरताः।।

श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय 5 श्लोक 25

वसुदैव कुटुम्बकम् के महान् महत्व का क्रियान्वयन महान् उदार मनः मनुष्य ही सारे विश्व को कुटुम्ब समझ अपने आचरण से ही कर सकते हैं। तभी विश्व में चिरस्थायी शान्ति स्थापित हो सकेगी। इसी जीवन-दर्शन की आज विश्व को सर्वाधिक आवश्यकता है। अतः वसुदैव कुटुम्बकम् की भव्य भावना भारतीय संस्कृति की विश्व को महानतम देन है।

साहित्य का शाब्दिक अर्थ

साहित्य स्वयंभू है। वह अपनी सृष्टि का सृष्टा है। स्व-बोध उसकी समूचे चेतना व्यवहार का अंतरंग संस्कार है, और यही उसकी संस्कृति है। वह समस्त, भौतिक, सामाजिक, धार्मिक आदि सत्ताओं को चुनौति देता है। मनुष्य साहित्य के बिना नहीं रह सकता है, क्यों कि मनुष्य सबके बावजूद भी अपने आप में अधूरापन, अकेलापन, अवहेलना, शून्यता और आकुलापन को अनुभूत करता है। मनुष्य के व्यग्रता और उसकी छटपटाहट को यदी तृप्ति मिलती है तो वह साहित्य से हैं। जब कभी भौतिक, सामाजिक, इत्यादि सत्ताएं मनुजता पर आक्रमण करती हैं, तो परंपरा और साहित्य मिलकर उसका सामना करता है और उसे जीने के नवीन विश्वास, नवीन चेतना और नवीन अर्न्ददृष्टि प्रदान करता है। साहित्य संस्कृति का अटूट अंग है। साहित्य का संबन्ध प्रत्येक समाज की जनता की जीवित चेतना से है। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से मानव को वैचारिक उच्चता प्रदान करना साहित्य का मकसद है। संस्कृति सामाजिक संबंधों की उपज है। इस कारण साहित्यकार जिस समाज में जन्म लेते हैं उसका प्रभाव उस पर ज़रूर पड़ता है। साहित्यिक रचनाओं में साहित्य संस्कृति के उच्च आदर्श, मूल्य आदि की झलक अवश्य पायी जाती है। श्रेष्ठ विचार साहित्य में संकलित होकर हमारा नेतृत्व करती है। मनुष्य के हृदय में दया, क्षमा, शांति, प्रेम, करुणा आदि का दीप साहित्य के द्वारा ही लगना होगा। संसार में अनेक साहित्यकार बार-बार सचेत करते आए हैं कि विज्ञान द्वारा पाए हुए शक्ति के साथ मनुष्य की विकास ही नहीं उसकी उन्नति की आवश्यकता भी है विकास में भौतिक साधनों का भाव छिपा है तो उन्नति के पीछे अत्यधिक उन्नति का संस्कृति और साहित्य के द्वारा अत्यधिक उन्नति संभव है। भारतीय साहित्य राष्ट्रीय लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु सतत चिन्तित रहा है तथा आज भी

प्रयासरत है। भारतीय चिन्तकों ने स्वस्थ वैचारिक धरातल पर अपने चिन्तन से जन-मानस को जागरित किया है एवं आतंरिकता की ज्योति प्रज्ज्वलित की है।

साहित्य शब्द का विग्रह दो तरह से किया जा सकता है। सहित = स + हित = सहभाव अर्थात् हित का साथ देना ही साहित्य कहा जाता है। साहित्य शब्द अंग्रेजी के 'Literature' का पर्यायी है। जिसकी उत्पत्ति लैटिन शब्द 'Letter' से हुई है।

स्वरूप

भाषा के माध्यम से अपने अंतरंग की अनुभूति, अभिव्यक्ति करानेवाली ललित कला काव्य अथवा साहित्य कहलाती है। साहित्य की व्यूत्पत्ति को ध्यान में रखकर इस शब्द के अनेक अर्थ प्रस्तुत किए गए है। यत् प्रत्यय के योग से साहित्य शब्द की निर्मिति हुई है। शब्द और अर्थ का सहभाव ही साहित्य है। कुछ विद्वानों ने हितकारक रचना का नाम साहित्य को दिया है। साहित्य शब्द का प्रयोग 7-8 वीं शताब्दी से मिलता है। इससे पूर्व साहित्य शब्द के लिए काव्य शब्द का प्रयोग होता था। भाषाविज्ञान का यह नियम है, कि जब एक ही अर्थ में दो शब्दों का प्रयोग होता है, तो उनमें से एक अर्थ संकुचित या परिवर्तित होता है। संस्कृत में जब एक ही अर्थ में साहित्य और काव्य शब्द का प्रयोग होने लगा, तो धीरे-धीरे काव्य शब्द का अर्थ संकुचित होने लगा। आज काव्य का अर्थ केवल कविता है और साहित्य का अर्थ व्यापक लिया गया। साहित्य का तात्पर्य अब कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, आत्मकथा, रेखाचित्र अर्थात् गद्य और पद्य की सभी विधाओं से होने लगी।

संस्कृत विद्वानों ने साहित्य अनेक परिभाषाएं दी हैं। संस्कृत साहित्य में साहित्य स्वरूप विश्लेषण का प्रारंभ आचार्य भरतमुनि के नाट्यशास्त्र से माना जाता है। साहित्य स्वरूप को स्वतंत्र रूप से विश्लेषण करने का प्रथम प्रयास अग्निपुराण में देखा जा सकता है। जिसके रचयिता वेदव्यास है।

आचार्य भामह - अपने ग्रंथ 'काव्यलंकार' में साहित्य की परिभाषा देते हुए कहते है- 'शब्दार्थो सहितौ काव्यम्'। भामह प्रथम आचार्य है, जिन्होंने काव्य लक्षण देते हुए कहा है कि शब्द और अर्थ का सहभाव ही काव्य है। काव्य के लिए शब्द और अर्थ की संगति आवश्यक है। शब्द दो प्रकार के होते है- सार्थक और निरर्थक। काव्य में सार्थक शब्दों का ही माहत्व होता है। क्योंकि सार्थक शब्दों में ही अर्थ प्रतिति कराने की क्षमता होती है।

आचार्य दण्डी – अपने ग्रंथ 'काव्यादर्श' में काव्य को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि- 'शरीर तावद् इष्टार्थ व्यावच्छिन पदावली'। अर्थात् काव्य का शरीर तो इष्ट अर्थ से युक्त पदावली होता है। यहाँ इष्टार्थ का अर्थ हैं – अभिप्रेत अर्थ, अपेक्षित अर्थ। इस अर्थ को दंडी ने काव्य न मानकर काव्य का शरीर माना है।

आचार्य वामन – आचार्य वामन ने अपने ग्रंथ 'काव्यालंकार सूत्र' में साहित्य की परिभाषा देते हुए कहते हैं- 'रीतिरात्म काव्यस्य् विशिष्ट पदावली रीति।' अर्थात् काव्य की आत्मा रीति होती है और विशिष्ट पदावली ही रीति है। वामन ने इस परिभाषा में विशिष्ट पदरचना को काव्य का शरीर माना है एवं रीति को काव्य की आत्मा माना है।

आचार्य विश्वनाथ – आचार्य विश्वनाथ ने अपने ग्रंथ 'साहित्यदर्पण' में काव्य की परिभाषा देते हुए कहते हैं – 'वाक्यम् रसात्मकम् काव्यम्' अथवा 'वाक्यं रसात्मकें अर्थात् रसयुक्त वाक्य ही काव्य है।

आचार्य मम्मट – आचार्य मम्मट ने अपने ग्रंथ 'काव्यप्रकाश' में साहित्य की परिभाषा देते हुए कहते हैं – 'तद्दोषौ शब्दार्थो सगुणवसंकृति पुनःक्यापि'। अर्थात् दोषरहित और गुणसहित शब्दार्थ ही काव्य कहा जा लकता है, जो कभी-कभी अलंकारों से रहित भी होते है।

पंडित जगन्नाथ – पंडित जगन्नाथ अपने ग्रंथ 'रसगंगाधर' में साहित्य की परिभाषा देते हुए कहते हैं – 'रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्द काव्यम्' अर्थात् 'रमणीय' अर्थ का प्रतिपादक शब्द ही काव्य है। यहाँ रमणीय का अर्थ हुआ आनंद प्रकट करनेवाला। पंडित जगन्नाथ 'रमणीय' का अर्थ चमत्कार पूर्ण आह्लाद् मानते है।

इस प्रकार संस्कृत के विद्वानों ने अपना मत काव्य में प्रकट की है।

प्रगतिशील, अनुभूतिशील मानव की भावनाओं का लिपिबद्ध रूप साहित्य है। ज्ञान-राशि के संचित कोष का नाम ही साहित्य है। अथवा सामाजिक मस्तिष्क अपने पोषण के लिए जो भाव-सामग्री निकालकर समाज को सौंपता है, उसी के संचित भण्डार का नाम साहित्य है।

साहित्य भावः इति साहित्यम् अर्थात् जिसमे हित की भावना निहित हो वही साहित्य कहलाता है।

भारतीय साहित्य

भारतीय साहित्य से तात्पर्य सन् 1947 के पहले तक भारतीय उपमहाद्वीप एवं तत्पश्चात् भारत गणराज्य में निर्मित वाचिक और लिखित साहित्य से है। दुनिया में सबसे पुराना वाचिक और लिखित साहित्य से है। भारत में सबसे पुराना वाचिक साहित्य आदिवासी साहित्य में है। इस लिए सभी साहित्य का मूल स्त्रोत आदिवासी साहित्य से है। सबसे पुराना जीवित साहित्य ऋग्वेद है जो संस्कृत भाषा में लिखा गया है। संस्कृत पाली प्राकृत और अपभ्रंश आदि अनेक भाषाओं से गुजरते हुए आज हमारे भारतीय साहित्य के आधुनिक युग तक पहुँच चुके हैं। भारत में 30 से ज्यादा भाषाएँ बोली जाती हैं। 100 से अधिक क्षेत्रीय भाषाएँ हैं। लगभग सभी भाषाएँ साहित्य का विकास हुआ है। भारतीय साहित्य किसी बड़े समन्दर से कम नहीं है। भारत की विभिन्न भाषाओं में लिखित साहित्य और अन्य भाषाएँ व संस्कृत साहित्य को रख दिया जाए तो समग्र विश्व का साहित्य आधा अधूरा हो जाएगा। भारतीय साहित्य का उद्भव एक ही मूल से हुआ है। भारत के ऐसे कई साहित्यकार है जो एकाधिक भाषाओं में अपना महत्वपूर्ण योगदान रहते हैं। भारतीय साहित्य की एकता के बारे में बात की जाए तो संस्कृति के रूप में भारतीय भाषा की एकता विशेष है। आधुनिक काल की स्वतंत्रता संग्राम से लेकर विभिन्न प्रवृत्तियों का प्रभाव तमाम भाषाओं में लक्षित होता है। राजनीतिक तौर पर भी ऐसी एकता हम देख सकते हैं। भारतीय साहित्य की ऐक्य की निशानी ही हम हमारे साहित्य काल विभाजन से ही देख सकते हैं। भारत के सभी कथाओं में राम कथा और कृष्ण कथा को समान महत्व दिया गया। रामायण महाभारत के अनुवाद भी प्राचीन काल से हम देख सकते हैं। सभी भारतीय

भाषाओं में काव्यशास्त्रीय मानक एक हैं। भरत के 'नाट्यशास्त्र' और 'काव्यानन्द' की प्रतिष्ठा सभी भाषाओं में मिलती है।

भारतीय साहित्यकारों की अवधारणा

आचार्य भामह ने नाट्यशास्त्र में काव्य या साहित्य को परिभाषित किया हैः- जिसकी रचना कोमल और ललित पदों में की गई हो, शब्द और अर्थ गूढ़ न हों, जनसाधारण जिसे सरलता से समझ सकें जो तर्क संगत हो वही साहित्य कहलाने का अधिकारी है। क्योंकि आचार्य भरत नाटक और काव्य को ही साहित्य की व्यापक परिधि में मानते थे। आचार्य भामह ने 'शब्दार्थौं सहितौ काव्यम्' –अर्थात् शब्द और अर्थ से युक्त या समन्वित रचना ही काव्य है जिसके कारण बाद में साहित्य नाम दिया गया। आचार्य दंडी ने उनके शब्दों में 'इष्टार्थव्य-वच्छिन्ना पदावली' अर्थात् इष्ट अर्थ को अभिव्यक्ति करने वाली पदावली ही काव्य या साहित्य है। रुद्रट के मतानुसार साहित्य को 'तन्तु शब्दार्थौं काव्यम्' कहकर परिभाषित किया है। राजशेखर ने साहित्य को शब्द और अर्थ के यथायोग्य सहयोगवाली उस पाँचवीं विद्या को साहित्य माना है। जो चार विद्याओं का सारभूत हैः- पुराण, न्यायदर्शन, मीमांसा एवं धर्मशास्त्र। कुन्तक ने अपने शब्दों में – शब्द और अर्थ का उचित सम्मिलन साहित्य है जिसमें रमणीयता, मनोहारता, आनंदभाव और रागात्मक तत्वों का सामंजस्य हो। वस्तुतः सर्जनात्मक साहित्य वही है जिसमें रमणीयता, मनोहारता, आनंदानुभूति, क्षमता एवं रागात्मक तत्वों का सामंजस्य स्थापन शब्द और अर्थ के धरातल पर हों। इसे विधायक साहित्य भी कहा जाता है। क्यों कि इसमें मानव विषय की विविध विषयक अनुभूतियाँ अपनी वैभवशीलता से अभिव्यक्ति पाती हैं।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपने शब्दों में कहा है कीः- 'सहित' शब्द से साहित्य में मिलन का भाव पाया जाता है। वह केवल भाव-भाव का, ग्रंथ-ग्रंथ का, ही मिलन नहीं मानव के साथ मानव का, अतीत के साथ वर्तमान का, दूर के साथ निकट का अत्यन्त मिलन भी है – जो साहित्य को छोड़कर अन्य कहीं संभव नहीं। भाव पाया जाता है। हमारा साहित्य ही हमारे समाज का प्रतिबिम्ब ही नहीं, वह उसका नियामक भी है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने साहित्य को मानव जीवन का एक परिमार्जित संस्करण के रूप में स्वीकार किया है। उनका कहना हैः- "हम साहित्य के किसी महान ग्रंथ को इसलिए नहीं महान कहते कि किसी व्यक्ति ने उसे महान कह दिया है, बल्कि इसलिए कि उसके पढ़ने से हम मानव जीवन को निविड़-भाव से अनुभव करते हैं या तो हम उसमें अपने को ही पाते हैं या अपने इर्द-गिर्द अनुभूत अर्थों को गाढ़भाव से अनुभव करते हैं।"

हिन्दी के विद्वानों के अनुसार लक्षण ग्रंथों के निर्माण की परंपरा आचार्य केशवदास से मानी जाती है। अतः हिन्दी साहित्य शास्त्र का प्रारंभ उन्हीं से माना जाएगा। आदिकाल में काव्य अंगों का भले ही गंभीर अध्ययन ना हुआ हो, लेकिन कवियों ने काव्य प्रयोजन, काव्य हेतु, भाषा प्रयोग आदि के लक्षण प्रस्तुत किए गए हैं।

भक्तिकाल के कवियों की उक्तियों में भी साहित्य के लक्षण प्राप्त होती है। कबीर कहते हैं – 'तुम जीन जानो गीत है, यह नीज ब्रह्मा विचार'। वैसे साहित्य को परिभाषित करने का विचार रीतिकाल में प्रखरता से होने लगा। किन्तु मध्यकालीन आचार्यों द्वारा प्रस्तुत परिभाषाओं में मौलिक चिंतन का अभाव रहा। वैसे ही संस्कृत के

किसी-न-किसी आचार्य का वह अनुवाद करते रहे। इसमें केशवदास चिंतामणी, त्रिपाठी, कुलपति मिश्र, कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर, आदि है।

साहित्य ही मानव को अन्य प्राणियों से कुछ विशिष्ट बनाती है। दंगा, लूटमार इत्यादि मनुष्य समाज में ही होता हैं। लेकिन ऐसा करना अपराध माना गया है ऐसे निंदनीय कृत्य न हों। हमारे मध्यकालीन कवियाँ चाहते तो वे एकांत में बैठकर ईश्वर की पूजा-पाठ और आराधना कर सकते। लेकिन उन्होंने अपनी रचनाओं में कल्याण तत्व का समावेश किया और समाज-सुधार को महत्व दिया। इस प्रकार एकांत में बैठकर कीर्तन भजन करने के बजाय संस्कृति का परिष्कार किया। साहित्य ने संस्कृति के परिवर्तन तथा रक्षण हेतु सदैव अपना सहयोग ही दिया है। संत कवियों द्वारा लिखी गयी रचनाओं ने भारतीय संस्कृति की रक्षा की है । संस्कृति और साहित्य के बीच बहुत कुछ समानताएं पायी जाती हैं। वे जिस प्रकार के हैं।

समन्वयवादी दृष्टिकोण

संस्कृति और साहित्य दोनों ही हमेशा समन्वयवादी दृष्टिकोण को महत्व देते हैं। इसलिए ये दोनों धर्म से भी श्रेष्ठ माने गये है। इस संदर्भ में जैनेन्द्र कुमार ने एक ऐसी महत्वपूर्ण बात कही है, जिसकी उपोक्षा नहीं कर सकते। उन्होंने कहा की समन्वय की साधना किए बगैर न साहित्य जीवित रह सकता है और न ही संस्कृति, भाषा चाहे जैसी हो, भावना और शैली चाहे जैसी हो, व्याकरण का परिष्कार भी न हो, किन्तु वह जीवन की, हृदय की चीज जरूर हो। वह हमारे कमजोरियों की दीवार में झरोखे पैदा करती है। जिससे शुद्ध हवा आने-जाने लग जाय। मनुष्य ने आपस में दीवारें खड़ी कर दी गई हैं साहित्य ने उस दीवारों के बीच खिड़कियाँ खोल दी है।

मंगल कामना

जीवन में सब मंगलमय होने केलिए चाहता है। मनुष्य हर चीज के लिए मंगल चाहता है। सुबह से उठने से लेकर रात तक हर काम मंगलमय होने केलिए मनुष्य इच्छा करता रहता है।

आज से हजारों वर्ष पहले मनुष्य ने तय किया की वह दरिद्रता की अवस्ता में नहीं रहेगा, वह सामाजिक रूप में भी समृद्ध रहेगा, केवल एक व्यक्ति ने ही नहीं परिवार ने नहीं, एक जाति ने नहीं, बल्कि समूचा मानव समाज का समृद्धि चाहता है। अमंगल का अंत चाहता है, उल्लास और उमंग चाहता है। दीपावली का उत्सव उसी सामाजिक मंगलेच्छा का दृश्यमान मूर्तरूप है'। जैसे ही हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने निबन्ध में दीपावली सामाजिक मंगलेच्छा का प्रतिभा पर्व में हमारी संस्कृति में व्यक्त मंगलकामना की इन शब्दों में स्पष्ट किया।

दार्शनिकता

भारतीय दर्शन यह दर्शाता है कि मनुष्य किन मार्गों से मोक्ष प्राप्त कर सकता है। यही मत भारतीय संस्कृति में इतना व्याप्त है कि हम यह अच्छी तरह जानते हैं। मोक्ष की प्राप्ति ही अंतिम ध्येय है। दर्शन का एक अंगूर छायावादी कवियों ने अपने काव्य में रहस्यवाद को ले लिया।

आध्यात्मिकता

भारतीय संस्कृति सदा अस्थावान रही है। हमने प्राचीन काल से ही परम सत्ता में अटूट रखा है। आध्यात्मिकता ने विविध देशों की संस्कृति के कला, साहित्य, संगीत, विज्ञान, फिल्म आदि को प्रभावित किया। भारतीय संस्कृति में एक उपासक के बदले अधिक देवी-देवताओं की पूजा करते हुए यह नहीं भूला मूल क्या सत्ता की अभिव्यक्ति है

भारतीय संस्कृति के अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रंथ श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने अपने आपको सभी तत्वों में श्रेष्ठ रूप से व्यक्त बताया। वेदों में सामवेद, देवताओं में देवेन्द्र, समस्त इन्द्रियों में मन, समस्त प्राणियों के चेतना में मैं ही हूँ ऐसे श्रीकृष्ण ने कहा है।

पाश्चात्य साहित्यकारों ने भी साहित्य की विभिन्न अवधारणाएँ की है। हडसन के अनुसार, साहित्य मूलतः भाषा द्वारा जीवन की अभिव्यक्ति है। एम जी भाटे के शब्दों में, मानव के अन्तस्थल से निःसृत होनेवाला वह संगीत ही साहित्य है। जो भाषा को माध्यम बनाकर जीवन के साथ सांमजस्य स्थापित करे वही साहित्य है। पाश्यात्य अवधारणा है कि साहित्य इस विराट जगत् के प्रति मानव मन की वह प्रतिक्रिया है, जो प्रधानतः भावात्मक होती है और वाणी द्वारा अभिव्यक्त होती है। फोर्ड मैडांक्स की मान्यता है कि मानव के लिए उपयोगी तथा रुचिकर शब्दों को साहित्य कहते हैं। सिगमण्ड फ्रायड के मतानुसार साहित्य मानव की अतृप्त वासनाओं की तृप्ति का साधन है। पाश्चात्य निबंधकार हडसन ने भाषा द्वारा जीवन की अभिव्यक्ति को साहित्य की संज्ञा दी है। पाश्चात्य अवधारणाओं में साहित्य को अतृप्त वासनाओं की तृप्ति का साधन माना गया है जो सृजनात्मक वासनाओं का उत्प्रेरक भी है।

भारतीय मनीषा साहित्य को सत्यं, शिवं, सुन्दरम् की अभिव्यक्ति मानती है। साहित्य अपने आप में व्यापक शब्द है जो वास्तविक परिभाषा के अभाव में सर्वश्रेष्ठ विचारों की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त होता है वह अभिव्यक्ति भी लिपिबद्ध होती है। साहित्य सहजानुभूति की अभिव्यंजना है, संवेदनशीलता का द्योतक और सहिष्णुता का परिचायक है। साहित्य ही व्यष्टि मानव को समष्टि मानव की श्रेणी दिला देता है। साहित्य समाज के अन्य मनुष्यों और व्यक्तियों से अधिक संवेदनशील बनाता है, सरल और तरल बनाता है।

साहित्य की विधाएँ है दो हैः- प्रथम स्मारक साहित्य इसके अंदर (नाटक, काव्य, कहानी, उपन्यास, निबंध, समीक्षा, संस्मरण, रेखाचित्र, साक्षात्कार, आत्मकथा, जीवनी, पत्रलेखन) आदि । ज्ञान दूसरा वर्ग साहित्य है (गणित, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, दर्शनशास्त्र, बूगोल, विज्ञान आदि। लेकिन भावप्रधान साहित्य ही वास्तविक साहित्य है जिसको 'लिटरेचर' के पर्याय के रूप में स्वीकार किया गया है।

वस्तुतः साहित्य और संस्कृति का अन्योन्याश्रित संबंध आदिकाल से चला आ रहा है। दोनों एक दूसरे को प्रेरित करते हैं और एक-दूसरे को सक्रीय बनाते हैं ।

साहित्य और संस्कृति का संबन्ध

साहित्य ही संस्कृति को ऊर्जवान बनाता है, और उसके क्षेत्र में अहं भूमिका निभाते हैं। साहित्य के अभाव में विभिन्न जातियों की संस्कृति परंपराएँ और अवधारणाएँ लुप्त होता जा रहा है। यही कारण से प्रगतिशील और विकसित राष्ट्र अपनी संस्कृतिक परंपराओं और मान्यताओं के रक्षार्थ सद्साहित्य सृजन करता है। तथा संस्कृति को बल प्रदान करता है। राष्ट्रीय जीवन में साहित्य और संस्कृति दोनों का विशेष योगदान रहता और दोनों एक-दूसरे के सहायक सिद्ध होते हैं। साहित्य ही यथार्थ और कल्पना की सीमा पर साहसपूर्वक बढ़ता है। साहित्य ही अस्मिता की पहचान कराता है और स्थितिबोध जगाता है। जड़ों की पहचान कराकर उनके द्वारा अपनी मिट्टी से रस खींचने की प्रेरणा देता है, और दक्षता बढ़ाता है। साहित्य ही बदलाव की संभावनाएं उजाकर करता है, बदलने की प्रेरणा देती है। प्रत्येक देश की संस्कृति के विकास में उस देश का साहित्य किसी न किसी रूप में काम सिद्ध है। साहित्य समाज को संस्कार देता है और सामाजिक बनाती है, सहिष्णुशील बनाती है एवं संस्कारवान बनाती है। भारतीय साहित्य भारतीय संस्कृति के आधार पर मानव मूल्य और विश्व मानवता को स्थापित करते है, अंगीकार करते हैं। जीवन की विषम परिस्थिति में आनंद की खोज ही भारतीय साहित्य की मूल प्रवृत्ति है। यह आनंद ही सत्, चिन्तन का स्वरूप बनकर सच्चिदानंद के रूप में परिणत हो जाता है। काव्य की आत्मा भारतीय साहित्य में रस को ही स्वीकार किया गया है। पाठक और श्रोता के हृदय में रस का संचार करना ही आनंद का उन्मेष है जो भारतीय साहित्य का उद्देश्य भी है। हमारा देश विभिन्न भाषाओं, जातियों एवं संस्कृतियों का देश है, परन्तु हमारे साहित्य की मूलधारा एक ही है। सब में राष्ट्रीय गौरव की झलक है। भारत में नारी का सम्मान है, नैतिक नियमों का आग्रह है, प्रकृति के प्रति श्रद्धा और भक्ति है, बाल्यावस्था में सदाचार सिखाते हैं, संस्कारों की शिक्षा होती है। साहित्य समाज को भाईचारा का संदेश दिया है। साहित्य जोड़ने का संदेश देता है, संस्कृति भी वैसा है समाज को जोड़ता है। सद् साहित्य सदैव सांमजस्य होता है। भारत के पौराणिक ग्रंथ और भारतीय संस्कृति दोनों में राष्ट्रगौरव को विशेष महत्व देता है जिसके लिए विश्व भारत का सम्मान करता है। मानव तत्व को देवत्व तक पहुँचाता है। ज्ञानार्जन और विश्व कल्याण की भावना भारतीय साहित्य में हमें देखने को मिलता है।

हिन्दी साहित्य

भारत की प्रमुख भाषाओं से हिन्दी का रिश्ता है। भारत में बोली जानेवाली भाषाओं का संबन्ध दो परिवारों से हैं। मुख्यतः वे आर्य और द्राविड़ परिवार की भाषाओं से हैं। आर्य परिवार की भाषाएँ उत्तर-पूर्व तथा मध्य भारत में बोली जानेवाली है। जिसका विकास संस्कृत से मानी जाती है। द्राविड़ भाषा के चार प्रमुख भाषाएँ हैं, जिसका दक्षिण भारत में प्रयोग होता है। आर्य और द्राविड़ परिवार की भाषाओं में हिन्दीत्तर आर्य भाषा और दूसरा हिन्दीत्तर अनार्य भाषा के प्रमुख भेद है। हिन्दीत्तर आर्य भाषा के अन्तर्गत मराठी, पंजाबी, सिन्धी, गुजराती, असमी, उड़िया, बंगला भाषा का समावेश किया जाता है।

भारत में हिन्दी का उदय आकस्मिक नहीं है। उत्तर-पश्चिमी भारत से मुस्लिम आक्रमण प्रारंभ होने लगे थे और पेशावर से दिल्ली तक का क्षेत्र मुस्लिम आक्रमणकारियों से संत्रस्त थे। इन आक्रमणकारियों का प्रभाव हिन्दी

क्षेत्र पर पड़ा इन आक्रमणकारियों ने हिन्दी जाती और हिन्दी की परिकल्पना की। हिन्दुस्तान, हिन्दी और हिन्दवी जैसे क्यों की उन्हें पेशावर से दिल्ली तक उन्हें भाषा का एक रूप ही देखने को मिला था। मुस्लिम शासकों ने भारत में राज्य करने और रहने के लिए इसी भाषा को चुन लिया क्यों की हिन्दी के माध्यम से ही वे पूरे भारत से संपर्क कर सकें। इस प्रकार हिन्दी का उदय संघर्षों से हुआ।

भारतीय साहित्य की सबसे पुरानी या प्रारंभिक कृतियाँ मौखिक रूप से थी। संस्कृत साहित्य का शुरुआत होती है 55000 से 5200 ईसा पूर्व के बीच संकलित है ऋग्वेद से जो पवित्र भजनों का एक संकलन है। संस्कृत के महाकाव्य हैं - रामायण और महाभारत । मध्य काल में पहले 11 वीं शताब्दी में कन्नड़ और तेलुगु साहित्य की शुरुआत हुई। उसके बाद 12 वीं शदाब्दी में मलयालम और उसके बाद मराठी, बंगाली, हिन्दी आदि की हुई। हिन्दी की विभिन्न बोलियाँ पारसी और उर्दु के भी साहित्य उदित हुआ। हिन्दी साहित्य का प्रारंभ मध्यकाल में अवधी और ब्रज भाषाओं में धार्मिक दर्शनिक काव्य रचनाओं से माना जाता है। इस काल से प्रसिद्ध कवियों में तुलसीदास और कबीर प्रमुख हैं। हिन्दी में भारतीय साहित्य की ये विशिष्टताएँ बदस्तूर बनी हैं बल्कि एक नई जटिलता के साथ इसके प्रणेताओं को दो स्तरों पर काम करना पड़ा बृहत्तर भारत की संस्कृति व्यवहार भाषा है। हिन्दी जो आम आदमी की जरूरत की भाषा है, जैसे प्रकृति के खोक में पैदा हुई है। हमें यह कहना कठिन है कि हिन्दी का जन्म भारत के किस प्रदेश में हुई। जिसतरह यह आम आदमि के रूप में किस तरह विकसित हुई। जिस तरह आम आदमी के संतानें हर जगह पर जैसे चौराहे पर, घाटपर, हर तीर्थ स्तानों पर, श्रमिकों और भिखमांगों की टोल में, क्रांतिकारियों की हर जमात में, कैसे यह हिन्दी पैदा हुई। हमें यह मानना निराधार नहीं है कि हिन्दी का विकास भारत की लोकचेतना का विकास है, रूढ़ियों से मुक्त करके भारतीय संस्कृति का मूल चेतना का संरक्षण का इतिहास है हिन्दी। साहित्यिक और सांस्कृतिक युग के बदलने के साथ हमारे सांस्कृतिक और साहित्यिक अभिरुचियाँ, हमारी मान्यताएँ, हमारे विचार और विश्वास बदलते हैं और उनके अनुरूप साहित्य और सांस्कृति का भी नया रूप सामने आता है।

हिन्दी भाषा में कुलीनता के रुद्ध द्वार पर पहली दस्तक थी कालिदास के साहित्य में। इतिहास की यह चिंतनीय दुर्घटना है कि कालिदास के विक्रमोवर्शीयम् के चतुर्थ अंक में उन अपभ्रंशों को पुरानी हिन्दी नहीं माना गया, जो उसके प्रथम उत्तराधिकारी रहे हैं। सरहपा, स्वयंभू, और अबदुलरहमान का हिन्दी पर उनमें विद्यमान हैं। अभिज्ञान शाकुन्तलम् में बैदिक और विक्रमोर्वशीयम् दोहा और सोहर जैसे लौकिक छंदों का प्रयोग भी इस तथ्य के समर्थक हैं। हिन्दी साहित्य के आदिकाल साहित्य, भक्तिकाल साहित्य एवं रीतिकाल साहित्य का काव्य, तथा स्वतंत्रता आन्दोलन के समय लिखे गये देशभक्ति गीत आदि इस तथ्य के प्रमाण हैं कि किसी भी काल-विशेष का साहित्य अपने समकालीन समाज की संस्कृति को निरूपण करता है।

संस्कृत के समानांतर लोकभाषा भी नाना रूपों में विकसिक हो रही थी और उसमें लोक संस्कृति एवं लोकमानस का मुँह खोल रहे थे। कालक्रम के पश्चात लोकभाषा संस्कृत के रचनाकारों को मान्यता प्राप्त होने लगी। सातवीं शताब्दी के प्रारंभ में ही बाणभट्ट ने 'हर्षचरित' में अपने परम मित्र भाषा कवि ईशान का आदरपूर्वक उल्लेख किया। राजस्थानी की चारणों, मैथिली के विद्यापति, ब्रजभाषा के सूरदास, और अवधी के तुलसीदास को हिन्दी के

कवि माना जाता है। क्योंकि इसका स्पष्ट जवाब चंदबरदाई ने अपने आपको राजस्थानी कवि कहा है, न ही विद्यापति ने अपने को अवधी का कवि स्वीकार किया है। सातवीं शती बीतते बीतते तत्कालीन सामाजीक गतिशीलता, विद्रोह और यथार्थ की वह चेतना है हिन्दी साहित्य का सर्वोपरि लक्षण और महान परंपरा बन जाना। हम जिन्हें सिद्ध कहते हैं वे दरअसल में अपने समय के प्रबुद्ध चिंतक थे। हिन्दी साहित्यकारों ने हिन्दी साहित्य को पारिभाषित किया आचार्य महावीर प्रसाद द्वीवेदी के शब्दों में ज्ञान राशि के संचित कोश को साहित्य कहते हैं। डॉ. श्याम सुन्दर दास के अनुसार, मानव मस्तिष्क के पोषण के लिए भाव सामग्री के संचित भण्डार को साहित्य कहा जाता है। बाबू गुलाबराय के अनुसार समाज का हित संपादन करने वाला ही साहित्य है। मुंशी प्रेमचंद के शब्द में साहित्य की सर्वोत्तम परिभाषा जीवन की आलोचना है।

ब्रिटिश राज के दौरान, रवीन्द्रनाथ टैगोर के कार्यों द्वारा आधुनिक साहित्य का प्रतिनिधित्व किया गया है। आधुनिक युग में खड़ी बोली ज्यादा लोकप्रिय हो गई और संस्कृत में नानाविध साहित्य की रचना हुई। देवकीनन्दन खत्री द्वारा लिखित 'चन्द्रकान्ता' को हिन्दी गद्य की प्रथम कृति माना गया है। मुंशी प्रेमचंद हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार थे। मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा और रामधारी सिंह दिनकर इस काल के प्रसिद्ध कवि रहे। स्वतंत्रता संग्राम के आंदोलन को बल देने और समाज में मौजूद बुराइयों को दूर करने के उद्देश्य से रचनाएँ तैयार की गयी थी। 150 वर्षों के दौरान आधुनिक भारतीय साहित्य के विकास में बहुत से लेखकों का योगदान रहा है, महान बंगाली लेखक रवीन्द्रनाथ टैगोर पहले भारतीय थे उन्हें 1913 में साहित्य के लिए नोबेल पुरस्कार मिला।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. साहित्य और संस्कृति - डॉ. पशुपति उपाध्याय
2. लोक संस्कृति – डॉ. गीता पाण्डेय
3. आंचलिक उपन्यास में लोक संस्कृति – डॉ. एल. लमणी
4. अब्दुल बिस्मिल्लाह का कथा साहित्य - डॉ. वसीम
5. संस्कृति भाषा और साहित्य – डॉ. एल लमणी, डॉ. पशुपति उपाध्याय

डॉ .रविशर्मा मधुप की बूँद –बूँद बनती सरिता नामक लघु कविता संग्रह में मूल्य की खोज

डॉ .सुर्यबोस
सहायक आचार्य
हिंदी प्रचार केंद्र, कोदुन्ल्लुर, त्रिश्शूर

मूल्य शब्द वस्तुतः नीतिशास्त्रीय value का पर्यायवाची शब्द है। मूल्य का तात्पर्य किसी वस्तु के मूल्य का भाव हो सकता है या उसका अभाव हो सकता है। समाजशास्त्र विवेचन में ऐसा कहा गया है कि, ''मूल्य वस्तुतः सत्य और महत्वपूर्ण के प्रति अचेत मान्यतायें हैं, कुछ मूल्य प्रत्येक संस्कृति में निहित रहते हैं। किसी भी संस्कृति की मौलिक विशेषताएँ आधारभूत मूल्यों की प्रतिबिम्ब होती है।

भारतीय संस्कृति के महत्वपूर्ण परंपरागत मूल्य हैं – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। मोक्ष का अर्थ जीवन – मृत्यु के चक्र से मुक्ति है। काम का अर्थ सर्जनात्मक इच्छा और अर्थ का अभिप्राय भौतिक कल्याण है। इन सब के मूल में निर्देशित करनेवाली शक्ति धर्म है। सामान्य धर्म में चौदह धर्मों की व्यवस्था की है; वह इस प्रकार है – श्रध्दा, मन:, प्रसाद अहिंसा, भूतडी तत्व, सत्यवचन, आस्तेयय, ब्रह्मचर्य, अनुपधा, क्रोधवर्जन, अभिषेचन, शुचिद्रव्य सेवन, विशिष्ट देवता भक्ति, उपवास, अप्रमाद। भारत में प्राप्त सभी दर्शनों में आचरण तथा व्यवहार केलिए ऐसी मानदंडों की व्यवस्था थी। इन्हीं मानदंडो के माध्यम से तद्युगीन समाज के मूल्यों की प्राप्ति की जाती है। जिस प्रकार मनुष्य अपने रीढ़ के बल पर खड़ा है, उसी प्रकार मूल्य अपनी तात्विक सत्य के आलोक के बल पर जीवित है। ये तात्विक सत्य देश –काल सापेक्ष होते हैं।

पाश्चात्य समाजशास्त्री वूड्स के अनुसार 'मूल्य दैनिक जीवन में व्यवहार को नियंत्रित करने के सामान्य सिद्धांत है। मूल्य न केवल मानव व्यवहार को दिशा प्रदान करता है, बल्कि वह अपने आप में आदर्श और उद्देश्य भी है। जहां मूल्य होता है वहां न केवल यह देखा जाता है कि क्या चीज़ होना चाहिए, बल्कि यह भी देखा जाता है कि वह सही है या गलत है। मधुप जी का 'मैं ने जाना' नामक कविता यहां उल्लेखनीय है। कविता है -

"बिना मांगे ही
मैं ने पाया बहुत कुछ
घर से, परिवार से
अपनों से परायों से
समाज से, संसार से।
इतना पाकर पाया जब मैं ने
सभी सौभाग्यशाली नहीं मुझसे ।
खाली हाथ सूनी आंखें
अतृप्त इच्छायें लिए
मृतप्राय मांगते लोग

पाते झिड़कियां, डांट ।
गम खाकर, आंसू पीकर
जिंदा रहते लोग ।
तो मैं ने जाना –
कुछ देने का महत्व
ख़ुशी बांटने का सुख
किसी के आंसू पोंछने का आनंद ।
तब मैं ने समझा
महात्मा बुद्ध, महात्मा गांधी, मदर तेरेसा
जैसों के जीवन दर्शन को ।"

दार्शनिकों का मत है कि जीवन की सार्थकता केलिए मानव मूल्य अनिवार्य है। उचित –अनुचित, कर्तव्य –अकर्तव्य, नैतिक –अनैतिक तथा अन्तर्विवेक आदि के बारे में समझना उच्चतर जीवन मूल्यों की प्राप्ति केलिए ज़रूरी है। हमारा ध्यान कुछ ऐसे मूल्यों पर केन्द्रित करना चाहिए जो स्वयं समाज के अस्तित्व तथा हित को नियंत्रित करते हैं। जैसे अनुशासन, आत्मसंयम, आत्मनियंत्रण, नियमों के प्रति सम्मान, सीमित इच्छायें, धैर्य, परस्पर सहायता तथा शिक्षण। किसी भी समाज के व्यक्ति ऐसे अच्छे मूल्यों के साथ जियेंगे तो उस समाज का सर्वांगीण विकास होगा। यही कवि का दर्शन है। उनकी 'नेक इरादा' कविता देखिये -

" जियो जीवन सादा ।
मत करो झूठा वादा ।
अपेक्षायें रखो कम
काम करो ज्याता
सत्य की होती विजय
मत ओढो झूठ का लबादा ।
नेकी से उपजती नेकी
रखो सदा नेक इरादा ।"

जीवन में सबसे महत्वपूर्ण गुण है – नैतिक मूल्य। उसमें भी चारित्रिक मूल्यों का एक व्यक्ति में होना परम शुभ माना जाता है। चारित्रिक मूल्यों की प्राप्ति केलिए परस्पर सहायता, न्याय के प्रति सम्मान, आत्मसंयम तथा आत्मनियंत्रण का अभ्यास करना जरुरी है। आधुनिक सामजिक परिस्थितियों में उपर्युक्त नैतिक मूल्यों का होना महत्वपूर्ण है। उनके अनुरूप आचरण करने से समाज सुव्यवस्थित हो सकता है, तथा विकास के पथ पर अग्रसर हो सकता है। 'अमीर' नामक अपनी कविता में मधुप जी इन्हीं मूल्यों को व्यक्त करने का प्रयास किया है। पंक्तियां देखिये -

" अमीर वह नहीं
है जिसकी जेब भरी नोटों से ।

अमीर है वह
है जिसका दिल भरा भावों से ।
भाव वे, जो जानें
परोपकार की कला ।
बड़ा वह नहीं
है जिसके पास गाडी – बंगला बड़ा
बड़ा है वह
है जिसके पास दिल बड़ा ;
दिल वह
जो चाहे सबका भला ।"

पारिवारिक सम्बन्धों में मूल्यों का स्थान कितना महत्वपूर्ण है। इसका एहसास हमें है। मूल्यों के नष्ट हो जाने पर पति- पत्नी के बीच मनमुटाव आने लगता है। घर-गृहस्थी को सुचारू रूप से चलाने केलिए मूल्यों का कायम रखना बहुत जरूरी है। 'आदर्श संबंध' नामक कविता में इसका मिसाल पाया जा सकता है -

"आदर्श संबंध
वे नहीं होते
जिसमें न हो कभी
आपसी नाराज़गी, मनमुटाव
खीझ, अनबन या गलतफहमी ।
आदर्श संबंध होते हैं वे
जिसमें तुरंत हो जाता है –
मेल –मिलाप, सुलह-समझौता
मानना – मनाना, मामला निपटाना
और बना लेना पुनः
सहज - सरस संबंधों को ।"

मूल्यों को सहज रूप से आगे ले जाने का सबसे असरदार रास्ता यहां कवि बता रहे हैं।

मूल्यों के प्रति हमारी जो धारणा है; वह हमेशा सकारात्मक है। लीक के विरोध में जो मूल्य है; उसे हम मूल्य नहीं मानते। हालांकि किसीने कहा है कि- "संसार में कुछ भी शुभ व अशुभ नहीं है, वह केवल दृष्टिकोण है कि अमुक शुभ है अमुक अशुभ है। "हम यह मानने केलिए तैयार नहीं है। फिर भी अतिरिक्त एक ऐसा वर्ग है जो निराशा अनास्था, अविश्वास, अकेलापन, संत्रास, आदि धुरीहीन जीवन मूल्यों को अभिव्यक्ति प्रदान कर रहा है। वे पुराने मूल्यों को नकारते तो हैं, किन्तु नए मूल्यों को स्थापित करने में असमर्थ रहे हैं।

आज के ज्यादातर नौजवानों को अच्छे मूल्यों पर आस्था नहीं है, वे आज में जीते है। खाओ, पीओ, मौज मनाओ सिद्धांत को अपनाकर मस्ती कर रहे है। कल घर, गृहस्थी कैसे संभालें इसकी चिंता उन्हें नहीं सालती। 'तलाक' नामक कविता में ऐसी स्थिति का खुलासा कवि कर रहे है -

"कालेज में
मस्त हाथी से झूमते
ये लड़के
कौन जाने कल
नौकरी की तालाश में
भटक कर
चहक जायेंगे
सूखी बंजर ज़मींकी तरह "

अनास्था और अविश्वास से भर गया है सामान्य जनता की ज़िन्दगी आजकल समाज में देखा जाता है कि जहां क्षमता या शक्ति कम पड़े वहां लडाई होती है। शक्तिशाली ही आगे बढ़ सकते है। 'चीरहरण 'नामक कविता में मधुप जी ने समाज के इस नकारात्मक मूल्य पर चोट लगाया है। देखिए -

"अभी भी हो रहा है
मूल्यों –विश्वासों का
चीर हरण, यत्र –तत्र –सर्वत्र
और चुप है सब
भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र"

एक आदमी को महात्मा या महान तभी कहता था, जब वह ईमानदार हो। ईमानदारी एक उत्कृष्ट मूल्य मानता है। आज भी इस में लोगों को भरोसा है। लेकिन आजकल कहाँ देखने को मिलती है ईमानदारी ? इस पर व्यंग्य करते हुए मधुप जी ने 'ईमानदारी' नामक कविता लिखा है, देखिये

"सिमटी, सिकुड़ी, सकुचाई सी
नव वधु, नवोढा नायिका सी
अपना अस्तित्व बचाए
गुज़र जाते है भीड़ के बीच से
सचमुच ईमानदारी आज
कितनी गौण हो गई है
न चाहते हुए भी
भीड़ में खो गयी है "

मूल्यों के बारे में जब भी हम चर्चा करते है, उसके जड एवं नैतिक मूल्यों के प्रति आस्था ही काम करता है। नैतिकता के बिना दुसरे मूल्यों की बातें ही नहीं हो सकती। मधुप जी कहते है कि आजकल नैतिकता की ऐसी स्थिति है कि दूसरों के बारे में सोचो ही मत। उनकी "औत ऑफ़ डेट" नामक कविता देखिये

"जी हाँ मैं हूँ नैतिक मूल्य
आज मैं औत ऑफ़ डेट हो गया हूँ
चाह कर भी नहीं पा रहा हूँ बदल
इक्कीसवीं सदी कि दौड़ में
लेट हो गया है"

आधुनिक युग में जीवन मूल्य तीव्र गति से परिवर्तित हो रहे है। समाज के विविध क्षेत्रों में मूल्य क्रान्ति का स्वर मुखर है। पुरातनता के प्रति विद्रोह एवं नवीनता के प्रति आस्था का आग्रह बढ़ता जा रहा है। आज भारतीय समाज में परम्परित एवं नवीन मूल्यों का संघर्ष प्रबल रूप में अनुभव किया जा रहा है। हमारी पुरातन परम्पराएं, मान्यताएं, आदर्श और मूल्य विघटित हो रहे है और उनके स्थान पर नवीन मूल्यों का आविर्भाव हो रहा है। वही मूल्य आज समाज में स्वीकार्य है जो युग की परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तित होकर समाज की प्रगती में सहायक है। अतः हमें मूल्य परिवर्तन की प्रक्रिया को समझ कर उन मूल्यों पर विचार करना चाहिए जो समसामयिक परिस्थितियों के अनुरूप निर्मित हुए है।

डॉ रविवर्मा मधुप भी इसी मुद्दे पर बल देते है। जब भी हम मूल्यों की चर्चा करते है, मूल्य हीनता के प्रति भी सजग होना पडेगा। यही उनका आदर्श है। मूल्यों को कायम रखने का प्रयत्न कवी के हिसाब से जारी है। लेकिन फिर भी ज्यादातर हमारे समाज में मूल्यहीनता ही दिखाई देती है। कवि के मत में जब तक पारिवारिक स्तर से सही मूल्यों को अपनाया नहीं जाता समाज ऐसा ही रहेगा .बूँद बूँद बनती सरिता नामक कविता संग्रह में उन्होंने इसी तत्व पर बल दिया है .

आधार ग्रन्थ

डॉ .रविशर्मा मधुप - बूँद –बूँद बनती सरिता

आधुनिक समाज और मीडिया विमर्श के आयाम

डॉ. विपिन कुमार वी
अतिथि आध्यापक
श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय, पन्मना कैंपस

समकालीन साहित्य में विमर्श की प्रतिक्रिया और तीव्रता ज़ोर पकड़ती जा रही है। विभिन्न विधाओं और माध्यमों से विमर्श के अलग-अलग मुद्दे सामने आ रहे हैं। साहित्यिक रचना का संसार आजकल ऐसे ही विमर्श की कसौटी पर आधारित है। वैज्ञानिक उन्नति के साथ ही देश, प्रांत, स्थान आदि सभी से जुड़ी अनेक समस्याएँ हरेक कोने तक पहुँच रही है और हम जानते हैं कि इसमें सबसे बड़ा हाथ मीडिया का है। भाषा का स्थान भी मीडिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। "आज मीडिया को सबसे अधिक ज़रूरत भाषा के जानकारों की है। आज आवश्यकता से अच्छे संपादक, अनुवादक, संवाददाता, प्रूफ रीडर, डॉक्यूमेंटरी रायटर, पटकथा-लेखक, संवाद लेखक, गीतकार और कॉमेंटर की है, लेकिन योग्य व्यक्तियों के अभाव के कारण मीडिया का काम यूँ ही निपट रहा है।"[1] मीडिया जगत का जाल आज इतना व्यापक हो चला है कि आधुनिक मानव जीवन का इससे बाहर निकलना बड़ा मुश्किल है। कंप्यूटर, टेलिविज़न, मोबाइलफोन इत्यादि आज जन-जीवन के एसे माध्यम बन गए हैं जिन्हें विकास के इस काल में अलग रख पाना असंभव है। समाचार, विज्ञापन आदि के बलबूते पर मीडिया आज सभी देशों की खबरों को प्रत्येक मानव के जीवन से जोड रहा है। हिंदी सिनिमा भी आज समकालीन मुद्दों को साथ लेते हुए मनुष्य और सामाजिक जीवन से जुड़ी परिस्थितियों को उजागर करने में सक्षम नज़र आ रही है। सिनिमा जगत का क्षेत्र विस्तार पकड़ता जा रहा है और इसमें कोई संदेह नहीं है कि इसका क्षेत्र समाज के उच्च वर्ग से लेकर आम लोगों की ज़िंदगी तक को प्रभावित कर रहा है। इसका अहम कारण कहीं न कहीं इन फिल्मों, सीरियलों और आधुनिक युग के बोंब 'वेब सीरीज़' में ऐसे सभी वर्ग से जुड़ी कुंठाओं और समस्याओं का चित्रण विभिन्न रूपों में देखने को मिलता है। वस्तुतः फिल्म अथवा सिनेमा, आधुनिक सीरियल, वेब सीरीज़, इत्यादि फैंटेसी, कल्पना, रोमानियन, यथार्थ, हास्य, शोक, त्रासदी, इतिहास, वर्तमान, भविष्य इन सभी भावनाओं तथा संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला, पैंटिंग, अभिनय, नृत्यकला आदि कलाओं की रंगभूमि है। आज का यह क्षेत्र अत्यधिक विकसित एवं वैज्ञानिक और तकनीकी प्रणाली से युक्त है।

यथार्थ मुद्दों, क्षेत्र तथा वहाँ की भाषा आदि को ध्यान में रखते हुए आज की फिल्मों को रूप दिया जा रहा है। जैसा समाज, जैसा मनुष्य, जैसी वहाँ की परिस्थितियाँ इन सब को हू-ब-हू फिल्मों में उतारा जा रहा है। हॉलिवुड के प्रशस्त निर्माता एवं निर्देशक अनुराग कश्यप की बहतरीन फिल्म 'गैंग्स ऑफ वासेपुर' में आज के भारतीय समाज में व्याप्त प्रत्येक मुद्दों एवं समस्याओं को बखूबी से ढाला गया है। निम्न वर्ग, मध्यवर्ग एवं उच्चवर्ग के आपसी संबंधों और संघर्षों को बड़ी ही बारीकी से फिल्म में उतारा गया है। कहा जा सकता है कि गुंडों, नशीले व्यापारियों और राजनीतिक व्यवस्था तक को प्रश्न की नोक पर रखा गया है। भाषा से लेकर दृश्यों तक को सामाजिक यथार्थ की कोटी में रखा गया है। अश्लीलता और निचले दर्जे तक के संवादों को बड़ी ही बारीकी से उभारा गया है। जो साधारण समाज के अति साधारण वर्ग तक को प्रभावित करते हैं, जो इस फिल्म की प्रसक्ति का एक कारण भी

है। यह फिल्म भी किसी मशहूर बॉलीवुड फिल्म की तरह प्रतिशोध की कहानी बयान करती है। मगर बदले की कहानी का विस्तार किसी उपन्यास की तरह फैलाव लिए है। ढेर सारी घटनाएँ, चरित्र, उनके आपसी संबंध और बैकड्रॉप में चल रही राजनीतिक उथल-पुथल। ये घटनाएँ आज़ादी के पहले से लेकर मौजूदा सदी के शुरुआती वर्षों तक फैली हुई है। अनुराग ने बिहार के धनबाद जिले में कोयला खदान माफिया की आपसी रंजिश की इस कहानी को बयान करते वक्त परिवेश और चरित्र की छोटी से छोटी बारीकियों को पर्दे पर उतारा है। 'गैंग्स ऑफ वासेपुर' के दो भाग हैं जिसमें बहुत से किरदारों ने भाग लिया है। फिल्म का दूसरा भाग ठीक वहीं से शुरू होता है जहाँ पहला खतम होता है 'गैंग्स ऑफ वासेपुर' दो परिवारों की आपसी दुशमनी की कहानी है, जिसमें अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए एक दूसरे के परिवार के लोगों की हत्या की जाती है 'बदला' बॉलिवुड का पुराना फॉरमुला है और जब अनुराग कश्यप ने अपनी पहली कमर्शियल फिल्म (जैसा कि वे कहते हैं) बनायी तो इसी फॉर्मूले को चुना।

अनुराग का बचपन उत्तर भारत के एक छोटे शहर में बीता है। बी और सी ग्रेड फिल्म देखकर वे बड़े हुए और उन्होंने अपनी उन यादों को फिल्म में उतारा है। वासेपुर की युवा पीढ़ी संजय दत्त और सलमान खान बनने के सपने देखती रहती है, जैसा आज के प्रत्येक समाज में हो रहा है। एक रूटीन रिवेंज ड्रामा इसलिए दिलचस्प लगता है क्योंकि छोटे शहर की आत्मा कहानी और किरदारों में नज़र आती है, साथ ही धनबाद और वासेपुर के माहौल से भी बहुत कम दर्शक परिचित हैं। भले ही कहानी में काल्पनिक तत्व हों, लेकिन उनकी प्रेरणा वहाँ घटे वास्तविक घटनाक्रमों से ली गई है। 'गैंग्स ऑफ वासेपुर' अनुराग कश्यप की महाभारत है, जिसमें ढेर सारे किरदार हैं और उन्हें बड़ी सफाई से आपस में गूँथा गया है। हर किरदार की अपनी कहानी है। एक पीढ़ी द्वारा की गई गलती को कई पीढ़ियाँ भुगतती रहती हैं। पहले भाग की जान मनोज बाजपेयी थे, तो दूसरे की नवाज़ुद्दीन सिद्दिकी। दोनों ही बहतर अभिनेता हैं, जिसकी बदौलत फिल्म में अच्छा प्रभाव छोडा गया है। दूसरा भाग पहले का दोहराव लगता है। एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी पर कहानी शिफ्ट होती है और वही खून-खराबा होता रहता है। सबका क्या हाल होनेवाला है, यह पहले से दर्शक को मालूम रहता है, दिलचस्पी इसमें रहती है कि यह कैसे होगा। सामाजिक धरातल पर फैले आतंक और माहौल को बारीकी से दर्ज किया गया है। 'गैंग्स ऑफ वासेपुर' को आकर्षित बनाने का बड़ा कारण है निर्देशक अनुराग कश्यप। उनका प्रस्तुतीकरण लाजवाब है। बतौर निर्देशक उन्होंने छोटे से छोटे डीटेल का ध्यान रखा है। कुछ सेकंड्स के दृश्य बहुत कुछ कह जाते हैं। ऐसे कई दृश्य हैं। गैंग्स ऑफ वासेपुर की कहानी भले ही रूटीन हो, लेकिन जबरदस्त अभिनय और निर्देशन इस फिल्म को देखने योग्य बनाते हैं।

फिल्म की तरह ही वेब सीरीज़ का दौर भी आज जोर पकड़ता जा रहा है। इसलिए इसे आधुनिक युग का बोंब भी कहा जाता है। अमेरिका जैसे विदेशी राज्यों में इसका बोलबाला है। मगर कुछ वर्षों से इसका प्रचलन भारत में भी तीव्र होता दिखाई पड़ता है। नेटफ्लिक्स, एचबीओ, आमाज़ोन प्राइम इत्यादि चैनलों में विभिन्न प्रकार के वेब सीरीज़ ज़ोर पकड़ते जा रहे हैं। फिल्मों और सीरियलों के ही प्रसिद्ध और जानेमाने अभिनेता वेब सीरीज़ों में नज़र आते हैं। जिसकी वजह से इसे 'छोटा पर्दा बड़े सितारे' के नाम से भी संबोधित किया जाता है। प्रत्येक सीरीज़ में अलग-अलग कडियां होती हैं, जिसकी रोचकता इतनी बनी रहती है कि दर्शक बड़ी ही बेताबी से अगले सीज़न का इंतज़ार

करता है। प्रत्येक सीज़न कई भागों में बटा होता है, जिसकी दीर्घता शोर्ट फिल्मों की तरह चालीस पचास मिनट या करीबन एक घंटे की होती है। जिसकी वजह से दर्शक कम समय व्यतीत कर प्रत्येक भाग देख सकता है। अपने समय के मुताबिक दर्शक इसका आस्वादन करता है। यह मीडिया जगत का एक और बड़ा आविष्कार है। भारत में भी इंटरनेट के जरिए मोबाइल फोन, टेलिविशन और कंप्यूटर, लैपटोप आदि पर इसको अत्यधिक इस्तेमाल किया जा रहा है। नेटफ्लिक्स पर भारत की पहली वेब सीरीज़ है अनुराग कश्यप द्वारा निर्देशित 'सेक्रड गैंस'। यह वेब सीरीज़ अत्यंत रोचक है। स्वतंत्रता के बाद का भारत, उस समय की राजनीतिक स्थिति, हिंदू-मुस्लिम विद्वेष, बाबरी मस्जिद कांड आदि स्थितियों और समस्याओं को सीरीस के बीच में बयान किया जाता है। उस समय से प्रभावित गुंडे और माफिया लोग किस तरह अपना ग्रूप और कारोबार बढ़ाते हैं, इसके हेतु आपसी बेर, खून-खराबा आदि सब कुछ बड़ी ही बारीकी से प्रस्तुत किया गया है। सेफ अलीखान और नवाज़ुद्दीन सिद्दिकी प्रमुख रूप से नज़र आते हैं। नवाज़ इस सीरीस की जान है। उन्हीं के जीवन से गुज़रती हुई पूरी सीरीस आगे बढ़ती है। मुम्बई और महाराष्ट्रा की गलियों तथा महानगरों के इर्दगिर्द इसकी पूरी दास्तान है। सटीक भाषा में सारी परिस्थितियों का बयान है। गाली-गलौज, अश्लीलता, हिंसा सभी बातों को यथार्थ रूप देने की भरकश कोशिश की गई है। स्वाभाविक है कि आज की फिल्म तथा मीड़िया सामाजिक परिवेश को हू-ब-हू प्रस्तुत करने की कोशिश में है। **"**भौगोलिक,सांस्कृतिक तथा राजनैतिक सीमाओं को लाँघते हुए आधुनिक तंत्रों के सहारे संचार माध्यम संसार के जन समूह के जीवन में परिवर्तन करने की क्षमता रखते हैं।**"**[2] आम नागरिक की भाषा एवं संवेदनाओं को ऐसी फिल्मों एवं सीरीज़ों में इस तरह उकेरा गया है कि, उसे भी लगता है कि विकास की इस दुनिया में उसका भी एक अहम स्थान है। उसकी संवेदनाओं को भी समझने की कोशिश की गई है, जिसमें न भाषा अश्लील लगती है न ही दृश्य। सिर्फ प्रत्येक परिस्थितियों और ज़िंदगियों को उजागर करने की कोशिश है।

विस्तृत रूप से कह सकते हैं कि आज की मीडिया, फिल्में तथा वेब सीरीस सामाजिक स्थिति का एक यथार्थ कच्चा चिट्ठा है। जिसमें कुछ भी छिपाने की ज़रूरत नहीं रह गई है। समाज, परिवेश, भाषा, संस्कृति सभी से परिचित होना आधुनिक मनुष्य की आवश्यकता है। मीडिया और फिल्मों के इस तरह के बदलाव काफी हद तक समाज के लिए लाभदायक हैं। फर्क सिर्फ इतना है कि इन सबको देखने और विचार करने का तरीका मनुष्यहित के लिए होना चाहिए। तभी यह नया यथार्थ बड़ा बदलाव ला सकेगा।

संदर्भ

1. डॉ. अर्जुन चौहान**,** मीडिया का सीन हिंदी स्वरूप एवं संभावनाएँ- डॉ. अर्जुन चौहान, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृ. 9
2. डॉ. माधव सोनटक्के**,** मीडिया और हिंदी, बदलती प्रवृत्तियाँ- सं.रवींद्र जाधव, केशव मोरे, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, 2016**,** पृ.115
3. इंटरनेट, सोशल मीडिया और कई वेबसाइट्स

अस्मितामुलक विमर्श और समकालीन हिंदी दलित कविता

डॉ. कविता वी. राजन
सहायक प्राध्यापिका
दी कोचीन कॉलेज
कोच्चि -02

प्रारूप : दलित साहित्य दलित चेतना की उपज है और दलित चेतना युगो - युगो से अपनी बुनियादी जरूरतों एवं मानवीय अधिकारों से वंचित जनसमूह की जागृति की उपज है | आत: दलित साहित्य दलितो की आत्मा पहचान और आत्मा सजगता का साहित्य है | दलित साहित्य में समाज के उपेक्षित वर्गों की विसंगति पूर्ण जीवन का अंकन मात्र नहीं है ; बल्कि उसमें अपने शोषण के प्रति जागरूक जनता के आक्रोश, विद्रोह एवं प्रतिरोध भी मुखरित हुए हैं | समाज के उपेक्षितओं के प्रति प्रतिबद्धता होने के कारण दलित साहित्य उनको मनुष्य का दर्जा तथा सामाजिक बराबरी दिलाने में जोर देते है |

बीज शब्द : दलित, विमर्श, समाज, साहित्य, कविता, वेदना, शोषण, अन्याय, अस्मिता, जातीयता, जागरूकता, प्रतिरोध, विद्रोह, आदि

दलित -विमर्श जाति-आधारित अस्मिता-मूलक विमर्श है | दलित साहित्य से तात्पर्य दलित जीवन और उसकी समस्याओं को साहित्य के केंद्र में रखकर की गई साहित्यिक आंदोलन से हैं | दलित संबोधन से समाज के पद दलित, अधिकार विहीन, और सामाजिक- धार्मिक उपेक्षा के शिकार असवर्ण का बोध होता है | दलितों को हिंदू समाज व्यवस्था में सबसे निचले पायदान पर होने के कारण न्याय, शिक्षा, सामान, स्वतंत्रता, आदि सभी मानव अधिकारों से वंचित रखा गया था | उन्हें अछूत, या अस्पृश्य माना गया था | इस दलित -वर्ग के सामाजिक- राजनीति उत्थान, समानता व सम्मान के लिए तथा उनके संघर्ष को स्वर देने के लिए कई साहित्यकारों ने अपनी लेखनी चलाई | दलित साहित्य को लेकर रमणिका गुप्ता जी का कथन काफी उल्लेखनीय है, "दलित साहित्य एक प्रतिबद्ध साहित्य हैं जो मनोरंजन या स्वांत सुखाय नहीं लिखा जाकर अपने समाज को जागरूक करने, चेतना का संचार कर उसे परिवर्तन के लिए प्रेरित और संकल्पित करने तथा गैर दलितों और दलितों दोनों की मानसिकता बदलने के उद्देश्य और लक्ष्य को सामने रखकर सिरजा जाता है..... वहां अपने होने को, अपनी पहचान को आत्म सम्मान के साथ जताकर अपनी शक्ति का एहसास करवाने की कुवैत भी रखता है | वह विद्रोह की क्षमता रखता है और बदलाव के लिए मार मिटाने की संकल्प भी लेता है |"[1]

दलित साहित्य की चेतना काफी पुरानी है | सितंबर 1914 में 'सरस्वती' पत्रिका में हीरा डोम की कविता 'अछूत की शिकायत' प्रकाशित हुई | इसे पहली दलित माना जाता है | लेकिन एक सशक्त काव्य-धारा के रूप में हिंदी में दलित लेखन बीसवीं शताब्दी के देन है | वर्तमान संदर्भ में दलित साहित्य का अपना एक अलग एवं स्वतंत्र अस्तित्व है | साहित्य की अन्य विधाओं की तरह हिंदी कविता में भी दलितों के बहुआयामी जीवन संदर्भों का वास्तविक एवं सशक्त रचनात्मक अभिव्यक्ति देखने को मिलते हैं | सामंती व्यवस्था के चंगुल से पूर्णत: मुक्त न

होने के कारण दलित समाज आज भी अस्पृश्यता, जातीयता, छुआछूत, आदि अनेक समस्याओं से जूझ रहे है | इसलिए दलित चेतना से संबंधित कविताओं में दलितों के खुदरे जीवन यथार्थ का मात्र नहीं ; बल्कि उसमें विद्यमान व्यवस्था विरोधी स्वर भी मुखरित होता है | हिंदी दलित कविता के परिदृश्य में आज सैकड़ों लेखक अपनी अहम भूमिका निभा रहे हैं, जैसे - ओमप्रकाश वाल्मीकि, जयप्रकाश कर्दम, मलखान सिंह, कंवल भारती, कंवल सिंह, जयप्रकाश लीलावान, श्योराज सिंह बेचैन, मोहनदास नैमिशराय, असंग घोष, सी बी.भारती, सुशीला टकभोरे, रजनी तिलक, बिपिन बिहारी, रमणिका गुप्ता, सूरजपाल चौहान, कुसुम वियोगी, रविंद्र भारती, सुखबीर सिंह, मुकेश मानस, अशोक भारती, पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, दया पवार, निशांत, एन आर.सागर, बाबूलाल मधुकर, प्रेम शंकर, रत्नेश कुमार, श्यामलाल शम, चंद्र कुमार बठरे, नीरा परमार, सोहनपाल सुमन अक्षर, शांति यादव, प्रभाकर गजभिए, मनोहर प्रसाद, गंगाराम परमार आदि |

'दलित कविता संताप और संघर्ष की कविता है | यह अनुभवों व स्मृतियों की कविता है | यह त्रास की कविता है, न्याय से वंचितो के आक्रोश की कविता है |'[2] यह नई इतिहास निर्माण की कविता है | किसी-पीटी लकीर को मिटाकर नए रास्ते की तलाश की कविता हैं, जिसमें विरोध, नकार और बहिष्कार का स्वर प्रमुख है | ब्राह्मणवाद, जातिवाद, तानाशाही आदि का सशक्त विरोध इनमें है | हिंदी दलित कविता में सबसे अधिक चर्चित नाम है ओमप्रकाश वाल्मीकि | उनके 'सदियों का संताप' और 'बस बहुत हो चुका' आदि | त्रासदी- पूर्ण जीवन का बयान करती हैं | जैसे-**"चूल्हा मिट्टी का/ मिट्टी तालाब की/ तालाब ठाकुर का/ रोटी की/ रोटी बाजरे की/ बाजरा खेत का/ खेत ठाकुर का/ बैल ठाकुर का/ हल ठाकुर का/ हल की मूठ पर हथेली अपनी/ फसल ठाकुर की/ कुआं ठाकुर का/ खेत-खलिहान ठाकुर के/ गली मोहल्ले ठाकुर के/ फिर अपना क्या ? गांव ? देश ?**"[3] दलित जीवन के खुरदरी यथार्थ को कवि एन आर.सागर ने इस प्रकार व्यक्त किया है - "**गिनती में हम हैं तो वोट की खातिर/ वरना तो जी रहे हैं, सर्वनाम की तरह ।**"[4] सामाजिक उत्थान में सवर्णों के सामान दलितों व हाशिएकृतो की भीअपनी अहम भूमिका रही है | लेकिन अशिक्षा के कारण दलित सदियों से अपनी आत्म पहचान खो रखें थे | इसी ही कारण से दूसरों द्वारा हो रहे शोषण को न पहचान कर, उसे अपनी नियति मानते रहे | जयप्रकाश कर्दम पूछते हैं आखिर कब तक एक कीड़े की तरह जिएंगे | **"कब तक रोती रहेंगी आंखें/ कब तक आखिर कब तक/ कब तक घुटती रहेंगी सांसें/ कब तक आखिर कब तक ? / दलित रूप में जन्म लिया/ जब से हमने धरती पर/ नित्य अनादर, घृणा का विष/ पीते आए अब तक ।**"[5] लेकिन धीरे-धीरे उसमें चेतना का संचार हुआ, वे आत्म-पहचान करने लगे और अपनी खामियों और खूबियों की पड़ताल करने लगे तो पाया कि दलितों की सबसे बड़ी कमी उनकी चुप्पी थी | **"बस्तियों से खदेडे गए/ ओ, मेरे पुरखों/ तुम चुप रहे उन रातों में/ जब तुम्हें प्रेम करना था/ आलिंगन में बांधकर | अपनी पत्नियों को** |"[6] ओमप्रकाश वाल्मीकि की यह पंक्तियां अपनी चुप्पी के कारण उन्हें क्या कीमत चुकानी पड़ी है की ओर संकेत करती है | इस आत्म-पहचान ने तो दलितों में इतना विश्वास भर दिया है कि **"मैं जानता हूं/ चुप रहना/ इतना महंगा पड़ा है |"**[7] उनकी 'बाहर आएंगे एक दिन' कविता दलित समाज में व्याप्त शोषण की पहचान की ओर संकेत करती है | **"काले पृष्ठों पर अदृश्य लहू की गंध/ पहचान लेंगे एक दिन/ यह भूखे-प्यासे बच्चे / बाहर आएंगे एक दिन/ बंद अंधेरी कोठरी ओं सी कच्ची माटी की गंध/ सांसो में भर कर |"**[8] उनमें आत्मविश्वास इतना बढ़

गया है कि, मोहनदास नैमिशराय लिखते हैं - **"कल मेरे हाथ में झाड़ू था/ आज कलम/ कल झाड़ू से मैं तुम्हारी गंदगी हटाता था/ आज कलम से मैं तुम्हारे भीतर की गंदगी धोऊंगा |"**[9] यहां कवि आशा करते हैं कि अपनी लेखनी से उच्च वर्ग के संकुचित- गंदी सोच में बदलाव ला सकेगा |

दलित साहित्य का मूल मूल स्वर प्रतिरोध का ही है | यह प्रतिरोध जाति व्यवस्था के प्रति भी है | जाति के आधार पर सुख और सम्मान प्राप्त करने वाले सवर्ण वर्ग जाति का निराकरण करने की अपेक्षा उस पर गर्व करता है और दलितों के साथ अन्याय उपेक्षा और अस्पृश्यता का व्यवहार करते हैं | जाति व्यवस्था के इस निंदनीय रूप का चित्रण कवि, कंवल भारती ने अपनी कविता 'हिंदू-राष्ट्र' में किया है **-"विषमता पूर्ण धर्म यहां/ राष्ट्रपति, संविधान से, व्यक्ति से/ मानवता से बड़ा है/ शोषणकारी, अन्याय प्रिय, विघटनकारी वर्ण व्यवस्था का महानतम |"**[10] यह साहित्य भारतीय वर्ण व्यवस्था पर प्रश्न चिन्ह लगाती है | ओमप्रकाश वाल्मीकि जी अपनी 'जाति' नामक कविता में सोचते हैं कि सवर्ण वर्ग का स्वर्ग हमारे लिए स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि मरने के बाद वहां भी मेरी जाति के अनुसार ही मैं पहचान पाओगे | यह दलित कवि अस्पृश्य संवेदना पर अपनी असंतुष्टि और असहमति प्रकट करते हैं | अस्पृश्यता को वे सांप से भी ज़हरीली मानते हैं | कवि सुखबीर सिन्ह की एक लंबी कविता है 'बयान-बाहर' | कवि यहां इशारा करते हैं कि शायद मरने के बाद भी दलितों को अस्पृश्यता का शिकार होना पड़ेगा | "**ओ मेरे गांव/ तेरी जमीन पर/ घुट्टी-घुट्टी सांसों के साथ/ पा लेना पड़ता है अलग- थलग सांसों के साथ/ लड़खड़ाते कदमों से/ चलना पड़ता है अलग- थलग /मरने के बाद भी/ चलना पड़ता है अलग-अलग |"**[11] उनकी 'खामोश आहट' शीर्षक कविता काफी चर्चित रही हैं | इसमें वे अपनी न्याय की मांग करते है | थोड़ा-सा न्याय चाहिए, जीने का हक चाहिए | हवा, पानी, सुख, चैन, रोशनी आदि चाहिए | यहां तक कि उनका बचपन तक का निषेध किया जाता था | कवि अपने टिक अनुभव अपने शब्दों में बताते हैं कि **-"मैं जला हूं/ असंख्य लाक्षागृह में/ भोगी है नग्न वेदना/ द्रोपदी चीर - हरण की |"**[12] लेकिन कवि अब प्रतिशोध और विद्रोह की चिंगारीओं को भटकना चाहते हैं | क्योंकि यह उपेक्षित वर्ग कल अपने हक के लिए लड़ने वाले और एक रक्तरंजित महाभारत का इतिहास रचने वाले हैं वह भी धर्म या न्याय -युद्ध ही रहेगा| कवि कहते हैं- **"रक्तरंजित खड़ा मैं/ सुन रहा हूं खामोश आहट/ आने वाले महाभारत की |"**[13] वाल्मीकि जी के लिए कविता जीवन की अदम्य लालसा और पीडाओ की अभिव्यक्ति है, जो जीवन की विद्रूपताओं से जूझने का हौसला देती है |

सामाजिक अन्याय एवं अस्मिता का शिकार होने के कारण दलित कवि परंपरागत विश्वासों एवं धारणाओं को नकारते है | गीता, धर्म, पुराण, इतिहास, ईश्वर आदि के मामले में दलित साहित्यकारों की दृष्टि में अंदर है | कई बातों से वे सहमत नहीं है | इसलिए मोहनदास नैमिशराय कहते हैं- **"तुम धूर्त और व्यभिचारी हो/ मैं भुक्तभोगी हूं/ तुमने गंदगी फैलाने के लिए/ वेद/ पुराण/ मनुस्मृति का सहारा लिया/ कल उन्हें जलाने का/ मुझे अधिकार न था/ मैं उन्हें जलाऊंगा/ अकेले मनुस्मृति जलाने से/ समाज की जडता पर कुछ होने वाला नहीं/ तुम्हारे भीतर की बेशर्म संस्कृति/ के बीच पली-बढ़ी/ ब्राह्मणी 'कंप्यूटराइजड मेमरी' को/ ध्वस्त करना होगा/ तब तुम कदापि नहीं कह सकोगी/ कि वेद की रचना ईश्वर ने की है/ हां किसी भड़वे ने जरूर की होगी/ हो सकता है यह भड़वे ही/ ईश्वर बन गया हो/ या ईश्वर भडवा |"**[14] कवि ने धार्मिक ग्रंथों को नकार कर उसे जलाने और ईश्वर के अस्तित्व एवं ब्राह्मणवादी कंप्यूटर प्राइस मेमोरी को खत्म करने की बात की है |

समकालीन दलित कवित्रीयों में रमणिका गुप्ता का महत्वपूर्ण स्थान है | उनकी कविता 'अब मुर्ख नहीं बनेंगे हम' काफी चर्चित रही है | कविता की पंक्तियां हैं- **"एक शब्द गीता/ सब्र का जहर/ संतोष की अफीम/ भाग्य का चक्रव्यूह/ निष्काम प्रेम का नशा/ परिश्रम के/ फल वंचित रखने की साजिश/ परजीवी जवानों का/ सर्जक/ निठल्ले लोगों का स्वर्ग |"**[15] दलित कविता में शंबूक दलित चेतना की एक महानायक है | दलित कवि शंबूक की हत्या को मात्र शूद्र ऋषि की हत्या नहीं ; बल्कि दलित चेतना की हत्या के रूप में देखते है | कंवल भारती, की 'शंबूक' शीर्षक कविता में शंबूक की हत्या को दलित चेतना से जोड़कर अभिव्यक्त किया है कि **"शंबूक... तुम्हारी हत्या/ दलित चेतना की हत्या थी/ स्वतंत्रता, समानता और न्याय -बोध की हत्या थी/ किंतु,,, शंबूक/ तुम आज भी सत्य हो/ आज भी दे रहे हो शहादत/ सामाजिक परिवर्तन के यज्ञ में |"**[16] उन्होंने अपनी 'तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती' कविता-संग्रह में भूखी चिड़िया को दलितों के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है और उसके माध्यम से युग-युगांतर से भोगी हुई वेदना की अभिव्यक्ति भी किया है | कवि के अनुसार चिड़िया भूखी होने से अधिक चिड़िया होने से पीड़ित है | उसके लिए चिड़िया होना ही एक अपराध है, जैसे कि दलित होना अपराध माना जाता है | कंवल भारती की 'चिड़िया, जो मारी गई' कविता की पंक्तियां है- **"चिड़िया भूखी थी/ इसलिए गुनहगार थी/ मारी गई वह चिड़िया/ वह भूखी थी/ लेकिन गोरख पांडे ने गलत लिखा था/ वह चिड़िया भूख से नहीं/ चिड़िया होने से पीड़ित थी..... वह कैसे जानता/ गरीबी नहीं/ सामाजिक बेइज्जती अखरती है ? वह कैसे जानता है/ वह चिड़िया थी इसलिए गुनहगार थी/ चिड़िया जो मारी गई |"**[17] जयप्रकाश कर्दम 'किले' नामक कविता में असमानता और अन्याय के सारे किलो को तहस-नहस करना चाहते हैं | वे पहचानते हैं कि दलितों की यातनाओं के फानूसों से अमीर लोग अपना महल सजाए रखे हुए हैं | उनकी हवेलियों की भित्तियों पर शोषितो के दमन और सहन की गाथाएं खुदी हुई हैं | **"इनके चयन कक्षाओं में बिखरे हैं/ मेरी बहनों और बेटियों की/ रौंदी गई अस्मिता के निशान, और/ उनकी रंग शालाओं में गूंजता है/ मेरी वेदनाओं का संगीत |"**[18] आज के साहित्यकार विप्लव के लिए, विद्रोह के लिए उद्यत हो जाते हैं | वे किसी भी तरह का अपमान, अन्याय या उत्पीड़न सहने को तैयार नहीं | इंट का जवाब पत्थर से देने के लिए वे तुले हुए हैं | जयप्रकाश कर्दम 'किले' में कहते हैं -**"लेकिन अब/ फड़कने लगी है मेरी भुजाएं, और/ बुलबुल आने लगी है/ फावड़ा, कुल्हाड़ी और हथोड़ा पकड़े/ मेरे हाथ, काट रेंगना को/ उन हाथों को, जिन्होंने/ बरसाए हैं अंकगणित कोटे/ मेरी नंगी पीठ पर |"**[19] दलित कविता के क्षेत्र में सुशीला टकभोरे का विशेष स्थान है | दलित चेतना के साथ-साथ नारी चेतना को भी सशक्त ढंग से उन्होंने प्रस्तुत किया है | उनकी पीड़ा, व्यथा, शोषण और उसके खिलाफ नारी की जागृति को बखूबी ढंग से उन्होंने अंकित किया है | 'स्वाति बूंद और खारे मोतीसुशीला स्वाति बूंद और खारे मोती टकभोरे', 'यह तुम भी जानो, 'तुमने उसे कब पहचाना', 'हमारे हिस्से का सूरज" आदि उनके चर्चित काव्य संग्रह है | 'स्वयं को पहचानो' कविता में कवयित्री समाज के दमित वर्ग कोआत्मविश्वास के साथ आगे बढ़ने की प्रेरणा दी- "**क्योंकि/ तुम में निष्ठा है अपने समाज के प्रति/ शक्ति है संघर्ष की/ युक्ति है संगठित होकर आगे बढ़ने की/ तुम सर्वशक्तिमान हो |"**[20] जहां 'तुम' कविता में वे युग की मांग की पहचान कर जन-हित के लिए नया इतिहास रचने की बात करती हैं, वहां 'हमारे हिस्से का सूरज' में क्रांति का आह्वान करती है | समाज में एक स्वच्छ परिवर्तन की उम्मीद में मैं रहती हैं | उनका मानना है कि उदारीकरण, निजी करण

और भूमंडलीकरण के इस युग में केवल दलित होने के कारण पीढ़ी-दर-पीढ़ी गरीबी और गुलामी में रहना ठीक नहीं | अपार आस्था के साथ वे कहती हैं- **"लाख कोशिशों की है दुश्मनों ने/ हमारे हिस्से के सूरज को टांगने की फिर भी/ चमका है दुनिया की औकात में/ हमारा क्रांतिसूर्य |"**[21]

समकालीन महिला लेखन में राजनी तिलक की अलग अस्मिता है | 'पदचाप' उनका प्रमुख काव्य संग्रह है | वे नारी मुक्ति आंदोलन, दलित, महिला और मानव अधिकार आंदोलन में सक्रिय रही है | इसलिए उनकी कविता में नारी अस्मिता की तलाश मात्र नहीं ; मुक्ति का आग्रह भी है | रजनी जी का मानना है कि रामायण काल से लेकर आधुनिक काल तक पुरुषवर्चस्व ने नारी के भाग्य को लेकर खेला है | "खेला जाता है" कविता में लेखिका ने दर्शाया है कि नारी का उत्पीड़न आनंद है यहां की छोटी बच्ची भी उस से मुक्त नहीं है-"**सीताओं को/ आज भी ताऊ से जलाया जाता है/ मासूम कलियों को खिलने से पहले/ बचपन में ही लूटा जाता है/ कोमल, मधुर मुस्कान को/ वासना की आग से सींचा जाता है/ रामायण हो, महाभारत हो/ या आधुनिक भारत/ हर समय स्त्री के जज्बात से खेला जाता है |"**[22] रमणिका गुप्ता भी हिंदी लेखकों में प्रतिष्ठित नाम है | उनके गीत अगीत', 'अब और तब', 'खूंटे', 'आम आदमी के लिए', 'प्रकृति युद्ध रत है', 'कैसे करोगे बटवारा इतिहास का' आदि आपके चर्चित काव्य संग्रह है | उन्होंने अपनी 'प्रतिरोध' नामक कविता में अन्याय के खिलाफ प्रतिरोध का आह्वान किया है | **"हमने तो कलियाँ माँगी ही नहीं/ काँटे ही माँगे/ पर वो भी नहीं मिले/ यह न मिलने का एहसास/ जब सालता है/ तो काँटों से भी अधिक गहरा चुभ जाता है/ तब/ प्रतिरोध में उठ जाता है मन-/ भाले की नोकों से अधिक मारक बनकर |"**[23] शोषण के विभिन्न नजारों को देखकर सी.बी भारती का कवि मन काफी बेचैन हो उठा | 'सियासत', 'सिसकता आत्म सम्मान', 'दूरियां' आदि उनकी चर्चित रचनाएं हैं | जयप्रकाश लीलावान की कविता 'दमन में दैनिकी' में वे समानता पर आधारित जाति-विहीन समाज की कल्पना करते हैं- **"हमारे लिए/ देश का अर्थ/ भाईचारे की कसमें निभाते हुए/ जातियों के जंगल जला दिए जाने की मंजिल पर/ चाव -भरे कदमों के साथ/ चलने का सफर होता है |"**[24] भारतीय संविधान में देश के प्रत्येक नागरिक को समान अधिकार प्रदान किए गए, लेकिन दलितों को उनके अधिकार अभी तक नहीं मिले इसलिए दलित कवि पूछते है- **"उत्पीड़न की जंजीरों में/ यू कसा-फसा सदियों से/ मैं मुर्दा हूं, ना ही जी सकता/ मेरे मौलिक अधिकार कहां है ?|"**[25] दलित किसी भी रूप में अपने अधिकार छोड़ने के लिए तैयार नहीं है | अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने के लिए वे कमर कसे हुए हैं | अधिकार भी समग्रता में चाहिए, पूरी संभावनाओं के साथ | जैसे- **"छत का खुला आसमान नहीं/ आसमान की खुली छत चाहिए/ मुझे आनंद आसमान चाहिए |"**[26] दलित कविता स्पष्ट मत है कि "**हमें आदमी चाहिए/ और आदमी अत चाहिए** |"[25] मनुष्यता समाज में शांति, श्रद्धा, सद्भाव और अस्तित्व का आधार है | मनुष्यता होगी तो दलितों की जीवन का अधिकार मिलेगा उसके अंदर आत्मविश्वास पैदा होगा उसके जीवन में सूरज उगेगा दलित कविता को इस अंधकार की मिनी और सूरज के उगने का पूरा भरोसा है इसलिए दलित कवि कहता है "हम सुबह के वास्ते आए हैं/ हम सुबह जरूर लेकर आएंगे |"[26] दलित कविता का मूल स्वर दलित पीड़ा ही है | व्यवस्था के प्रति उनके आक्रोश और न्याय की मांग भी उसमें विद्यमान है | सडी-गली मान्यताओं व परंपराओं के बंधन की जंजीरों को तोड़ना वे चाहते हैं | निश्चय ही दलित कविता हिंदी कविता के क्षेत्र में एक नए सौंदर्य बोध के साथ खड़ी है | विषय, विचार और विस्तार सभी दृष्टियों से

दलित कविता हिंदी कविता को समृद्ध किया है | दलित कविता असल में दलितों को इंसान का दर्जा देने का संघर्ष लड़ती है | जयप्रकाश कर्दम ने सही कहा है "दलित समाज के तालाब में शिरकत करने का काम किया है | यही वह बिंदु है जिसे किसी भी समाज की चेतना में बदलाव का प्रस्थान बिंदु कहां जा सकता है | इसलिए दलित विमर्श समकालीन कविता में सार्थक और आवश्यक हस्तक्षेप हैं |"[28]

दलित कविता दलित शोषण के मूल कारणों की पड़ताल करती है, साथ ही शोषण के खिलाफ आवाज भी बुलंद करती है और समाज को दलित समाज को सदियों की गुलामी से मुक्ति दिलाने का अथक परिश्रम ही करती हैं | दलित कभी अपनी कविताओं में दलित जीवन के अंदरूनी यथार्थ को टच करके अपनी श्रद्धा को अमानत करते हैं | जाति के नाम पर समाज में रही सारी विषमताओं के खिलाफ माननीय सोच को जताना दलित साहित्य का असली मकसद रही है |

दलित कविता समष्टि की कविता है | यह कविता दलितों की वेदना, उत्पीड़न, शोषण का पुल आधारित है यह का विवाह अनुभव की तीव्रता में लिखी है दलितों में आता पहचान का भाव जागृत करने वाली कविता और परंपराओं का एक नया इतिहास रचना चाहती है उनकी आवाज स्वतंत्रता और भाईचारे के लिए गूंज उठती है जैसे कि ओमप्रकाश वाल्मीकि ने लिखा है कि : दलित साहित्य अपने समय से लड़ते हुए आने वाले कल की बेहतर जिंदगी के लिए आशावादी हैं |"[29]

संदर्भ

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि (संपादक), दलित हस्तक्षेप, पृ:105
2. डॉ. एन. मोहनन,(संपादक), अनुशीलन (दलित साहित्य विशेषांक फरवरी 2011),पृ:177-178
3. ओमप्रकाश वाल्मीकि, सदियों का संताप, पृ: 3
4. एन. आर.सागर, आजाद है हम, पृ: 15
5. जयप्रकाश कर्दम, कब तक, www.kavitakosh.org
6. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस बहुत हो चुका, पृ: 14-15
7. वही, पृ 31
8. वही, पृ 78
9. कंवल भारती (संपादक), दलित निर्वाचित कविताएं, पृ :107
10. डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी अलगाव की चोट, पृ : 29
11. सुखवीर सिंह, बयान-बाहर, पृष्ठ-
12. ओमप्रकाश वाल्मीकि, खामोश आहट, www.kavitakosh.org
13. वही
14. सूरज बडत्या(संपादक), भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर, पृ : 46
15. रमणिका गुप्ता, अब मुर्ख नहीं बनेंगे हम', पृ .....
16. कंवल भारती, तुम्हारी निष्ठा क्या होगी, पृ 49

17. कंवल भारती की 'चिड़िया, जो मारी गई' पृ
18. जयप्रकाश कर्दम, किले, पृ
19. वही
20. सुशीला टकभोरे, स्वाति बूंद और खारे मोती, पृ.....11
21. सुशीला टकभोरे स्वाति बूंद और खारे मोती, पृ....16
22. राजनी तिलक, खेला जाता है, पृ....
23. रमणिका गुप्ता, प्रतिरोध, www.kavitakosh.org
24. जयप्रकाश लीलावान, नए क्षितिजो की ओर', पृ 77
25. जयप्रकाश कर्दम, गूंगा नहीं था मैं, पृ 46-47
26. सुशीला टकभोरे, स्वाति बूंद और खारे मोती, पृ 1
27. श्योराज सिंह बेचैन, नई फसल, पृ 3
28. जयप्रकाश कर्दम, सामकालीन हिंदी कविता और दलित चेतना, पृ 1
29. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, पृ : 20

अरुण कमल की रचनाओं में भारतीयता की तालाश

डॉ. रंजित एम्
सहायक आचार्य एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग
एम्.ई .एस कल्लटी कोलेज, मन्नारक्काट

भारत के गौरव पर प्रकाश डालते हुए मैक्समूलर ने अपनी पुस्तक 'इंडिया: व्हाट कैन इट टीच अस' में लिखा है-''यदि मैं विश्वभर में से उस देश को ढूंढने के लिए चारों दिशाओं में आंखें उठाकर देखूं जिस पर प्रकृति देवी ने अपना संपूर्ण वैभव, पराक्रम तथा सौंदर्य खुले हाथों लुटाकर उसे पृथ्वी का स्वर्ग बना दिया है तो मेरी उंगली भारत की ओर उठेगी । यदि मुझसे पुन: पूछा जाए कि अंतरिक्ष के नीचे कौन सा वह स्थल है जहां मानव के मानस ने अपने अंतराल में निहित ईश्वर प्रदत्त अनन्यतम सदभावों को पूर्णरूप से विकसित किया है, गहराई में उतरकर जीवन की कठिनतम समस्याओं पर विचार किया है, उनमें से अनेकों को इस प्रकार सुलझाया है जिसको जानकर प्लेटो तथा कांट का अध्ययन करने वाले मनीषी भी आश्चर्य चकित रह जाएं तो मेरी अंगुली पुन: भारत की ओर उठेगी और मैं, यदि स्वयं अपने आपसे पूंछू कि हम यूरोप के वासी जो अब तक केवल ग्रीक, रोमन तथा यहूदी विचारों में पलते रहे हैं, किस साहित्य से वह प्रेरणा ले सकते हैं, जो हमारे भीतरी जीवन का परिशोधन करे, उसे उन्नति के पथ पर अग्रसर करे, व्यापक बनाये, विश्वजनीन बनाये सही अर्थों में मानवीय बनाये, जिससे हमारे इस पार्थिव जीवन को ही नही हमारी सनातन आत्मा को प्रेरणा मिले तो फिर मेरी अंगुली भारत की ओर उठेगी ।''

मगर, सोने की चिड़िया एवं विश्वगुरू कहा जाने वाला भारत आज चारों तरफ जेहादी आतंकवाद, माओवाद, नक्सलवाद, भाषावाद एवं भ्रष्टाचार से जकड़ा हुआ है । अधिकांश राजनेता अपनी राजनैतिक महत्वाकांक्षाओं के चलते वोट बैंक की भूख में सभी सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय मूल्यों को खोते जा रहे हैं । विडम्बना यह है कि राष्ट्र की युवा शक्ति को भी जो संस्कार, आत्मनिर्भरता व राष्ट्रीयता का पाठ पढ़ाया जाना चाहिये उससे हम कोसों दूर हैं क्योंकि हमारी शिक्षा प्रणाली भी वोट केंद्रित राजनीति के दलदल में फंस गयी है । अब चिंता करने का वक्त आ चुके है । साहित्य समाज का आईना माना जाता है । समाज में हो रहे ऐसे हलचलों का कवियों पर भी असर पडता है । हिंदी साहित्य के समकालीन कवी अरुण कमल की रचनाओं में भारतीयता पर हो रहे आतंक या अत्याचार का चित्रण कैसे हुआ है इसका खोज यहाँ हो रहे है ।

भारत में रह कर भारतीयता की खोज क्यों कर रहे है, यह सवाल उठना आम बात है इसका जवाब वे यों दे रहे है -

"मैं वो हूँ जिसकी गिनती होने से रह गयी
पूरी आबादी में जो एक कम होगा वह मैं हूँ" (जनगणना)

भारतीयता क्यों खो रहे है ? इसका उत्तर ढूंढते वक्त हम पारिवारिक संबधों पर ही ध्यान देंगे । संयुक्त परिवार से अणु परिवार की और की सफ़र इसका मुख्य कारण रहे है । यह गलत नहीं है

"हम अलग हो चुके है
अलग अलग चुल्हे है हमारे
और अलग अलग जीवन" (सम्बन्ध)

हमें "स्व" का विचार करने की आवश्यकता है बिना उसके "स्वराज्य" का कोई अर्थ नहीं । स्वतन्त्रता हमारे विकास और सुख का साधन नहीं बन सकती जब तक हमें अपनी असलियत का पता नहीं तब तक हमें अपनी शक्तियों का ज्ञान नहीं हो सकता और न उनका विकास ही संभव है । परतन्त्रता में समाज का "स्व" दब जाता है । इसीलिए राष्ट्र स्वराज्य की कामना करता हैं जिससे वे अपनी प्रकृति और गुणधर्म के अनुसार प्रयत्न करते हुए सुख की अनुभूति कर सकें । संस्कृति हमारे देश की आत्मा है तथा वह सदैव गतिमान रहती है । इसकी सार्थकता तभी है जब देश को उसकी आत्मानुभूति हो । कश्मीर से कन्याकुमारी तक बोली, भाषा, खानपान, वेशभूषा एवं रहन-सहन भले ही सबका अलग अलग हो पर समूचे भारत की आत्मा एक है । जिस प्रकार मानव शरीर के निर्माण व संचालन में प्रत्येक अंग का योगदान होता है उसी प्रकार का योगदान देश के निर्माण व संचालन में सभी प्रान्तों व क्षेत्रों का होता है । यह नहीं सोचना है कि देश ने मेरे लिए क्या किया बल्कि यह सोचना है कि हमने देश के लिए क्या किया ? स्वहित को त्यागकर राष्ट्रहित की चिंता करना ही हमारी मूल संस्कृति है ।

भारतवर्ष गंगा जमुनी सांझी तहजीब रखने वाला दुनिया का-सबसे अनूठा व निराला देश है । पश्चिमी शक्तियों द्वारा भारत पर हुकूमत करने के दौरान हमारी सांप्रदायिक एकता तथा धार्मिक सद्भावना को आहत करने के तथा धर्म के नाम पर हमें विभाजित करने के तमाम प्रयास किए गए । धर्म और जाती के साथ देश को जोड़ कर ही लोग आज मानव को आंक रहे है । इसलिए ही मानव से मानवीयता दूर हो रहे है । इससे खिन्न कवि ने लिखा -

"जब तक तुम लोगों को
धर्म जाती या देश से जानते हो
तब तक तुम कुछ नहीं जानते
और आसानी से नफरत कर सकते हो" (दूसरा आँगन)

मानव पिंजड़ों में बन्धा हुआ है । हर देश में यही हाल है आम लोग पिंजड़ों के अन्दर उमस कर जी रहे है -

"वह तोता बिलकुल तोता ही था, तोते जैसा
पर एक बात जो ख़ास लगी वो ये कि
यहाँ भी वो लोहे के पिंजड़ों में बंद थे जैसे वहां
और वहां भी वो पिंजडा काटने की मुहीम में जुटा थे जैसे वहाँ" (मैं ने लाहौर में एक तोता देखा)

समकालीन सन्दर्भ में सबसे बड़ी चिंता का विषय है; देश में राजनीति का अपराधिकरण और अपराधिकरण का राजनीतिकरण । जिसके पास धनबल और बाहुबल है, वही लोकतंत्र का ध्वजवाहक बन रहा है । देश की सर्वोच्च संस्था संसद में ऐसे लोगों की भरमार है जिन पर हत्या, डकैती, अपहरण, बलात्कार और भ्रष्टाचार

जैसे अनेक संगीन मामले दर्ज हैं और वे जनप्रतिनिधि के तौरपर लाल बत्तियों और ऐयरकंडीशन महलों में ऐशोआराम फरमा रहे हैं । इससे बड़ा देश का दुर्भाग्य भला और क्या होगा ?

"एक एक कर घर उजड़े गाँव उजडे
और नगर महा नगर बने
पर कोई नहीं बोलता ऐसा हुआ क्यों
अब कोई नहीं पूछता यह दुनिया ऐसा क्यों है" (पुराना सवाल)

देश की अस्सी फीसदी आबादी भय, भूख और भ्रष्टाचार से बुरी तरह त्रस्त है । उमंग, चाह, उम्मीद, सुख, चैन आदि से वह निरन्तर अछूती होती जा रही है । उसके लिए हर पर्व और राष्ट्रीय दिवस की भी कोई खास अहमियत नहीं रह गई है । देश के अधिकतर भावी कर्णधारों के लिए त्यौहार और राष्ट्रीय पर्व महज एक अवकाश का प्रतीक बन गए हैं। राष्ट्रीय पर्वों स्वतंत्रता दिवस, गणतंत्र दिवस आदि मनाने की औपचारिकता संगीनों के साये में की जाती है । कवि ने लिखा –

"यहाँ शहीदों को कोई नहीं जानता
यहाँ शहीद –ए –आज़म को कोई नहीं जानता
यहाँ शहीद –ए –आज़म भगत सिंह को कोई नहीं जानता
मेरा रोम रोम काँप रहा है
ऐसा भी हो सकता है देश में कल ? " (जिंदाबाद)

जो स्वप्न हमारे शहीदों और क्रांतिकारियों ने फांसी के फंदों पर झूलते समय या काले पानी की सजा को झेलते समय या फिर क्रूर अंग्रेजों के दमन चक्र में पिसते हुए देखा था, उस स्वप्न को साकार कर दिखाने में हम काबिल नहीं हुए है ? इसमें कोई दो राय नहीं है कि सवाल जितना सहज है, जवाब उतना ही असहज ! ऐसा क्यों ? स्पष्ट है कि हम अपने शहीदों और क्रांतिकारियों के स्वप्न को साढ़े छह दशक बाद भी पूरा नहीं कर पाये हैं । जी हाँ यही कटू सत्य है और यही सबसे बड़ी विडम्बना । हम अपनी महान सभ्यता और संस्कृति के उन बेहतरीन पहलुओं को भी भुलाते चले जा रहे हैं जिनकी वजह से भारत कभी पूरे विश्व में अपनी एक अलग पहचान रखता था । जब हम खून के रिश्ते ही संजो कर नहीं रख पा रहे तो ऐसे में पड़ौसी और मानवता का रिश्ता निभाना तो दिन में सपना देखना जैसा माना जा सकता है । लेकिन कवि चुप बैठना सही नहीं मान रहे है । उन्होंने लिखा,

"नहीं यह चुप बैठने का समय नहीं
संभालो अपने टूटे बिखरे औजार
हमारा हथियार कमजोर है पर पक्ष मज़बूत
चारों तरफ से फिर उठ रही है वह पुकार
नए कंठों से" (एक पुराना गाना)

कहने को तो सभी यह बात बड़ी ही आसानी से कह बैठते हैं कि 'मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना । परंतु अल्लामा इकबाल द्वारा लिखी गई इस पंक्ति पर अमल करना वास्तव में हर एक व्यक्ति के वश की बात प्रतीत नहीं होती । अब तो बढ़ती सांप्रदायिकता तथा धर्म-जाति व संप्रदाय के नाम पर बढ़ती जा रही दरिंदगी ने कई लेखकों व विशेषकों को इक़ बाल की उपरोक्त पंक्ति में इस प्रकार का संशोधन करने के लिए बाध्य कर दिया है । आज हाल यह है कि -'मज़हब ही सिखाता है आपस में बैर रखना । भारत सहित दुनिया के आधे से अधिक देशों में चल रही सांप्रदायिकता की काली आंधी स्वयं इस बात का गवाह है कि आज दुनिया में सबसे ज़्यादा हिंसा व नफरत धर्म के नाम पर ही फैलाई जा रही है ।

"वहाँ अपनी जाती से डर था
तो यहाँ अपने धर्म से
वहाँ अपनी भाषा से डर था
तो यहाँ अपने क्षेत्र से
निरापद कहीं न था"(डर)

हिंसा किसी भी सभ्य समाज के लिए सबसे बड़ा कलंक हैं, और जब यह दंगों के रूप में सामने आती है तो इसका रूप और भी भयंकर हो जाता है । दंगे सिर्फ जान और माल का ही नुक़सान नहीं करते, बल्कि इससे लोगों की भावनाएं भी आहत होती हैं और उनके सपने बिखर जाते हैं ।

सभी धर्मों की बुनियादी तथा वास्तविक शिक्षाएं मानवता का पहला पाठ पढ़ाती हैं । परोपकार, मानवता की सेवा सभी धर्मों व विश्वासों का समान, आदर व सत्कार करना, किसी को दु:ख तकलीफ या ठेस न पहुंचाना हर विश्वास व धर्म के लोगों की पहली शिक्षा है । ऐसे में यदि नफरत तथा हिंसा का कारण धर्म को ही बनाया जाए तो इसमें धर्म या धर्मग्रंथों का दोष तो कतई नहीं बल्कि दोष उन अर्धज्ञानियों, कठ्मुल्लाओं व पोंगा पडितों का है जो कभी अपने स्वार्थवश तो कभी राजनीतिज्ञों के बहकावे में आकर तो कभी अपनी सीमित एवं पूर्वाग्रही शिक्षाओं के चलते धर्म को ही कभी हथियार के रूप में प्रयोग करते हैं तो कभी इसी की ढाल भी बना लेते हैं । अर्थात हमसे भूल हुई है हमने स्वयं को अपनी प्राचीनता से काटा, अपने सांस्कृतिक मूल्यों से और गौरवपूर्ण अतीत से और अपने मूल से काटा । प्रत्येक मनुष्य आदिपुरूष का नवीन संस्करण होता है । प्रकृतिचक्र को देखिए पुरातन ही नूतन बन रहा है । पुरातन और नूतन के इस सत्य को जो समझ लेता है वही सनातन के रहस्य को जान लेता है । वही भारत के सनातनपन को समझ लेता है ।

सचमुच 'मां भारती' विश्ववंद्या है । इस पवित्र भूमि पर कितने ही महापुरूष आए और चले गये । उनके चरण कमल की पावन रज आज भी इस पवित्र भूमि के लिए गर्व और गौरव का विषय है । उन महापुरूषों के उत्कृष्ट जीवन चरितों को देखकर अच्छा अच्छा विवेकशील व्यक्ति भी विस्मय से भर उठेगा कि पहले उन्हें नमन किया जाए या इस पवित्र भूमि को या इन दोनों के रचयिता प्यारे प्रभु को ? यहां गुरू और गोविंद का द्वैतवाद नही खड़ा है, अपितु ऋषि परंपरा, मातृभूमि और साक्षात ब्रहम का त्रैतवाद खड़ा है । त्रिवेणी बह रही है । अदभुत है मेरी पावन मातृभूमि । मैथिलीशरण गुप्त जी की इन पंक्तियों के साथ लेख का समापन करता हूं :-

"युग युग के संचित संस्कार, ऋषि मुनियों के उच्च विचार ।
धीरों वीरों के व्यवहार, निज संस्कृति के श्रंगार ।।"

सन्दर्भ :

मैं वह शंख महा शंख (अरुणकमल) कविता सग्रह

अपवित्र आख्यान आधुनिक राष्ट्र और राजनीति का सही आख्यान

वर्णा एस
शोध छात्रा, हिन्दी विभाग
महाराजास कॉलेज, एरणाकुलम

मानव जीवन का इतिहास संदियों पुराना है । पुराने ज़माने में प्रकृति के साथ मनुष्य का अटूट संबन्ध था । प्रकृति ने ही मनुष्य को जीवनी शक्ति प्रदान की और उसके मन में सामाजिकता का बोध जगाया । मनुष्य सबसे पहले समूह बनाकर एकजुड होकर रहने लगे और ऐसे अनेक नियम बनाए जो मनुष्य को मनुष्य बनाने के लिए पर्याप्त था । वन मानुष की जीवनी शक्ति एक मानव केंद्रित समाज को जन्म दिया । मानव का विकास यात्रा में समाज का विशिष्ट स्थान रखा । समाज से राष्ट्र का निर्माण मानव इतिहास को एक नया मोड दिया । राष्ट्र का निर्माण मानव इतिहास को रक्त गन्धों का नया रंग दिया । एक स्थान में वास करके वहाँ अपनी नियम स्थापित करके प्रत्येक शासन व्यवस्था, भाषा, धर्म, रहन सहन आदि के विशिष्ट पहचान से स्थान को राष्ट्र की मान्यता दिया । राष्ट्र शब्द लैटिन भाषा के 'नातियो' शब्द से बना है । लैटिन में नसीहु शब्द का अर्थ जन्म या जन्म लेने के लिए किया जाता है । लॉर्डब्राइस के अनुसार राष्ट्र एक राष्ट्रीय संस्था है, जो कि बगैस के अनुसार भौगोलिक एकता के एक ही क्षेत्र में निवास करने वाली केवल एक जति की जनसंख्या है । ब्लट सली के अनुसार राष्ट्र ऐसे लोगों का एक समूह है, विशेष रुप से भाषा और रीति रिवाजों द्वारा सभ्यता में एक शांति है जो उनमें और विदेशियों की विविधता की भावना पैदा करती है ।

राष्ट्र का सबसे महत्वपूर्ण अंग है राजनीति । एक सुगठित राजनीति के बिना राष्ट्र का निर्माण असंभव है । राष्ट्र का विशेष पहचान में राजनीति का स्थान अंग्राम पंक्ति में हैं । राजनीति का इतिहास काफी प्राचीन है । राजनीति इस शब्द का सबसे पहले प्रयोग यूनान के अरस्तु ने किया । उसके अपनी पुस्तक का नाम पॉलिटिक्स रखा जिसका अर्थ राजनीति होता है । पॉलिटिक्स अंग्रेज़ी भाषा का शब्द है, जो यूनानी भाषा के पोलिस शब्द का रूपांतर है। यूनानी भाषा में पोलिस शब्द का अर्थ नगर राज्य है । सच्चे अर्थों में राजनीति एक मानवीय प्रक्रिया है । डॉ बिरकेश्वर प्रसाद सिंह कहते हैं - राजनीति प्रत्येक समुदाय, संस्था, देश या अन्तर्राष्ट्रीय संघटन में पायी जाती है चाहे वे छोटे हो या बड़े, संगठित हो या असंघटित, आदिम हो या आधुनिक ।

राष्ट्र और राजनीति एक सिक्के के दो पहलू है । एक के बिना दूसरे का अस्तित्व संभव नहीं । भारत जैसे विशालकाय देश में राजनीति का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है । भारत को सुगठित बनाने में राजनीति की डोरों निरंतर कर्मरत हैं । भारतीय राजनीति की आधारशिला भारतीय संविधान हैं । भारतीय संविधान में पश्चिमी देशों की राजनीति को अनेक तत्व प्रभावि रुप में पाया जाता है । भारत का संविधान केवल पाश्चात्य संविधान का अनुकरण मात्र नही है । भारत का विशेष सदर्भ में संविधान भारत की विशेषताओं, विभिन्नताओं सबको साथ लेकर चला है । भारतीय राजनीति हमारे संविधान के अनुकूल है । भारतीय संविधान के ऊपर रखा है । भारत का प्रथम प्रधानमंत्री जवहर लाल नेहरू अनेक समस्याओं को सामने करते हुए भारत का छवि विश्व की छाती में छापने में सफल निकले

इसका कारण हमारे संविधान की विशिष्टता ही है । नेहरू आर्थिक सुस्थिरता को प्रमुख स्थान देकर भारत में धार्मिक एकता का नारा बुलन्द आवाज़ में दी हैं ।

भारत एक खिचड़ी है । विभिन्न धर्मों, भाषाओं, रीति रिवाजों, आचार विचारों सबका एक ताज़ा खिचड़ी । यह खिचड़ी को खराब कराने में अनेक बाधायें निरन्तर परिश्रम करके रहते हैं । भारत की पहचान बहुलता में एकता हैं इसे हम सांस्कृतिक एकता कह सकते है । लेकिन भारत में प्रचलित राजनीति का चाल इस संस्कृति एकता के विरोधी ही था । राजनीति में हर वक्त एकता को तोड़ मरोड़कर विकृत कर राज्य का महत्व खराब करने का परिश्रम था । भारत में वैदिक काल से लेकर गुप्त काल तक जाति प्रथा का प्रचलन था । जब मुस्लिम शासकों का आक्रमण भारत पर हुआ तब यहाँ समन्वय की विराट भावना जागा उठी । हिन्दु धर्म हमेशा जाति उपजाति के चगुल में फंसा था । यह जातिगत संकीर्णताओं वैदेशिक शक्तियों का रास्ता आसान बना दी । मुस्लिम राजाओं का आगमन भारतीय राजनीति को एक नया अस्तित्व दिया । अंग्रेजी शासनकाल में भारत फिर भी समन्वय के महत्व को पहचान लिया । हिन्दू मुसलमान की एकता को अंग्रेज़ी शासक भय से देखते थे। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है बाँट कर शासन करने की तरीका का सफल प्रयोग । 1857 भारतीय इतिहास का एक विशिष्ट समय है । इस लड़ाई का हिन्दू मुसलमान ऐक्य विदेशियों के लिए चुनौती थी । प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के दौर में भारतीयों ने अपनी शक्ति का परिचय दिया । इस संग्राम में यद्यपि हमारी हार हुई फिर भी अग्रेजों को डराने में हम सफल निकले । भारत में अपने अधिकार को ज़माने के लिए अंग्रेजों अनेक षड़यन्त्र रचते रहे । इनमें एक है फूट डाले कर शासन करना । यहाँ के हिन्दू मुसलमानों के मन में उन्होंने साम्प्रदायिकता का बीज बोया और जनता को एक दूसरे का शत्रु बना दिया । लेकिन कोई फायदा नहीं था अंत में उनको भारत छोडना पड़ा । गांधिजी का महान नेतृत्व भारत को आज़ादी का नव प्रकाश प्रदान किया । स्वतंत्र भारत में हम स्वच्छन्द जीवन बिताने का जो सपना कर रहे थे किन्तु उनका परिणाम टीक अलग ही था । अंग्रेजों ने जिस राजनीति को यहाँ विकसित किया उसी राजनीति को आगे बढ़ाने का कार्य हमारे राजनीतिक लोग करते रहे ।

वर्तमान कालीन भारत विज्ञान एवं तकनीकि की दृष्टि से अग्रिम पंक्ति में है । स्पेस रिसर्च, ऊर्ज तंत्र, कला, साहित्य, फिल्म, चिकित्सा, प्रौद्योगिकी, तकनीकि आदि क्षेत्रों में भारत का नाम विश्व भर में फैला है । सांप्रदायिकता की कालिमा भारतीय इतिहास के पन्नों पर देखा है । भारत-पाक विभाजन के रूप में लिखा गया है इसका बीज बोया था अंग्रेजों ने यह फसल अब काटता है दलगत राजनीति का पद दलित लोग । राजनीति का हाव भाव आज एक विकराल रूप धारण कर दिया । भारत में राजनीति एक महत्वपूर्ण संस्था है । यह संस्था आज विषलिप्त हो गया। इसका मुख्य कारण है राजनीति में व्याप्त सत्तालोलुप मानसिकता | चुनाव में जनहितकारी योजनाओं से अधिक प्रभावी है सांप्रदायिक दंगों का इस्तेमाल । यह तरीका हर राजनीतिक दल अपनाते है । एक दूसरे धर्म के बीच घृणा की भावना जगाकर फायदा उड़ाना आज एक आम बात है ।

भारत का इतिहास में साम्प्रदायिक दंगों की कालिमा छा गयी है । साम्प्रदायिकता के कारण लोगों में दूसरे धर्म के प्रति श्रद्धा एवं आदर भाव कम हो गया है । सरकार हर बार धर्मनिरपेक्षता का आवाज उडाता है । लेकिन असल में निरपेक्षता से ज्यादा कट्टरता से अधिक लगाव हैं । भारतीय संस्कृति को जानबूझकर एक धर्म से जोड़ने की

प्रवृत्ति ज्यादा है । विभिन्न धर्मावलंबी लोगों का जन्मभूमि है भारत । इस सत्य को उलट करने का प्रतृत्ति अब जारी है । अंत भारत में यह कैंसर की तरफ़ फैला है ।

साहित्य हमेशा समाज को साथ लेकर चलता है । समाज का वास्तविक चेहरा साहित्य का मूलतत्व हैं । हिन्दी साहित्य में भारतीय समाज की वास्तविकता पूरी शिद्धत के साथ दृष्टिगोचर हैं । उपन्यास का फलक इतना व्यापक है कि साहित्य विधाओं में इसका एक विशेष स्थान हैं । हिन्दी उपन्यास साहित्य भारतीय समाज को पूरी सच्चाई के साथ प्रस्तुत किया । अब्दुल बिस्मिल्लाह, मंजुल भगत, भीष्म साहनी, कमलेश्वर, नासिरा शर्मा, गीतांजली श्री आदि ने इस ध्येय को पूरी सच्चाई के साथ निभाता है ।

राष्ट्र और राजनीति का एक अनोखी गाथा है अब्दुल बिस्मिलाह जी का अपवित्र आख्यान । भारतीय समाज में व्याप्त अपवित्र व्यवहारों का व्याख्यान बिस्मिलाह जी की रचना कौशल में संपन्न हुआ । उपन्यास का नायक जमील अहमद सीधा सादा सरल मानववादी युवक है। जमील और यासमीन की रिक्शा यात्रा से उपन्यास का कथानक शुरू होता है । यासमीन के घरवाले पढ़े लिखे है । पूरा परिवार में शिक्षित लोग हैं । फिर भी बाबूजी की विवशता बड़ा रहा है। उसकी विवशता को जमील के सम्मुख वह व्यक्त करता है "इस मुलक के मुसलमानों को अब हर फीलड़ में अपनी काबिलीयत दिखानी होगी वरना ये साले हमें रहने देंगे यहाँ ?"[1]

यह सवाल भारत समाज को खामोश बना दिया है। एक मुसलमान के मुँह से ये साले शब्द सुनने से सबके मन में हथियार भरी हाथों से माथे पर तिलक लगाकर भगुआ रंगीन वेशधारी दलों का चित्र आता हैं । यदि इस शब्द एक हिन्दु के मुँह से सुने तो भंगुआ रंग के स्थान पर हरा रंग माथे में तिलक के बजाय दाढ़ी वाला चेहरा का दृश्य आता है । हथियारों का आक्रोश एक जैसा होता है । सांप्रदायिकता का अर्थ है एक विचार या विचारधारा जो अपने विशिष्ट संप्रदायों के हितों को राष्ट्र या अन्य संप्रदायों के लोगों या अनुयापियों के प्रति घृणा और वैमनस्य के भाव विकसित करता हुई । इन तमाम वातावरण को नींव में रखकर लेखक ने अपना उपन्यास का निर्माण किया ।

जमील के गाँवो में बडी छोटी अनेक जातियों के लोग रहते थे, पर ब्राहम्ण कोई नहीं था । इसलिए विशेष अवसरों पर दूसरे गाँव से ब्राहम्ण बुलाया जाता था । एक बार राम चौबिसा समारोह में जमील को पढ़ने का अवसर मिला । पंडित जी उसकी प्रशंसा करते नाम पूछा । नाम सुनकर पंडित जी का चेहरा भट्ठी की तरह दहकने लगा । जमील का कनपटी पर भरपूर झापड पड़ा । निबोध बालक को भाषा की छूआ छूत को नही जानता । रोमिला थापर का कथन यहाँ प्रासंगिक है देखिए "भाषा और वंश का संबन्ध को पंडित लोग नहीं स्वीकारते है । फिर भी भारतीय समाज की अतीत के साथ भाषा और वंश के आपसी संबध को जोड़ने की प्रवणता भारतीयों और पाश्चात्यों की बोध का एक प्रमुख अंग बन गया है।"[2] जमील अहमद की प्रतीभा को हमेशा धर्म से जोड़कर नॉपने का दुरवस्था उपन्यास में आरंभ से अंत तक देखा है । जमील बी ए में संस्कृत और हिन्दी को चुना । हिन्दी के प्रो. पाडेजी ने जमील का नाम लिख लिया पर संस्कृत के डॉ. उपाध्यजी ने इनकार कर दिया । उपाध्याय कठोर रूप में कहा है "आज तक इस कॉलेज में किसी मोहम्मडन ने संस्कृत नही पढ़ी ।"[3]

संस्कृत सवर्ण हिन्दू की भाषा है । भाषा को हमेशा धर्म के साथ जोड़ने की त्रासदी का फल भोगता है जमील । जमील की हिन्दी स्नेह को उनके मित्रों सहानुभूति के देखते है । कलमी नाम बदलकर जमील जान्हवी रखने का इशारा किया । लेकिन जमील का निर्णय एक था । न तो मैं अपना नाम बदलूगा और न ही भाषा । जमील अपनी अस्तित्व को बदलकर नाम के पीछे दौडने वाले नहीं हैं । एक बार जमील हिन्दी विभाग अध्यक्ष प्रो.राम कुमार चर्तुवेदी को देखने गया । राष्ट्रीय समानता महाविद्यालय में हिन्दी व्याख्याता के पद का आवेदन जमील देता है । उस वक्त चतुर्वेदी जी कहता है "देखो जमील, तुम एक होनहार विधार्थी हो । तुम रचानाकार भी हो । तुम्हें भला कौन निरस्त्र कर सकता है ? तुम समाचार पत्र देखते रहो । कभी शिब्दली कॉलज आजमगढ़, हलीम कॉलेज कानपुर, या फिर अलीगढ़ मुस्लिम कॉलेज यूनिवैसिटी में जगह निकले तो अवश्य आवेदन करना । उस समय में सहायता कर सकूँगा, करुँगी ।"[4] बात तो स्पष्ट है । मुसलमान अपनी जगहों पर काम करो । जमील के बजाय यासमीन को मौका मिला । नारी चमकीली चीज़ है, वह कोई धर्म का ही भूख मिटाने में धर्म का कोई स्थान नहीं हैं । जमील नौकरी का तलाश करके दूसरे जगह में आया । वहाँ उसका भेंट भाग्य विधाता का संपादक इकबाल बहादूर रय से हुआ था । वह स्वयं अपना नाम बदलकर मुसलमान अस्तित्व को छिपाकर रहता है। इकबाल भारत में मुसलमान के अस्तित्व को खतरा महसूस करता था ।

वह कहते है "एक सेक्लूयर मुल्क होते हुए भी हिन्दुस्तान असल में हिन्दू मुलक हैं । यह सच है । आप बताइए कि यहाँ सरकारी नौकरियों में ऊँचे ओहदों पर कितने मुसलमान है ? पुलिस फोर्स, फौज, रिजर्व बैंक कहीं थी । हिन्दुस्तान का प्राइम मिनिस्टर कोई मुसलमान क्या हो सकता है ?"[5] लेकिन जमील इस बात को सहमत नहीं दी । वह जानता है हरिजनों की स्थिति ऐसा ही हैं । जमील ऐसा मानने वाला है । उसके मन में घृणा, शिकायत, शत्रुता आदि भावना भी नही वह प्रेम के रास्ते पर चलाने वाला है ।

जमील को काम मिला महात्मा गांधी इंटर कॉलेज में । विड़म्बना तो यह है जमील को नौकरी मिला धर्म के आधार पर। प्रतिभावन नवयुवक की मानववादी दृष्टि का महत्व को कोई स्थान नही मिला । जमील को कॉलेज में चलनेवाले राजनीति से वह धीरे धीरे परिचित हो जाते है । राजनीति के बारे में तिवारी का मत यह है "राजनीति का ज्ञान बहुत आवश्यक है । प्रिंसिपल साहब भी पॉलिटिक्स के बारे में जमील से कहा इस कॉलेज में बड़ी पॉलिटिक्स है । आप उससे बचकर रहिएगा । अगर हिन्दू मुसलमान बराबर हो जाये तो सारी पॉलिटिक्स भीतर घुस जाए कहीं मुसलमान माइनर्टी में हैं कहीं हिन्दू । इस मुलक की सबसे बड़ी ट्रेजेडी यही है, जिसे किसी ने नही समझा ।"[6]

यहाँ राजनीति का असली रुप पोल खोलकर बाहर निकलता है । चाहे वह कॉलेज का हो समाज का था व्यक्ति मन का राजनीति का षडयन्त्र है बाहर जातिगत भेदभाव का विरोध कर अन्दर ही अन्दर इस का पोषण करते हुए अपना लाभ उठता है । यही राजनीति वर्तमान भारत में कील के समान व्याप्त है इसका परिणाम है दलगत राजनीति । ये सारे दल धर्म के डोरों पर खुद को बाँधा गया है । राजनेताओं अपनी भलाई के लिए धार्मिक आस्थाओं को अलट दिया। हिन्दू मुसलमान का लगाव को अलगाव में डालने का तंत्र पूरे जगह में फैला । नकवी साहब की मदद से यासमीन को युनिर्वेसिटी में काम मिला । नकवी साहब यासमिन से लाभ उड़ा कर काम दिया । एक पार्टी में नकवी साहब वी सी वाष्णाय को मिला । उसकी मदद से यासमीन का काम पूरा हो गया । नकवी एक ऐसा

नेतागण को प्रतिनिधित्व करता है । वे समाज में अपनी छवि बनाने रखने के लिए सार्वजनिक स्थलों पर अपने कैरेक्टर को ठीक रखते है । समाज के आगे शाराब को हराम कहकर खुद पीता है । वाष्णाय जी को नकवी साहब भारत के राजनीति का मूल मंत्र गुजता है । मूल मंत्र यह है "इनसे ऊब कैसी ? फिर जातिवाद और सांप्रदायिकता यह तो समझिए एक जगंल है जिसमें हर शिकारी का शिकार मौजूद है । अगर जगल ही न रहेगा तो शिकारी अपना शिकार कहाँ ढूढेगा । और असल बात तो यह है कि अपनी फितरत में हर आदमी कहीं न कहीं जातिवादी और कम्युनल है ।"[7]

जंगल में कुशल शिकारी कौन है वह चुनाव में विजेता बनता है । यहाँ आरक्षण भी वास्तव में वोट बैंक बन गया । उर्दू को यु पी में दूसरी राष्ट्रभाषा बनाना । यासमीन जैसे मुसलमानों को नियुक्ति देना सब चुनाव से संबंधित है । यासमीन के जगह में जमील को स्थान नही मिला । जमील एक मानववादी है, न मुसलमान न हिन्दू । देह की व्यापार में अनादी काल में वर्तमान काल तक धर्म, जाति, वंश, नस्ल का कोई स्थान नहीं है ।

वर्तमान भारत में पंचायती राज का चुनाव भी धर्म पर आश्रित है । ओमप्रकाश गुप्ता जमील को ट्रेन यात्रा में मिलता । जमील की प्रकृति लोगों को यह आभास दिलाता है वह एक हिन्दू है । ओम प्रकाश गुप्ता ऐसा मानकर मुसलमानों पर दोषारोपण करना शुरु करता है । वह कहता है "अरे आप तो जानते ही हैं मास्टर साहब कि यह उर्दू हमारे देश की भाषा नहीं है । शुद्ध रुप से विदेशी है । मुसलमानों की भाषा । इस भाषा को महत्त्व देना । और मुसलमानों को महत्व देने का अर्थ है उन्हें शाक्तिशाली बनाना । वे लोग तो वैसे ही शाक्तिशाली है । चार चार विवाह करके और दर्जनों बच्चे पैदा करके उन्होंने अपनी संख्या कितनी बढ़ा ली है । है कि नहीं ? अब तो उनके यहाँ घर घर बम बनने लगे हैं । मुर्गी मुर्गी और बकरी बकरा काट काटकर हत्या का अभ्यास भी वे करते ही रहते हैं । अगर इसी तरह उन्हें छूट मिलती रही तो एक दिन हम सभी हिन्दुओं को पछताना होगा । हम एक बार पुनः उनके अधीन हो जाएँगो ।"[8]

यह सब सुनकर भी जमील सहजता से बातें करते हैं । जमील का मुलाकात नादाँ साहब से हआ । वह जमील को समझता है "किस तरह ज़माना बदलता है । पहले लोग खाने पीने में परहेज करते थे मगर दिल के साफ होते थे । और अब ? अब साथ बैठकर खाते पीते हैं मगर दिलों में सियाही भरी हुई है ।"[9]

वर्तमान सभ्य सुशिक्षित लोगों का असलीयत इतना विकरालतम बन गया है । एक मानववादी सुधारवादी विकासवादी उत्तम सभ्य सुसंकृत मानव का मुखौटा पहनकर लोग विषैली आँखों से दूसरे को देखते हैं । वर्तमान समाज का भयानक सत्य इन लोगों के शब्दों में है । जमील राबिया देवी को शादी करता है । हाईस्कूल फेल राबिया हिन्दु परिवारों से मिलजुल कर रहता लड़की है । वह हिन्दुओं के समान बिंदी डालती हैं । वह ***है*** या ***मीम*** शब्दों से परिचीत नहीं । हिन्दू उत्सवों को मनाती थी । जमील भी खुशी इससे सहमत था । लोगों के निगाह में जमील एक हिन्दु लड़की से शादी की है । उनके एक बेटी भी है मुन्नि ।

मास्टर चन्द्रशेखर जी की राय में ब्रिटीश शासकों का निर्णय सही है । वह कहते हैं - "वह भारतीयों को एक बना दिया । एक राज्य में एक ही धर्म के लोगों का होना अच्छा है ।"[10] यह सुनकर जमील ने उत्तर दिया "यह इस देश

की विशेषता है यहाँ सदियों से लोग ऐसे ही रहते चले आए है । यहाँ तक की इस देश के हिन्दू भी एक जैसा नही रहे न है । कोई शिव का उपासक हो तो कोई विष्णु का । पाकिस्तान में सब एक कौम का है । और खूब शांति है वहाँ क्यों ?"[11]

यह यथार्थ को अनदेखे एक धर्म का नारा यहाँ उडा हैं । जमील एक कवि के रूप में विख्यात है साथ ही कहानियाँ लिखते है । विभा अहमद का मुलाकात एक पार्टी में हुआ । विभा स्वंय इस्लाम को श्रेष्ठ मानकर मुसलमान युवक को शादी किया । जमील के हाथ में शराब का ग्लास देखकर वह उसे हरामी समझा । वह इस्लाम की धार्मिक आस्थाओं को पति की सहारे ग्रहण लिया । ये मान्यताएँ का मान्यता कहाँ तक सार्थक है यह सोचने की क्षमता विभा जैसे लोगों में नही है । एक युवक जमील को अनेक बार इस्लाम बनाने की मदद माँगी लेकिन जमील उसको सिखाता है भारत में सब धर्म एक है । सबका प्राण तत्व एक है । सबका नीव विश्व स्नेह पर खडा है ।

उपन्यास में हम धार्मक कट्टरता से जूझने वाले लोगों को देखते है । गर्मी के दिन में अचानक वर्षा आएगा तो हमारा अतरंग भरेगा । उसी प्रकार का एक दृरय है ट्रैन में मिली एक हिन्दू दम्पति । ट्रेन में नमाज के लिए विवश बूढे मुसलमान के लिए अपना बर्ता बिस्तर बना दिया एक हिन्दू दम्पतियाँ । उनका यह व्यवहार जमील को नया अनुभव था । अजमेर के मुसलमान भाई के से उसे प्रेरणा मिली । वह आज एक मानव है । धर्म का महत्व और मूल तत्व को मानने वाला एक मानव । देखिए "दूसरा धर्म कैसा बेटा ईरवर का धर्म तो एक ही है और वह है मानवता का धर्म । ये जो हिन्दू मुसलमान सिक्ख ईसाई आदि धर्म दिखाई पड़ते हैं ये सब हम मनुष्यों के बनाए हुए है ।"[12]

मानव जीवन उसका विकास यह सब इस तत्व पर आधारित है । भारतीयों का भविष्य का निर्माण इस सत्य के आधार पर होगा । जमील को राष्ट्रीय कवि सम्मेलन में आंमत्रण मिला । यह सम्मेलन जमील को सबक दिया कि सबका लक्ष्य एक है । धर्म का इस्तेमाल अपनी लक्षय के लिए करते है । यासमीन आज विभाग अध्यक्षा बनी । जमील से मिलने पर वह जमील को डराने का परिश्रम किया । यासमीन जमील को यह सिखाती है हिन्दी के मुसलमान अध्यापकों की आवश्यकता तब होगी जब वह एक मुसलमान भी होना ज़रूरी है । जमील जैसे मानववादी की स्थिति हमेशा कूड़ा कचरा में है ।

तूणीर का संपादक रामप्रसाद हठी जमील को मुसलमान का विशेष पहचान पर एक लेख लिखने का इशारा किया । जमील जानता है हर मानव का पहचान एक जैसा है । खासकर धर्म के साथ जोड़ने की आवश्यकता नही है । भूख का दर्द सबको एक है । उसके आगे धर्म का कोई स्थान नही है । यह सत्य की जानकारी सबको देता है "आप गाँवों में जाकर देखिए वहाँ के हिन्दू और मुसलमान कैसे हैं ? उनका जीवन एक जैसा है, उनकी समस्याएँ एक जैसी है । जो समस्या हिन्दू किसान की है वही समस्या मुस्लिम किसान की है । अगर गरीब मुसलमान अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा नही दे पाता तो गरीब हिन्दू भी नही दे पाता । यह नहीं जो भाषा हिन्दू बोलता है वही भाषा मुसलमान भी बोलता है । गाँवे में चाहे हिन्दू हो या मुसलमान वे अपनी बातचीत में एक जैसी बोलियों एक जैसे

मुहावरों का प्रयोग करते हैं । और नगरों महानगरों की यह है कि माता पिता चाहे वे हिन्दू हो या मुसलमान यही चाहते हैं कि उनकी औलाद गिटिर पिटिर अंग्रेज़ी बोले ।"[13]

भारत का स्पदन गाँवों की गलियों में है । वहाँ है भारत की आत्मा । गाँवों में निर्मम स्नेह भरी वाणियाँ गूँजती है । गरीबी की सच्चाई प्रमुख है । राष्ट्रीय सम्मेलन के समापन के अवसर पर जमील के शाहर में दंगा हुआ । वह ट्रेन में सवार करने वक्त प्यास से गला सुखा जा रहा था । जमील ने किसी से पानी नही माँगा । क्योंकि वह अनेक सवालों को डरता है । लेकिन पूरे दिन और पूरी रात जमील उसी बर्थ पर भूख प्यास से जूझता हुआ पड़ा रहा । इस दंगों में इकबाल की मृत्यु एक मुस्लिम मुहल्ले में हुई । दंगा शान्त हो गया था । लेकिन पूरा शहर में एक जड़ता व्याप्त हुई । भय सभी ओर छा गई । स्टाफरूम में हिन्दू टीचर एक तरफ बैठे थे । शहर को दंगा एकदम र्निजीवता की विराट छाया में फेंक गई ।

गाँव में भी आज स्थिति खतरे में है । वहाँ प्यार लगाव निर्मम सहानुभूति करुणा मिठास का जगह आज धार्मिक कट्टरता का गर्मी चल रही है । जमील को अनेक पत्र मिलग । यासमीन, रामप्रसाद हठी, प्रिसिपल साहब, विभा अहमद, राष्ट्रीय कवि सम्मेलन का संयोजक, ओम प्रकाश गुप्ता, जनाब अब्दुस्सलाम नादाँ आदि । यासमीन जमील को यह सिखाने की कोशिश की है हिन्दी भाषा में पंडित बनने के साथ साथ मुसलमान भी बने रहे तो उन्हें यासीन की तरह अनेक अवसर मिलता है । लेकिन आज जमील की भविष्य पराजय का सीट्ठियाँ पर खड़ा है । प्रिंसिपल साहब जमील से एक माँफीनामा माँगता है । गाँव में एक ब्याह में जाना कॉलेज की पॉलसी के विरुद्ध है । जमील का अपराध का सज़ा है माफीनामा । विभा अपने आपको एक धार्मिक आस्थावान मानकर जमील को स्वयं शराबी मानती है । राष्ट्रीय कवि सम्मेलन का संयोजक जमील को खूब प्रशंसा की उन्होंने बताया जमील ने हिन्दी एवं हिन्दू संस्कृति के सही पक्ष को पहचाना है । वह जमील को उर्दू का प्रयोग जैसे कुसंस्कारों से बाहर जाने का उपदेश दिया । निकट भविष्य में आयोजित विशाल हिन्दू सम्मेलन में जमील को आमंत्रित किया । ओमप्रकाश गुप्ता जमील जैसे लोगों का हिन्दी अध्ययन पर भी दोषारोपण किया । भारत की मुक्ति के लिए इन लोगों का निष्कासन नितांत आवश्य है । नादाँ साहब जमील को एक प्रयोगवादी बनाने की आवश्यकता को सिखाता है । हिन्दी मास्टर के घर में कुरआन की अपेक्षा गीता की जरूरत ज्यादा है । समाज के आँखों में जमील इकदम फिट हो गया । भारत में जीने तो ऐसे कौशलों को सीखना आवशय है । जमील सब पत्रों को एक लिफाफे में डालकर राबिया की सहारे कुएँ में फेंकता हैं । जाग उठी मुनि की आँखों में तलाश जमील का आशामयी छवि से उपन्यास का अंत हुआ ।

भारत जनतांत्रिक राजनीति का एक अनोखी मॉडल है । इस विशेष पहचान का वर्तमान सच्चाई अपवित्र आख्यान में है । जमील की जीवन यात्रा में आने वाले हर एक व्यक्ति विशेष रूप से वर्तमान भारत का प्रतिनिधित्व करते है । धर्म के नाम पर मनुष्यों के स्वच्छन्द जीवन में उपस्थित बाधाएँ का, उस बाधाओं से फायदा कर अपने भविष्य को संपन्न बनाने में विवश चालाकीयों का जीवन्त दस्तावेज़ है यह उपन्यास । डाँ सादिक, यासमीन, इकबाल बहादूर राय, अंसार अहमद, सिद्दिकी साहब जैसे शिक्षित लोग भारत में इस्लाम की स्थिति को खतरनाक समझा । रामप्रसाद हठी, चन्द्रशेखर, गुप्ता जैसे लोग मुसलमान पर शंकालू है । राबिया जैसे लोग खुले मन से सभी धर्मी को मानते है ।

जमील का व्यक्तित्व एकदम अजीब है । आज ऐसे लोगों की संख्या बहत कम है । मानव को मानव समझ कर मानव की विकास को जान कर मानव के बोधिक विकास पर बल देकर निर्भय जीवन को वह जीता है । धर्म मूल मंत्र की आलोक छाती में जब भरा तब आदमी ऐसा हो गया । भारतीय समाज का भविष्य जमील जैसे पर निर्भर रहा । भारत विभिन्न धर्मों का अपना गृह है । सबका खून एक है । धार्मिक जड़ी बूडियों के जजीरों को तोड़कर एकता की भावना को जगाना राजनीति का दायित्व है। आज लोगों में यह क्षमता कम है । वसुदेव कुडुम्बकम् की भावना का पोषण करने लोग आपस लड़ते है । धर्म के नाम पर की गई हत्याओं से धर्म की पवित्रता का कलंक ही होगा । धर्म की रक्षा हिंसा से संभव होगा कही भी ऐसा काम नही है । जनता को उल्लू बनाकर अपना फायदा उड़ाने वाले गिदों की चालाकी को खत्म करना एक जनसेवक का प्रथम दायित्व है । विश्व भर में हमारा तिरंगी झंडा फैलाने का दृढ़ संकल्प जीमी अहमद जैसे युवकों से सफल होगा । एकता का नारे का गुँजन हमारे देरा भर में फैलने का प्रयत्न करना हमारा दायित्व है । अब्दुल बिस्मिलाह भारत में व्याप्त सांप्रदायिकता के छलक पट को सच्चाई के साथ प्रस्तुत की है । समकालीन हिन्दी उपन्यास साहित्य में अपवित्र आख्यान सरल से तमाम जिन्दगियों का सुनाकर एक अलग पहचान बना दिया । इसमें देश की दुरवस्था को पहचानने का मौका उपन्यास हमें प्रदान की है। अपवित्र आख्यान का मूल लक्ष्य असल में वर्तमान दुरवस्था से देश को मुक्त कर उसके उज्वल भविष्य के निर्माण के लिए जनता को प्रेरित करना ही है ।

वर्तमान संदर्भ में मैथिलीशरण गुप्त जी की ये पंक्तियों प्रासंगिकता रहेंगे ।

यह पुण्य भूमि प्रसिद्रध है, इसके निवासी आर्य है ।

विद्या, कला कौशलय सबके जो प्रथम आचार्य है ।

संतान अन की आज यध्यपि, हम अधोगति में पड़े

पर चीन्ह उनकी उच्चता के आज भी कुछ है खड़े ।

संदर्भग्रंथ सूची

1. अपवित्र आख्यान पृ. सं. 16

2. अपवित्र आख्यान पृ. सं. 22

3. अपवित्र आख्यान पृ. सं. 24

4. अपवित्र आख्यान पृ. सं. 29

5. अपवित्र आख्यान पृ. सं. 39

6. अपवित्र आख्यान पृ. सं. 34

7. अपवित्र आख्यान पृ. सं. 55

8. अपवित्र आख्यान पृ. सं. 84

9. अपवित्र आख्यान पृ. सं. 88

10. अपवित्र आख्यान पृ. सं. 95

11. अपवित्र आख्यान पृ. सं. 112

12. अपवित्र आख्यान पृ. सं. 122

13. अपवित्र आख्यान पृ. सं. 133

'अंधेर नगरी' - हास्य-नाटक की कथा-वस्तु, राजनीतिक संदर्भ, भाषा-प्रयोग

अनिता डी किनी
शोध छात्रा, हिन्दी विभाग
महाराजास् कॉलेज, एरणाकुलम

नाटक साहित्य की सर्वाधिक सशक्त एंव प्रभावशाली विधा है। नाटक और मानव जीवन का शाश्वत सम्बन्ध रहा है। यह संसार एक रंगमच है और मानव उसका शाश्वत पात्र है। मानव जीवन के व्यापक सदर्भों और यथार्थ जीवन के विविध आयामों से विषय चुनकर वह समाज केलिए ही नाटक का निर्मण करता है।

भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा लिखित एक हास्य-नाटक है जिसे समाज में फैली अव्यवस्था को ध्यान में रखकर लिखा गया है। इसमें उन्होंने इस तथ्य को उजागर किया है कि मुर्ख राजा के राज्य में अव्यवस्था का साम्राज्य होता है। मूर्ख राजा के रहने से राज्य में नागरिकों को क्या-क्या झेलना पड़ता है उसका अत्यंत रोचक ढंग से वर्णन किया गया है।

'अंधेर नगरी' पहला आधुनिक राजनीतिक नाटक है जो उसकी पूरी संरचना में तत्कालीन शासन-व्यवस्था पर अत्यंत तीखा व्यंग्य घुल-मिल गया है। इस नाटक में अनेक लोक गीतों के माध्यम से व्यंग्य की सृष्टि की गयी है।

अन्धेर नगरी की कथा-वस्तु कल्पना को सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों पर आश्रित कर के प्रस्तुत किया गया है। इसमें अंग्रेजी शासन काल की दुरावस्था और तत्कालीन समाज की दीन-हीन स्थिति को प्रकट किया है।

कहानी में एक पात्र महंत अपने दो शिष्यों नारायण दास और गोवर्धन दास के साथ एक नगरी में आते हैं। उन्हें पता चलता है कि यहाँ सब कुछ टके सेर मिलता है और इस नगर का नाम अंधेर नगरी है। यहाँ हर चीज़ सस्ती देखकर लोभी गोवर्धन वहीं रह जाता है किंतु महत और नारायण दास लौट आते हैं। आते समय अपने शिष्य गोवर्धन को बता जाते हैं कि जब भी किसी मुश्किल में फँसो, हमें याद कर लेना। गोवर्धन उस नगरी की कानून-व्यवस्था से बिलकुल अनभिज्ञ है। वह अपना सारा ध्यान स्वादिष्ट भोजन की ओर केंद्रित रखता है। अच्छी-अच्छी चीजें खाकर काफ़ी मोटा-ताज़ा हो जाता है । उस नगरी के राजा के पास अपनी बकरी मरने की फ़रियाद लेकर एक फ़रियादी आता है। फ़रियादी ने कल्लू बनिए की दीवार गिरने को बकरी के मरने का कारण बताया। बनिए ने सारा आरोप दीवार बनानेवाले कारीगर पर लगा दिया। कारीगर ने बताया चूनेवाले ने खराब चूना बनाया था इसलिए दीवार गिरी। चूनेवाले ने अपनी सफ़ाई दी कि भिश्ती ने ज्यादा पानी डाल दिया था। भिश्ती ने कहा कि कसाई

ने मशक बड़ी बना दी थी इसलिए उसमें पानी ज्यादा आ गया। कसाई ने सारा दोष गड़रिए पर दे डाला कि उसकी बड़ी भेड़ के कारण ऐसा हुआ। गड़रिए ने बताया कि उधर से कोतवाल की सवारी आई, उसकी भीड़ देखकर कुछ ध्यान ही नहीं रहा। राजा ने कोतवाल को फाँसी देने का आदेश दिया। कोतवाल की गर्दन पतली थी और फाँसी का फंदा बड़ा। इसलिए राजा ने किसी मोटे आदमी को फाँसी देने का आदेश दिया। राजा के सिपाही मोटे आदमी की तलाश में निकले तो उन्हें गोवर्धन मिल गया। वह खा-खाकर मोटा हो गया था। सिपाही उसे पकड़ लाए। वह अपने को बेकसूर बताता रहा पर सिपाही नहीं माने। अपने को मुसीबत में पड़ा देख गोवर्धन को गुरु जी की याद आई। महंत आकर उपदेश देने के बहाने उसके कान में कुछ ऐसी तरकीब बताते हैं जिसे सुनकर दोनों-गुरु चेले में लड़ाई शुरू हो जाती है। गुरु कहते हैं कि मैं फाँसी चढ़ूँगा और शिष्य कहता है कि मैं फाँसी चढँगा। जब यह पता चला कि अभी शुभ घड़ी है, जो अभी मरेगा वह सीधा स्वर्ग जाएगा तो मंत्री और कोतवाल दोनों फाँसी पर चढ़ने को तैयार हो जाते हैं। लेकिन राजा ने आदेश दिया कि मैं स्वर्ग जाना चाहता हूँ इसलिए वह स्वयं फाँसी पर चढ़ जाता है। इस प्रकार एक अविवेकी राजा का अंत हो|

राजनीतिक संदर्भ :

भारतेंदु ने चौपट राजा के माध्यम से राजनीतिक भ्रष्टता अदूर दृष्टि और कौशल हीनता को प्रकट किया था।।

वर्तमान संदर्भ में भी उनके राजनीतिज्ञ, सरकारी वर्ग के अधिकारी और उच्च पदों पर आसीन मठाधीश इसी वर्ग से सम्बन्धित है। उनके द्वारा किए गए मूर्खतापूर्ण कार्य भी गुमराह जनता के लिए आदर्श बन जाते हैं| जनता के किसी छोटे से वर्ग की मूर्खता भरी स्वीकृति को प्राप्त कर वे स्वयं को सर्वज्ञ, श्रेष्ठतम और पथ प्रदर्शक मानने लगते हैं।

जिन लोगों पर इनकी छत्र छाया होती है वे अकारण ही समाज में ऊँचा स्थान प्राप्त कर लेते हैं | अच्छे और सच्चे लोग दर-दर की ठोकरें खाते हैं, अपमानपूर्ण जीवन जीते हैं, भूखे-प्यासे घूमते हैं और राजनीति का संरक्षण पाने वाले लोग इनके सिर पर सवार हो जाते हैं।

ऐसे ही लोग समाज में सम्मान पाते है और उन्हें ही ऊँचे पद प्राप्त हो जाते हैं।

आज भी अनेक राजनेता अन्धेर नगरी के मूर्ख विवेकहीन और धोखेबाज लोग बाहर से तो सभ्य और भले प्रतीत होते हैं लेकिन वे मन के कपटी हैं|

वे दिखाई देने में कुछ है और उनकी वास्तविकता कुछ और ही है। ये अत्यन्त शक्ति सम्पन्न और प्रभावशाली प्रतीत होते है। उन्हें ही ऊँचे-सचे पद प्रदान किए जाते हैं।

जो कोई सत्य के मार्ग पर आगे बढ़ना चाहता है उसे तो जूते खाने पड़ते हैं। ये तरह-तरह के अमानवीय कष्ट सहते हैं।

राजनीतिज्ञों की चालों के कारण बेईमान और झूठे तो ऊँची-ऊँची पदवियां प्राप्त कर लेते हैं इस समाज में वही महान है जो बड़ा धोखेबाज और दुष्ट है।

यदि गद्दी पर बैठने वाले मूर्ख हों तो जनता पर उनकी मूर्खता का प्रभाव पड़ना आवश्यक है –

"वेश्या जोरू एक समान ।
बकरी गऊ एक करि जाना।।
साँचे मारे मारे डोलै ।
छली दुष्ट सिर चढ़ि-चढ़ि बौलैं ।।
प्रगट सम्य अन्तर छलधारी।
सोई राजसमां बल भारी।।
साँच कहै तो पनही खा वैं ।
झूठे बहु विधि पदवी पावैं ।।" [1]

भारतेन्दुकान में हिन्दी-साहित्य भाषा की दृष्टि से एक नई कारवट ले रहा था। इस समय तक हिन्दी काव्य की रचना बज या अवधी में होती थी लेकिन सामान्य बोलचालको लिए खड़ी बोली का प्रयोग होता था। जिस खड़ी बोली का प्रयोग जनसामान्य के द्वारा किया जाता था। उसका स्वरूप भी वैसा नहीं था जैसा अब है। आधुनिक काल के इस सन्धि साहित्य में भारतेन्दु एक और प्राचीनता के प्रेमी है तो दूसरी ओर नवीनता के सूत्रधार भी हैं। उन्होंने कविता के क्षेत्र में ब्रजभाषा का प्रयोग ही किया और गद्य के क्षेत्र में रखड़ी बोली का व्यवहार आरम्भ किया। इनकी रडी बोली में न तो शुद्ध संस्कृत निष्टरूप का प्रयोग किया गया और नहीं उर्दमयी गय शैली को प्रस्तुत किया गया बल्कि इस दिशा में मध्यमार्गका पालन करते हुए एक नया रास्ता खोज लिया गया था अन्धेर नगरी में भाषा का नया रास्ता ही दिखाई देता है। अन्धेर नगरी में भारतेन्दु के द्वारा प्रयुक्त भाषा शैली की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित है।

भाषा-प्रयोग

गद्य-पद्य के लिए मिन्न भाषा-प्रयोग :

अन्धेर नगरी में भाषा-प्रयोग की विविधता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। महन्त जी के उपदेशों, पदों तथा तुकयन्दियों में ब्रजभाषा का प्रयोग किया गया है जैसे-

"राम भजो राम भजो राम भजो भाई।
राम के भजे से गनिका तर गई,
राम के भजे से गीध गति पाई।

राम के नाम से काम बने सब,

राम के भजन बिनु सबहि नसाई।

राम के नाम से दोनों नयन बिनु ,

सूरदास भये कवि कुल - राई।

राग के नाम से घास जंगल की,

तुलसीदास गये भजि रघुराई ।" [2]

महन्त जी जहाँ कहीं भी उपदेशात्मकता का सहारा लेते है वहाँ ब्रजभाषा की विशिष्टता दिखाई दे जाती है। लेकिन पात्रों के आपसी संवादों में खड़ी बोली का ही प्रयोग किया गया है। हिंदी जगत् में जब भी व्यंग्य साहित्य पर नजर डालेंगे तो उसकी शुरूआत भारतेंदु हरिश्चन्द्र से करनी पड़ेगी। व्यंग्य साहित्य युगीन चेतना की जनोन्मुखी अभिव्यक्ति, सामाजिक सरोकारों के प्रति गंभीरता, स्वच्छन्द भाषा और निर्भीकता उनकी विशेषता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 अन्धेर नगरी, पृ. 65

2 अन्धेर नगरी, पृ. 47

अज्ञेय के यात्रावृत्तान्त के परिप्रेक्ष्य में भारतीय संस्कृति: एक झलक

डॉ. सोनिया.एस
हिन्दी अध्यापिका
सेन्ट पॉल्स इंटरनेशनल स्कूल, कलमशेरी

संस्कृति जीवन की एक ऐसी प्रक्रिया है, जो सदा विकसित होती रहती है और सभ्यता के अंतराल में सदा वर्तमान रहती है। मानव जीवन को सभी दृष्टियों से उत्तम और सुंदर बनाने का काम संस्कृति करता है। संस्कृति के द्वारा मानव अपना व्यक्तित्व स्थापित करता है। देश की संस्कृति को बनाए रखने केलिए दर्शन,अध्यात्म, नीति और धर्म महत्वपूर्ण काम करते हैं। "संस्कृति से मतलब है किसी देश या जाती के सामाजिक,राजनीतिक,साहित्यिक, दार्शनिक और धार्मिक जीवन के उत्थान और पतन का समावेश।"1 इसका यह मतलब है कि व्यक्ति के सभी क्रिया कलापों में संस्कृति का अंश देखने को मिलता हैं।

संस्कृति के निर्माण में मस्तिष्क के अतिरिक्त हृदय का भी योग रहता है। हृदय से उत्पन्न होने के कारण उसमे कल्पना का समावेश तो रहता ही है। यह कल्पना संस्कृति साहित्य के माध्यम से व्यक्त करता है। इस दृष्टि से देखें तो "साहित्य संस्कृति का ज्येष्ठ पुत्र है। जब संस्कृति उन्नतावस्था में रहती है,तब साहित्य भी फलता–फूलता है।"2 संस्कृति के द्वारा प्राप्त सभी समृद्ध उपलब्धियों को साहित्य अपने में संजोकर रखता है, और उसे उत्तम रचना के रूप में लोगों के सामने प्रस्तुत करता है।

भारत विविधताओं का देश है। यहाँ के आचार-विचार में भिन्नता देखने को मिलता है। अलग-अलग संस्कृतियाँ होने पर भी, सभी भारतीय हैं, ऐसी भावना लोगों के मन में है। इसी एकता की भावना को बनाए रखना संस्कृति का लक्ष्य है। "मानव के शारीरिक, मानसिक व आत्मिक शक्तियों का विकास ही संस्कृति का उद्देश्य है। जिस संस्कृति में इसको प्रमुखता देते है, वह संस्कृति उत्तम माने जाते हैं।"3 भारतीय संस्कृति का उदात्त रूप हमारे महाकाव्यों और धर्म ग्रंथों में मिलता है। कला- प्रियता भी भारतीय संस्कृति की एक और विशेषता है। जगत को माया समझते हुए भी भारत ने ललित कलाओं के महत्व को माना है और उनका अतिशय विस्तार किया है। एक देश की संस्कृति और साहित्य को समृद्ध करने में जिन मूल्यों की आवश्यकता है, वे सब भारतीय संस्कृति में निहित है। भारतीय संस्कृति पर तंत्र-मंत्र को बहुत ही ऊँचा स्थान मिलता है। इसी कारण से तांत्रिक विधीय पर भारतीय विश्वास करते हैं। आज भी इसमें कोई बदलाव नहीं आया है। किसी भी शुभ कार्य होने से पहले लोग अपने ईश्वर को प्रणाम किए बिना कुछ भी नहीं करते। यही भारतीय संस्कृति की विशेषता है।

भारतीय संस्कृति अनेक अनुष्ठानों से संबंध रखता है। हिन्दू धर्म की अधिकता के कारण पूजा-पाठ को भारतीय संस्कृति प्रमुखता देती आ रही है। पुराने ज़माने में ऋषि-मुनियों ने भी पूजा-पाठ को प्रमुखता देती थी।

भारत विविधताओं का देश होने के कारण अनेक मेले, त्योहार यहाँ देखने को मिलते है। फिर भी भारतीयता नाम के एक सूत्र मे हम सब बाँधा हुआ है।

अज्ञेयजी के यात्रा वृतांत 'अरे यायावर रहेगा याद' में मथुरा के वृंदावन में होनेवाली अनीतियों के बारे में उल्लेख मिलता है। यहाँ के मंदिरों में भगवान के दर्शन केलिए पैसा खर्च करना पड़ता है। जिसके पास पैसे है वही भगवान का दर्शन कर सकते है। अज्ञेयजी ने इसे अनुभव किया है और लिखते है:- आजकल मंदिरों में पूजा विधान पवित्र मन से करनेवाली 'शक्ति' पर भी पैसे आकर बैठ गए। आजकल मंदिर एक वाणिज्य संस्था बन गई है, जहाँ जो पैसा देगा, वही भगवान का दर्शन आराम से कर सकते है। स्वार्थी मानव पैसों के बल पर भगवान को भी खरीदने की कोशिश में है। टिकट के नाम पर प्रत्यक्ष रूप से मंदिरों में चोरी हो रही है। टिकट खरीदने में असमर्थ व्यक्ति को भगवान के दर्शन से वंचित रहना पड़ता है।

देवी-देवताओं के अंचल नाम से जानेवाले 'कुलु' की सैर करते वक्त वहाँ का अनुष्ठान लेखक को विशेष रूप से आकर्षक लगा। इस क्षेत्र को यह नाम इसलिए मिला क्योंकि जहाँ कही भी जाते है, हर कही कोई न कोई मंदिर ज़रूर होते है। लेखक का कहना है – "कुलु क्षेत्र में अनेक देवताओं की मूर्तियाँ है। विभिन्न प्रकार की जनता अपने इष्ट देवता के मंदिर में जाकर पूजा-पाठ करते है और साल भर में एक बार रथों पर रघुनाथ के मंदिर में आकर श्रीराम जी का दर्शन कर लेते है। सैकड़ों देवताओं के मंदिर यहाँ होने के कारण इस प्रदेश का नाम 'देवताओं का अंचल' नाम से प्रसिद्ध हो गया।"4 उपरोक्त व्याख्या में यायावर ने भारत में प्रचलित धार्मिक विश्वासों का वर्णन किया है। इन्ही धार्मिक विश्वासों के कारण भारत में धार्मिकता पनपती है । यह विश्वास अच्छा भी हो सकता है और बुरा भी। इन सब का वर्णन प्रस्तुत यात्रावृतांत में मिलते है।

मेले – त्योहारों से समृद्ध है हमारा भारत। मेला खुशियों का माहौल है। खासकर व्यापारी लोग बहुत धूम-धाम से मेले मनाते हैं। यायावर अपने भारतीय यात्रा के बीच देखे गए मेले का वर्णन करते है- "दशहरे के दिन यहाँ बड़ा भारी मेला चलता है। साल भर का व्यापार प्रायः इस एक ही दिन में होता है। बाहर से आए हुए लोगों केलिए देशी –अंग्रेजी दुकानों और होटलों या पंसारी–हाट भी बनाया जाता है। इसलिए ग्राहक और विक्रेता दोनों ही बड़े उमंगों के साथ यहाँ आते है। रंग-बिरंगी कंबल,पट्टू –पट्टियाँ, पशमीना, चरम और अन्य प्रकार की खालें रीछ की, मृग की, तेंदुए की कभी-कभी बर्फ के बाध की तरह-तरह की जूतें, मोज़े,सिली-सिलाई पोशाकें, टोपियाँ, बासुरी, बर्तन, पीतल और चांदी के आभूषण, लकड़ी, हड्डी और सींग की कंघियाँ, देशी और विदेशी काँच, बिल्लौर और पत्थर के मनकों के हार न जाने क्या-क्या चीजें यहाँ आती है, उन सबका गिनती करना असंभव है। मेले के पूरे दिन हज़ारों की संपत्ति हाथ बदल लेती है। इसके साथ तमाशे होती है, नाच होते है, गाना-बजाना और जग-मग रोशनी होती है।"5

भारतीय इतिहास देखा जाए तो हमें यह पता चलता हैं कि पुराने ज़माने से लेकर भारतीय जनता अंधविश्वासों और पौराणिक आख्यानों पर विश्वास करते थे। भारतीय संस्कृति की एक विशिष्ट देन है, मोक्ष अथवा आनंद की खोज। यह मोक्ष पापों से मुक्ति पाने का प्रयास है। यह सांस्कृतिक तथ्य भारतीय आध्यात्म जीवन का

बहुत बड़ा संबल है। 'अरे यायावर रहेगा याद' में भी यह सांस्कृतिक तथ्य देखने को मिलते है। परशुराम कुंड से संबंधित पौराणिक आख्यान इस प्रकार दिया है- "परशुराम कुंड में स्नान करने से पाप मुक्त हो जाते है, ऐसे विश्वास प्रचलित थे। लोग विश्वास के अनुसार पाप तो दिखते नहीं है। जिन वस्त्रों से स्नान किया जाता है, उन्हे कुंड पर ही छोड़ देने की प्रथा है। इस उपाय से यात्री अपने पाप वही छोड़कर चले आ सकते है। मुमुक्षु लोग नहाकर उसकी धोती-गमछा- लँगोट जो कुछ भी हो, उसे खींच लेते है। कभी- कभी मुमुक्षुओं को उस परम निष्पात अवस्था में सूखे कपड़ों से जाना पड़ता है। इसका विरोध नहीं कर सकता है, यही रीति यानि विश्वास प्रचलित है"।6

कुलु एक ऐसा देश है, जहाँ संस्कारों का संगम है। यहाँ की देवी-देवताओं और श्रेष्ट व्यक्तित्व के बारे में व्यक्त करने वाले उद्धरण भी है :- "कुलु की संस्कार तो मनोरंजक है। वहाँ असंख्य देवी-देवता और ऋषि-मुनि को आदिम निवासियों द्वारा पूजे जाते थे। वे आर्य थे या नहीं इस बात का कोई झगड़ा नहीं है। लेकिन आर्य धर्म के जिस रूप को हिन्दू धर्म के नाम से हमने जाना, वे यहाँ विजेता के रूप में आया। जब बाहर से किसी विजेता आया तो उसे भी अधिदेवता राम की अधीनता स्वीकार करना पड़ता है"।7 भारतीय संस्कार देखा जाए तो पता चलता है कि वे हमेशा देवी - देवताओं को अपनी ज़िंदगी में अहम स्थान देते आए है। इसका एक उत्तम उदाहरण के रूप में कुलु का वर्णन यहाँ दिया गया है। शायद यह भारत में एकमात्र स्थान है, जहाँ मानवता का यह स्वयंभू आदिम प्रवर्तक मंदिर में प्रतिष्ठित हो और पूजा पाते हो। यहाँ के लोग ज़्यादातर अनेक प्रकार के विश्वासों को अपने ऊपर डाल देते है।

भारत की पुरानी संस्कृति में गहरी निष्ठा नज़र आती है और संस्कृति को मनुष्य की विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति माना है। इतिहास को हमने देखा नहीं, इतिहास आधारित चीजें हमे अतीत का अहसास करवाती है। इतिहास मात्र इतिहास नहीं, बल्कि लोग-मानस और मानव जाती की सांस्कृतिक चेतना की विकासशील धारा का कालक्रम से अध्ययन,मूल्यांकन करने का एक महत्वपूर्ण साधन भी है। स्पष्ट है कि संस्कृति सभ्यता से अधिक स्थायी है, जो साहित्य की अनश्वर काया में जीवित रहती है।

संदर्भ :-

1. साहित्य के विविध संदर्भ –डॉ.वासुदेवनंदन प्रसाद- पृ.1
2. साहित्य के विविध संदर्भ –डॉ.वासुदेवनंदन प्रसाद- पृ.3
3. भारतीय संस्कृति –शिवदत्त ज्ञानी - पृ.16
4. अरे यायावर रहेगा याद –अज्ञेय- पृ.29
5. अरे यायावर रहेगा याद –अज्ञेय- पृ.118
6. अरे यायावर रहेगा याद –अज्ञेय- पृ.10
7. अरे यायावर रहेगा याद –अज्ञेय- पृ.117

राही मासूम रजा के उपन्यास में बेरोजगारी और यथार्थ

डॉ. सीमा एस
एच.एस.एस.टी
सेंट राफेल्स एच एस, एषुपुन्ना

बेरोजगारी व्यक्ति की उस अवस्था को कहा जाता है जिसमें 1वह कार्य करने के लिए योग्य हो 2.उसकी कार्य करने की इच्छा3. वह कार्य की तलाश करता हो 4. किंतु उसे उपर्युक्त कार्य न मिलता हो | बेरोजगारी के प्रमुख कारण औद्योगिकरण ,जनसंख्या में वृद्धि ,आर्थिक मंदी ,गतिशीलता की कमी ,श्रमिकों तथा मालिकों के बीच संघर्ष ,उत्पादन की मौसमी प्रकृति, दूषित शिक्षा प्रणाली आदि माने गए हैं इसे दूर करने के उपायों के अंतर्गत व्यक्तिगत विनियोग को प्रोत्साहन ,पर्याप्त मांग के स्तर को बनाए रखना ,सार्वजनिक विनियोग न्यूनतम मजदूरी कानून ,काम करने का समय कम करना, मजदूरों की गतिशीलता ,जनसंख्या की वृद्धि में रोकथाम आदि प्रमुख है।

बेरोजगारी गरीबी से जुड़ी हुई है ।भारत देश में यह एक सर्वविवादित तथ्य है कि शहरों में कोई बेरोजगारी नहीं होती वहां तो राख बेच कर भी पेट भर लो यह केवल मिथक है ।आज शहरों में बेरोजगारी की स्थिति इतनी खराब है कि आए दिन रोजगार की तलाश में आने वाले लोग कम ना मिलने की वजह से थक्कर वापस अपने गांव पहुंचेंगे ।यह एक महत्वपूर्ण सामाजिक शास्त्रीय तथ्य है।

अतः आजकल नौकरी हासिल करने के लिए व्यक्ति को क्या-क्या करना पड़ता है राही मासूम रजा ने ,"आधा गांव "में ग्रामीण बेरोजगारी का अत्यंत मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है।

लेखक गाजीपुर के पुराने किले का वर्णन करते हुए कहते हैं कि यह संभव नहीं है कि अगर आप भी इस किले की पुरानी दीवार पर कोई आ बैठे अपनी आँखें बंद कर ले तो उस पार कर ले तो उस पार के गांव और मैदान और खेत घने जंगलों में बदल जाए और तपोवन में खुशियों की कुटियाँदिखाई देने लगें और वह देखे कि अयोध्या के दो राजकुमार कंधे से कमाने लटकाए तपोवन के पवित्र सन्नाटे की रक्षा कर रहे है।
लेकिन इन दीवारों पर कोई बैठता ही नहीं। क्योंकि जब इन पर बैठने की उम्र आती है तो गज भर की छातियों वाले बेरोजगारी के कोल्हू में जोत दिए जाते हैं कि वह अपने सपनों का तेल उस ज़हर को पीकर चुपचाप मर जाएँ।

आधुनिक युग में नौकरी के प्राधान्य के बारे में ध्यान देते हुए" टोपी शुक्ला "में ज़ैदी साहब के द्वारा लेखक कहते हैं कि सुना जाता है कि पहले ज़माने में नौजवान मुल्क जीतने ,लंबी और कठिन यात्राएं करने ,खानदान का नाम ऊंचा करने का ख्वाब देखा करते थे अब वे केवल नौकरी का ख्वाब देखते हैं ।नौकरी ही हमारे युग का सबसे बड़ा एडवेंचर है ।आज के फाहियान और वास्कोडिगामा और स्काट नौकरी की खोज में लगे रहते हैं आज के ईसा ,मोहम्मद और राम की मंजिल नौकरी है। इसके द्वारा यह लेखक यह बताना चाहते हैं कि आजकल नौकरी पाना ही प्रत्येक व्यक्ति का लक्ष्य है

एक उदाहरण द्वारा लेखक यह बताना चाहते हैं कि बेरोजगार व्यक्ति को इस समाज में कोई सम्मान प्राप्त नहीं होता है ।यथा नौकरी तीन अक्षर और 2 मात्राओं का यह शब्द आज के ख्वाबों की कसौटी है ।जो इस कसौटी पर खरा उतरे वही खरा है ।नौकरी ही से घर और परिवार की कोंपले टूटती है ।अनवर मुजतबा ज़ैदी की शादी नौकरी पर ही टिकी हुई थी ।शादी अपनी चचा ज़ाद बहन फातिमा पर आशिक थे ।बिल्कीस फातिमा भी उन पर दम देती थी। चाचा भी अपनी बेटी को पाकिस्तान भेजना नहीं चाहते थे ।हालांकि वहां से बड़े अच्छे अच्छे रिश्ते आ रहे थे। पर सुज्जनमियाँ को अगर नौकरी न मिली तो फिर मजबूरन उन्हें बिल्कीस की शादी पाकिस्तान में करनी पड़ेगी। पहले दिलों के बीच में बादशाह आया करते थे अब नौकरी आती है। हर चीज की तरह मोहब्बत भी खटिया हो गई है। अतः आजकल अच्छा रिश्ता मिलने के लिए लड़के को अच्छी नौकरी हासिल करना पड़ता है।

जिस नौकरी के लिए टोपी शुक्ला वर्षों छटपटाता रहा अपने आदमियों के सामने हाथ फैलाता रहा नौकरी जिस दिन हासिल होती है उसी दिन टोपी पहली बार अकेला और निरुपायभी होता है। इसेलिए जिंदगी की वांछित सुविधा नाव केरी उसे खरीदने ले वह बिक न जाए समझौता ना कर ले अतः वह मौत को अपने हिस्से में चुन लेता है टोपी के द्वारा लेखक यहां आधुनिक समाज की अत्यंत जटिल समस्या बेरोजगारी की ओर आकर्षित करते हैं कुछ युवक नौकरी न मिलने पर निराश होकर आत्महत्या भी करते हैं ।टोपी की हिंदी विभाग में लेक्चर बनने की आशा निराशा में बदलती है ।अंत में इन्हीं कारणों से वहआत्महत्या करता है। इस प्रकार लेखक बतलाते हैं कि बेरोजगारी की समस्या का समस्त जीवन पर इतना ज्यादा प्रभाव पड़ता है कि जीवन छिन्न-भिन्न हो जाता है ।इसके द्वारा लेखक यह स्पष्ट कर देते हैं कि जब तक यह जाति भिन्नता तथा सामाजिक व्यवस्था तथा राजनीतिक व्यवस्था की कमियां खत्म नहीं हो जाती तब तक बेरोजगारी की समस्या का हल नहीं हो सकता।

राही मासूम रजा ने अपने उपन्यास "सीन75" में मध्यवर्गीय क्लर्कों की दयनीय अवस्था का वास्तविक चित्रण प्रस्तुत किया है । 'अली मुल्लाह और उनके साथियों का वर्णन करते हुए वह कहते हैं कि अली मुल्लाह ही काम वाला था। बाकी तीनों दोस्तों को महीने के आखिर में फाइनेंस भी किया करता था ।तीनों दोस्तों के महीने का आखिर अलग-अलग शुरू हुआ करता था ।हरीश को महीने की 15 को तनख्वाह मिलती थी तो उसके महीने का

आखिर पहली दूसरी से लगता था ।कभी-कभी उसके महीने का आखिर कई महीनों तक फाइल जाता था क्योंकि छोटी और माँझ ली फिल्म कंपनियों में तनख्वाह का कोई भरोसा नहीं है ।वी. डी .के महीने का आखिर लगभग साल भर चलता था ।अली अजमद के महीने का आखिर आमतौर से महीने के आखिर ही में होता था बस एक अली मुल्लाह था जो साढ़े आठ सौ तनख्वाह पाता था ।सौ पचास ऊपर से कमा लेता था और ज्यादातर वी.डी.का बोझ उसी को उठाना पड़ता था। ' इसके द्वारा लेखक यह बताना चाहते हैं कि अगर लोगों को नौकरी मिलती है तो उनको तनख्वाह बहुत कम मिलती है ।अति आवश्यक खर्चे के पश्चात समाज में अपनी आदर पूर्वक स्थिति बनाए रखना उनके लिए अत्यंत कठिन हो जाता है ।सरकार को इस समस्या को हल करने के लिए कुछ ना कुछ कार्य जरूर ढूंढ निकालना चाहिए।

राही मासूम २ज़ा बेरोजगारी की समस्या का चित्रण करते हुए यह स्पष्ट कर देते हैं कि समस्या का समाधान उस समय तक संभव नहीं है जब तक भारतवासी इसके निवारण के लिए केवल सरकार का मुंह ताकते रहना नहीं छोड़ते तथा अथक परिश्रम करके उन्नति के मार्ग पर अग्रसर नहीं हो जाते ।बेरोजगारी की समस्या आधुनिक युग में भयंकर समस्या बन गई है लेखक ने अपने लेखन में इसके कारण उत्पन्न अन्य कई समस्याओं का चित्रण प्रस्तुत किया है इस समस्या का समाधान तभी संभव है जब पढ़े-लिखे लोग परिश्रम करने के लिए तैयार हो जाते हैं धर्म और जाति को देखकर काम देने वाला संस्कार को छोड़ना चाहिए नौकरी केवल योग्यता के अनुसार देना चाहिए। रिश्वत लेकर नौकरी देने वालों को दंड देना चाहिए ।

संदर्भ

। .आधा गाँव, डॉ. राही मासूम रज़ा

२.टोपी शुक्ला, डॉ. राही मासूम रज़ा

3. सीन 75, डॉ.राही मासूम रज़ा।

मेहरुन्निसा परवेज़ के उपन्यासों में चित्रित सांस्कृतिक पक्ष

डॉ. प्रसीजा एन.एम्
असिस्टेंट प्रोफेसर
स्कूल ऑफ़ डिस्टेंस एजुकेशन, कालीकट यूनिवर्सिटी

संस्कृति सामाजिक प्रथा का पर्याय ही है। मनुष्य समाज में रहकर जो कुछ करता है, सोचता है यह सब संस्कृति से जुडा होता है। विश्व की संस्कृति में भारतीय संस्कृति अपना अलग स्थान रखती है। संस्कार, सामाजिक रूढ़ियाँ, रीति-रिवाज़, त्यौहार, मेला, पर्व, वेश-भूषा, विवाह विषयक रीतियाँ आदि सब संस्कृति के अंतर्गत आते हैं। मानव जीवन में एक अभिन्न अंग के रूप में संस्कृति को माना गया है। ग्रामीण समाज में होनेवाला मेला सांस्कृतिक भावना का प्रतीक है। आदिवासी लोग मेले को एक विशिष्ट त्यौहार के रूप में मानते हैं, इस मेले में लोग अपने-अपने सामान बेचते हैं और खरीदते हैं।

भारतीय ग्रामीण संस्कृति का एक अंग है लोक कथाएँ। लोक मानस में प्रचलित कथाएँ मानव के पारस्परिक विश्वास का प्रतिनिधित्व करता है। लोक कथाएँ विभिन्न तरह की होती है। जैसे राजा-रानी की कथाएँ, पशु-पक्षी की कथाएँ आदि। मेहरुन्निसाजी ने अपने उपन्यासों में इस प्रकार की लोक कथाओं का उल्लेख यंत्र-तंत्र किया है।

"उसे अचानक याद आया उस दिन गाँव की एक औरत उसे बैठाकर एक कहानी सुना रही थी कि बहुत पुराने ज़माने की बात है, गल गल एक अच्छे परिवार की लड़की थी। पर जब वह ब्याह कर ससुराल गयी तो उसने दरवाज़ा खोला। दरवाज़े के पार दुःख ही दुःख थे और सारी उम्र वह दुःख ही सहती रही-सास की, ननद की और पति की। दुखों ने उसे एक दिन घोट-घोटकर मार दिया। और जब वह अगले जन्म में गल-गल चिड़िया बनकर आई तो उसकी भड़की हुई आत्मा सूने सन्नाटे पर बैठी चीखती है,'मैं प्यासी हूँ.... मैं प्यासी हूँ...'"।1

ये लोक कथाएँ भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग है। ये ग्रामीण संस्कृति की पहचान है।

शिक्षा और आधुनिकीकरण के द्वारा ग्रामांचल की सस्कृति में बदलाव आ रहा है। आदिवासी लोग शहरी संस्कृति को अपना रहे हैं। शहर के लोगों की तरह वेश-भूषा पहनते हैं। उनके रहन-सहन में परिवर्त्तन आ रहा है। इस प्रवृत्ति का उल्लेख उपन्यासों में मेहरुन्निसा जी ने किया है।

'वे आदिवासी लडकियाँ जो दो हाथ की जाँघों तक लम्बी धोती और जंगली फूलों का श्रृंगार कर ही अपने आपको पूर्ण मान लेती थी, आजकल नायलोन की साडी, ब्रेसरीज, ऊँचे ब्लाउज, अफगान स्नो और रेमी पाउडर से पोते गये गाल और बालों में खोंसी गयी ढ़ेर सारी क्लिपों लगाकर जब निकलती है तो अजीब नमूना लगने लगती हैं। पतला नायलॉन का ब्लाउज, जिसमें अस्तर तक नहीं डाला गया है, उसमें से पूरा-पूरा शरीर दिखता है, ब्रेसरीज में बाँधा शरीर पुरुष-दृष्टी को अपनी ओर ज़रूर आकर्षित करता है पर वह और दूसरों की नज़र में अजीब हास्यास्पद लगने लगती हैं'2

यहाँ हम देख सकते है कि आदिवासी लोग भी शहरी सभ्यता को अपना रहे हैं। वे लोग भी शहर के लोगों के तरह आधुनिक बनना चाहते हैं। वेश-भूषा में उनका अनुकरण करते हैं।

अंचल की लोक-संस्कृति का पहचान है वहाँ की खेती-बाड़ी। आदिवासी लोग कोई भी मज़दूरी काम नहीं करते। वे लोग खेती करके अपना जीवन बिताते हैं। खेती करना और मुर्गी पालना आदिवासी लोगों की संस्कृति की एक प्रथा है। 'अकेला पलाश' उपन्यास में इसका चित्रण किया गया है। इसका एक उदाहरण है-'ज्वर के खेतों के बीच-बीच में मकान बने हुए थे, जो मिट्टी के थे पर उन्हें इतने सलीके से लिपा-पोता गया था, और साफ़-सुथरा रखा गया था, कि देखते ही वहाँ बैठने की इच्छा होने लगी थी। इतना सुन्दर और स्वच्छ गाँव उसने पहले नहीं देखा था। वहीँ पास में कचरे के ढ़ेर में मुर्गियाँ अपनी लम्बी-चौड़ी जमात के साथ व्यस्त थीं दाना ढूँढने में। घरों की छतों की छाया के नीचे सुअरती अपने नए बच्चों को लेकर एक और बैठी बड़े आराम से सुस्ता रही थी'।3

उपरोक्त प्रसंग से यह मालूम पड़ता है कि आदिवासी लोगों का निवास स्थान किस तरह निर्माण करते हैं। वे सुन्दर और स्वच्छ प्राकृतिक वातावरण में रहते हैं। घर के पास खेत बाड़ी है। उनकी प्रमुख पेशा खेती-बाड़ी हैं। उसके साथ-साथ घरेलू जानवरों को भी पालते हैं। उससे भी पैसा कमाते है। इस प्रकार आदिवासी लोग प्रकृति और अन्य जीवजंतुओं के साथ सहजीवन करते हैं।

इसके साथ-साथ वृक्षों का भी पालन करते हैं। वृक्ष और पशु को अपने सौभाग्य और संपदा मानते हैं। भारतीय लोक संस्कृति में ये दोनों प्रमुख स्थान रख लेनेवाले चीज़ है।

अंचलवासियों के लिए सुख और दुःख एक जैसा है।इनके सुख, दुःख आपस में मिले-जुले रहते है। वे लोग सुखों का सामना किस प्रकार करते हैं उसी प्रकार दुखों की सामना भी करते हैं। दोनों स्थितियों में शराब पीते हैं। जो दुःख में है, उसके साथ पूरा-गाँव साथ देता है। इससे उन लोगों की सहजीवन के बारे में जानकारी मिलती है। इसका चित्रण लेखिका ने 'अकेला पलाश' उपन्यास में किया है।-"जीप के पास खड़ी थी देखा शिक्षिका आ रही है। उसने बताया कि आज गाँव में दुःख हो गया है, गाँव के पटेल का बाप मर गया है, इसलिए स्कूल की छुट्टी कर दी गयी है, सुबह गाँव के लोगों ने आज खूब शराब पी थी।"4

अंचलवासियों की संस्कृति के एक अंग है मेला। लोक-संस्कृति की चित्रण में स्थानीय मेलों का स्थान महत्वपूर्ण होता है। मेला अंचलवासियों की संस्कृति का पहचान होती है। इस मेले में अपने-अपने प्रान्तों के उत्पादनों का प्रदर्शन करते हैं। लोगों की मुलाक़ात माने एक प्रांत के दूसरे प्रांत के लोगों से होता है, भाईचारा बढ़ाने का अवसर मिलता है। ऐसे ही एक मेले का चित्रण लेखिका ने 'अकेला पलाश' उपन्यास में किया है- "इस मेले की शोभा ख़ास रही थी कि दूर-दूर के गाँवों से देवी-देवता आये थे, हरेक देवी थोड़ी-थोड़ी दूर पर अपना अलग शासन जमाये थी। उनके झंडे जो ऊँचे-ऊँचे लाठ में लगे थे, बैरकलाठ से सूचना दे रहे थे कि यहाँ देवी विराजमान है। नगाड़े-शहनाइयाँ बज रही थी। देवी जिन लोगों को आ रही थी वह बाल छितराये, कान में कनेर के फूल खोसें झूम रहे थे जिन्हें कई लोग संभाले थे। अजब दृश्य था। बाँझ औरतें बच्चे केलिए माथा टेक रही थीं, युवतियाँ मन चाहा पति,

प्रेमी पाने की लालसा में पुजारी को चढ़ावे में पैसा दे रही थी। दुखी मनवाली युवतियाँ देवी को घूरती शिकायती आँखों से उलाहना दे रही थीं। पुजारी फूल और चावल दे रहा था"।5

उपरोक्त प्रसंग में मेले का सुन्दर चित्रण किया गया है। साथ ही अंचल वासियों के अंधविश्वासों का भी झलक मिलता है। इस में लेखिका ने आदिवासियों में प्रचलित आध्यात्मिक मान्यताओं का परिचय दिया। आदुनिक समाज के अनुसार उन मान्यताओं को अंधविश्वास कह सकते हैं। परन्तु लोक-संस्कृति की दृष्टी से अपनी अपनी प्रकृति के अनुसार देवी-देवताओं की आराधना करते हैं। मेले में सब लोग इकट्टे होते हैं। उस दृष्टी से पैसे कमाने वाले होश्यारी से आदिवासियों की निष्कपटता को अपने अनुकूल बना देते हैं। इसी का परिणाम है देवी किसी व्यक्ति पर आना आदि। इसका जीवंत चित्रण यहाँ किया गया है। मेले अंचलवासियों के सामाजिक-सांस्कृतिक हलचल का परिचायक हैं।

संदर्भ:-

1. अकेला पलाश- मेहरुन्निसा परवेज़ – पृ.53
2. कोरजा- मेहरुन्निसा परवेज़- पृ. 101
3. अकेला पलाश- मेहरुन्निसा परवेज़ – पृ.41
4. अकेला पलाश- मेहरुन्निसा परवेज़ – पृ.184
5. अकेला पलाश- मेहरुन्निसा परवेज़ – पृ.229

नवें दशक की कहानियों में मानवीय संबंध (महिला लेखन का संदर्भ) : एक सामान्य परिचय

डॉ गायत्री के
गेस्ट लेक्चरर
मारतोमा कॉलेज फॉर वीमेन, पेरुंबावूर

व्यक्ति, समाज का महत्वपूर्ण अंग है । व्यक्ति और उनके संबंधों से ही समाज बनता है । प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में मानवीय संबंधों का अपना महत्व होता है । व्यक्ति, जन्म से ही परिवार से जुडा रहता है । इसलिए परिवार के अन्य सदस्यों के साथ उसका जो संबंध है वह प्रायः निश्चित होता है । जैसे खून के रिश्ते- पिता-पुत्र का संबंध, माता-पुत्री का संबंध, भाई-बहन का संबंध और इन सब से बढकर पति-पत्नी का संबंध ।

साहित्य मनुष्य की सृष्टि है, अतः मानवीय संबंधों से उसका सरोकार स्वाभाविक है । मनुष्य से जुडी ज़मीनी सच्चाइयों को साहित्य के साथ जोड़ने से लेखक सिर्फ अपनी लड़ाई ही नहीं लड़ता बल्कि समाज को पिछड़ेपन और अभाव की जंजीरों में जकड़कर रखनेवाली ताकतों से पराई मुक्ति के लिए भी लड़ता है । उससे जन्मी ताकतों से ही उससे रचे हुए साहित्य ज़िन्दा रह सकता है । साहित्यकार खुद की ही नहीं बल्कि अपने समय और समाज की ज़िन्दगी भी जीता है । कहानीकार मानवीय संबंधों के चित्रण करके मानव में मानवीय मूल्यों को जगाने का परिश्रम करता है । साहित्यकार अपने चारों तरफ की ज़िन्दगी को देखते -परखते है और अपनी रचनाओं में उसे रेखांकित करते है । ज़िन्दगी की बारीक जाँच पड़ताल से उसकी समस्याओं की ओर सतर्क बनने के लिए पाठक भी बाध्य हो जाते है ।

आज के साहित्यकार यह अच्छी तरह जानते है कि आधुनिकता के मोह में, जीवन के आदर्श, धर्म और नैतिक मान्यताएँ बिगडती जा रही है । साहित्यकार साहित्य और समाज के प्रति प्रतिबद्ध हैं । यही प्रतिबद्धता उनकी कहानियों में प्रतिफलित होती है ।

युग परिवर्तन के साथ-साथ मानवीय संबंधों में भी बदलाव हो रहा है । विभिन्न पारिवारिक संबंधों में टकराहट की स्थिति उत्पन्न हुई और उससे संबंधों में आये अलगाव की स्थिति अधिक नाज़ुक हो गयी । किसी भी रचना का महत्व उसमें अभिव्यक्त मानवीय संबंध और समस्याओं की गहराई पर आधारित है । नए ज़माने में व्यक्ति अकेला और आत्मकेंद्रित बन गया है । वह अपनी जड़ों से विच्छिन्न होकर भटकता रहता है । सब कहीं उन्हें मूल्यहीनता नज़र आती है । औद्योगीकरण के कारण घरेलू संबंध शिथिल हो गया है । परिवार विघटित होकर चूर-चूर हो गया है । मानवीय संबंधों में आये इस बदलाव का चित्रण साहित्यिक रचनाओं में हम देख सकते हैं ।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । संबंधों के बिना रहना उसके लिए मुश्किल साबित हो सकता है । संबंधों को निभाना उसका फर्ज है । मानवीय संबंधों को भारत में लोग जितना सम्मानपूर्वक दृष्टि से मानते हैं, उतना विश्व के किसी भी देश में नहीं मानते होंगे । साहित्य, जीवन से अलग नहीं है । जीवन का विशेष अंश ही साहित्य का रूप धारण करके हमारे सामने आता है । साहित्य में लेखक जीवन की विसंगतियों और समस्याओं को मानवीय संबंधों के बदलते स्वरूप के साथ चित्रित करते हैं ।

संबंधों में आये बदलाव के बारे में डॉ.प्रेमलता जैन ने कहा है –"आधुनिक काल में संबंधों में जितना बिखराव आया है, पहले कभी नहीं आया था । नगर महानगर की जीवन की जटिलता, व्यस्थता ने व्यक्ति को कहीं अधिक एकात्मप्रिय बना दिया है । वह समूह में रहने का आदि नहीं रहा । नाते-रिश्तेदार गली-पड़ोसवाले ही नहीं उसे खून के रिश्ते और संबंध भी अनचाहे प्रतीत होते है । यह बदलाव मूलतः आर्थिक दबावों के कारण हुआ है ।"[1] पहले एक आदमी की कमाई से घर चला सकता था, अब स्थिति बदल गयी है । घर के सभी लोग कमाने पर भी घर ठीक तरह से चलाना नामुमकिन-सा मालूम पड़ता है । आवश्यकताओं की वृद्धि, बढ़ती महँगाई- इन्हीं बातों ने संबंधों को प्रभावित किया है । पीढ़ियों के बीच, बढ़ते आत्मसंघर्षों के कारण संबंधों के बीच दरारें आ जाते हैं । शहरी जीवन, बढ़ती आबादी, तनाव, घुटन, अजनबीपन- इन सभी बातों से रिश्तों में अलगाव पैदा होता है । संयुक्त परिवार का टूटन और एकल परिवार की स्थापना दोनों आधुनिकताबोध का ही देन है ।

पीढ़ियों के अंतराल बढ़ने से पारिवारिक रिश्तों में भी काफी परिवर्तन आने लगे । एक दूसरे को समझने में मुश्किल पैदा होने लगी । बाप-बेटे तथा माँ-बेटी के रिश्तों में भी दरार पैदा हो गयी । वैयक्तिकता को अधिक महत्व देने के कारण सामाजिक संबंधों में भी आपसी स्पर्धा बढ़ने लगे । संबंधों को बचाने का एक उपाय आर्थिक सामर्थ्य ही था । उस हद तक मनुष्य स्वार्थी बन चुके थे । अस्सी के बाद संबंधों को अर्थ ने जितना प्रभावित किया है उतना पहले कभी न था ।

आर्थिक समस्याओं ने संबंधों पर ज़रूर प्रभाव डाला है, मगर मात्र अर्थ ही उसके कारण नहीं थे । फिर भी आर्थिक समस्याएँ, संबंधों के माप-तोल में भारी पड़ती हैं । मध्यवर्गीय परिवार इसका शिकार बन गया । मूल्य ही मनुष्य के मन में मानवीयता का नींव डालता है । मूल्यों के बारे में रमेश देशमुख जी ने कहा है – "जीवन मूल्य मानव के सह अस्थित्व के लिए ज़रूरी हैं । वास्तव में वे व्यवस्था की नींव है । यदि मनुष्य जीवन मूल्यों को न अपनाता तो आज भी उसकी स्थिति आदि मानव की-सी होती, जो एक दूसरे से छीनकर खाता था और जिसके लिए स्वार्थ ही सर्वोपरि वस्तु थी । मूल्य मानव समाज को एक उदात्तता प्रदान करते हैं । मनुष्य केवल इसीलिए मनुष्य है क्योंकि वह मूल्यों की सत्ता को स्वीकार करता है ।"[2] समाज मूल्यों के नींव पर ही खड़ा है । मूल्यों का शोषण होने से समाज शिथिल हो जाता है । इसलिए बच्चों को मूल्यों के बारे में अवगत कराना ज़रूरी है ।

भारतीय परिवेश में मानवीय भावों का महत्व कम हो रहा है और उसकी जगह बाज़ार का महत्व बढ़ रहा है । घर की जगह बाज़ार, धर्म के स्थान पर अधर्म, नैतिकता के स्थान पर अनैतिकता, यह चक्र इतनी तीव्र गति से चल रहा है कि पुरातन मानवीय, आध्यात्मिक, संवेदना-आदर्शों के अनुसार चलने वाला बृहतर सामाजिक घटक हठात ठिठक गया, हतप्रभ, अवाक् और हैरत में कुछ न सूझ पाने वाली निर्वात स्थिति में घिरा है । यह प्रक्रिया यहाँ बरसों से चल रही है ।

मानवीय संबंधों के विषय में विभिन्न सन्दर्भों में अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि बदलते परिवेश और परिस्थितियों में मानवीय संबंधों के माधुर्य को कुंठा, तनाव और त्रासद स्थितियों ने बदल दिया है । जिसका परिणाम यह हुआ कि मानवीय सम्बन्ध आत्मीय न होकर केवल औपचारिक बन जाता है ।

मानवीय संबंधों के महत्व को पहचानने के लिए हर किसी के मन में मूल्यों का होना ज़रूरी है । परिवार ही ऐसा पहला स्थान है जहाँ से हम मूल्यों का अध्ययन शुरू करते हैं । यह बात जिंदगी भर ज़ारी रहती है । मूल्य विघटन रिश्तों में बदलाव लानेवाला और एक कारण बनता है । मानवीय अन्तः क्रियाओं से ही सामाजिक संबंध पैदा होते है । यही सामाजिक घटनाओं के स्वरुप, प्रकृति एवं प्रकार का निर्धारण करता है । संबंधों को बरक़रार रखने के लिए दूसरों की भावनाओं को मान्यता देने की ज़रूरत है । संबंध एक तरह की लेन-देन है । कभी-कभी हम दूसरों से कुछ सीखते है और दूसरों को हम से भी कुछ सीखने का अवसर मिलता है । कभी-कभी दूसरों से समझौता भी करना पड़ता है तो दूसरी ओर दूसरों की भावनाओं को मान्यता देने के लिए हमारी भावनाओं के साथ समझौता करना पड़ता है, नहीं तो रिश्ता टूट जाता है । संबंधों पर सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिस्थितियों के प्रभाव पड़ते हैं । इसी कारण से मानवीय संबंधों पर विभिन्न प्रकार का बदलाव भी आया है । समाज की उन्नति और देश की उन्नति के लिए मानवीय संबंधों का होना ज़रूरी है ।

भारतीय सामाजिक परिवेश में आये परिवर्तन के फलस्वरूप नारी अपने स्वत्व के प्रति सचेत हुई । अंग्रेजी शिक्षा, ईसाई मिशनरियों का प्रभाव, सामाजिक संस्थाओं की स्थापना, वैज्ञानिक प्रगति आदि भी सामाजिक परिवर्तन के कारण है । शिक्षित नारियों की संख्या में हुई बढ़ोत्तरी भी इसका अन्य कारण बना । सामाजिक परिवर्तन के लिए समाज सुधारवादी संस्थाओं और आन्दोलनों का योगदान भी गण्य है । शिक्षित कामकाजी नारी, पुरुष पर निर्भर रहना ज़रूरी नहीं समझती । अतृप्त कामवासना, संबंधों में आनेवाले बिखराव आदि विवाह पूर्व और विवाहेतर संबंध टूटने का कारण बन गया । मूल्यों का ह्रास होना भी इसका एक कारण है ।

नवें दशक के पुर्व की कहानियों में संयुक्त परिवार का चित्रण खूब मिलते हैं । संयुक्त परिवार की अवधारणा एकल परिवार से अधिक प्रभावशाली लगता है । संयुक्त परिवार में संबंधों को अधिक महत्व देते है । संयुक्त परिवार के सदस्य आपस में मिलजुलकर रहने में ही ख़ुशी का अनुभव करते हैं। वे लोग अपनी जरूरतों को कम आमदनी में ही पूरा कर सकते हैं। संयुक्त परिवारों में एक दूसरे का ध्यान रखता है और आपसी संबंधों में आत्मीयता होती है।

नवें दशक से पूर्व की लेखिकाओं की कहानियों में मानवीय संबंधों का चित्रण बहुत ही रोचक ढंग से किया गया है । उस समय की कहानियों में संबंधों का परंपरागत रूप ही अधिक मिलता है । फिर भी पीढ़ियों का अंतराल और नारी जीवन के विभिन्न पक्षों के चित्रण भी मिलते है । घर की चार दीवारी से बाहर निकली नारी की ऊर्जा और उत्साह कहानियों में स्पष्ट झलकती है । कहानियों में संबधों के सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक परिवेशों का प्रभाव स्पष्ट रूप से देख सकते है । प्रस्तुत कालखंड की कहानियों में स्त्री जीवन की विडंबनाओं पर हाहाकार एवं भावात्मक उद्गार ही अधिक है । लेखिकाओं ने नारी समस्याओं को अपनी कहानियों

में प्रमुख स्थान दिया है फिर भी सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक विषयों पर भी अपनी कलम चलायी ।

समाज में रहने के लिए मनुष्य को सामाजिक नियमों का पालन करना पड़ता है । पूर्व निर्धारित उसूलों के अनुसार जीवन यापन करना पड़ता है । परिवार एक सामाजिक इकाई है । व्यक्ति का परिवार से जुड़ा होना समाज सापेक्ष्य है । नवें दशक में लेखिकाओं का ध्यान परिवार की ओर विशेष रूप से पड़ा है । नवें दशक की सामाजिक स्थिति ऐसी थी कि उस समय युगल परिवारों की अपेक्षा एकल परिवारों की संख्या अधिक थी । उस समय पाश्चात्य विचारधारा का प्रभाव केवल पारिवारिक ढाँचे पर ही नहीं बल्कि पारिवारिक संबंधों में भी देखा जा सकता है ।

नवें दशक की हिंदी कहानी अपने परिवेश के प्रति सतर्क है । इन कहानियों में ज़्यादतर भोगे हुए यथार्थ का चित्रण है । अपने चारों ओर की घटनाओं को वह अपनी रचनाओं द्वारा जीवंत बना देते हैं । कथाकार अपने आप को समाज से जुड़ाने की कोशिश करता है । इसी कारण से उनकी कहानियाँ सामाजिक समस्याओं से जुडी रहती है । घर का अशांत वातावरण, पारिवारिक अव्यवस्था, नौकरी से संबंधित समस्याएँ आदि बच्चों की जिन्दगी को बुरी तरह से प्रभावित करते है । समाज में जो परिवर्तन हो रहा है उसका प्रभाव तत्कालीन साहित्य में दिखाई देता है । नवें दशक की कहानियों में सामाजिक और वैयक्तिक तनाव की अभिव्यक्ति हुई है । इस काल की कहानियों में परिवार के बदलते स्वरुप का यथार्थ चित्रण है ।

संदर्भ :-

1. डॉ.प्रेमलता जैन : समाजवादी यथार्थवाद और हिंदी कथा साहित्य, पृ.सं:26
2. रमेश देशमुख : आठवें दशक की हिंदी कहानी में जीवन मूल्य, पृ.सं: 241

राजेंद्र यादव के 'सारा आकाश' उपन्यास में चित्रित मध्यवर्गीय आर्थिक समस्या

अश्वति ए के
शोध छात्रा
महाराजास कॉलेज , एरणाकुलम

किसी भी समाज का संपूर्ण विकास उसके आर्थिक ढांचे पर ही निर्भर है। परिवार ,समाज ,धर्म ,साहित्य ,कला का विकास अर्थ पर ही आधारित है। समाज में उच्चवर्ग के सामने तो भौतिक स्तर संबंधी कोई समस्याएं नहीं है। पूंजी के आधार पर वह सारी समस्याओं का हल ढूंढ लेता है। निम्न वर्ग में तो महत्वकांक्षा की लहर ही तरंगायित नहीं होती। भूख की समस्या उसके लिए सर्वोपरी है जिसकी शांति के लिए ही वह चिन्ताग्रस्त रहता है । सुबह भोजन मिले जाने पर वह शाम के भोजन की व्यवस्था के लिए चिन्तातुर हो जाता है। मध्यम वर्ग को सबसे ज्यादा संघर्ष का सामना करना पड़ता है। महत्वकांक्षा होने के कारण यह वर्ग न तो इच्चाओं की पूर्ति में सक्षम हो पाता है और ना हीं इच्चाओं का दमन कर सकता है। परिणामतः सबसे अधिक घुटन एवं तनाव अथवा निराशा इसी वर्ग में फैली दिखाई देती है। अर्थ अभाव के कारण वह असंतुष्टि से आक्रांत रहता है और विकसित नहीं हो पाता। छोटे-छोटे सुखों की परिपूर्ती न होने से वह असंतुलित होकर निष्क्रिय और आत्मलीन हो गया है। दूषित शिक्षा व्यवस्था के कारण बेकारी से उत्पन्न समस्याओं भी इसी वर्ग को सबसे ज्यादा करना पड़ता है।

" सारा आकाश " का समर नौकरी के अभाव में आत्मनिर्भर होने के लिए संघर्ष करता रहा। धन अभाव के कारण उसके विकास का मार्ग अवरुद्ध हो गया । अपने घर की स्थिति से परेशान समर पचहतर रुपये की नौकरी की सूचना पाकर झूम उठा । उसका सारा तनाव कम हो गया है। पत्नी के लिए साड़ी खरीदने अदम्य आकांक्षा को वह नियंत्रित नहीं कर पाया। "एक धोती का दाम जब बारह रुपये सुना तो सारा उत्साह मर गया" ।अपनी इच्छा का दमन करता हुआ । समर केवल एक ही धोती खरीदने में समर्थ था।रात-दिन घर में पैसे को लेखर बातें चलती रहती। पिता और पुत्र के संबंधों में भी आर्थिक अभाव के कारण मनमुटाव उत्पन्न हो जाता है। नौकरी छूठने पर समर की जीवन असरुक्षित हो जाता है। नौकरी छूठने पर समर की जीवन असुरक्षित हो जाता है और समर के पिता उसे अपने घर से चले जाने का आदेश देते हैं। "निकल जा मेरे घर से निकल जा, हट जा दूर ,मेरी आँखों से ..... डूब मर कहीं कुएँ तालाब में ..... कमबख्त ..... कमीना हम तो शुरू से ही रंग -ढंग देख रहे थे ,अब पढ़ने लगे हैं न....."। पिता के इन शब्दों ने समर को जीवन की इस कटु वास्तविकता से परिचित कराया जो मुल रुप में मात्र अर्थ पर आधारित है । यहाँ पहली बार समर यह प्रतीत करता है कि नौकरी , कमाई या पैसा ही संबंधों की बुनियाद है । आज माता पिता के पुत्र के साथ संबंध ममत्व पर नहीं मात्र पैसे पर आधारित हो गये हैं ,समर जब तक नौकरी कर रहा था तब तक तो माता पिता का व्यवहार उसके प्रति मधुर बना रहा किंतु जैसे ही नौकरी छूट जाने का आभास समर के माता -पिता को हुआ कि उन्होंने उसे अपने प्रेम यहाँ तक कि घर से भी वंचित कर दिया । नौकरी लगाने के बाद समर के सारे स्वप्न धूली –धूसरित हो गये। शीघ्र ही वह नौकरी से मुक्त हो गया । मध्यवर्गीय समाज के व्यक्ति के लिए कम रुपयों में परिवार के व्यवस्था के प्रबंध के कारण

चिड़चिड़ापन और असंतोष उत्पन्न हो जाता है। परिणामतः विवाह के अवसरों पर वधु पक्ष की ओर से दहेज मिलने की उत्कट इच्छा मध्यवर्ग के लोगों में उत्पन्न हो जाती है । वे ज्यादा वस्तुएँ एवं धन प्राप्त करने की लालसा पर नियंत्रण नहीं कर पाते ।

समर अपने जीवन में आत्मनिर्भर बनने के लिए कष्ट उठाने को भी तैयार था। वह सोचता कि पत्नी को अच्छे कपड़े लेकर दे । मित्रों को घर पर आमंत्रित करे । उसे भी सिनेमा दिखाने ले जाये किंतु अर्थभाव से त्रस्त समर इच्छाओं को पूर्ण करने में समर्थ नहीं था। वह ठण्ड में भी पत्नी को सख्त चेहरा लिए काम करते देखता तो उसका रोम रोम कांपने लगता वह सोचता "जनवरी – फरवरी की भीषण ठण्ड भी इसी प्रकार की धोतियों में निकाली गयी है "।समर प्रभा को पर्याप्त सुख नहीं दे सका वह विचारों में डूब जाता है वो मन हि मन कहते हैं –"न जाने कितने आमोद प्रमोद आशा आकांक्षाओं में पली यह लड़की कैसे गाजे – बाजे के साथ हमारे यहाँ लाई गई थी और आज .....?।

सारा आकाश में परिवार में प्रभा की उपेक्षा और बड़ी बहु के प्रति सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार का मूल कारण आर्थिक ही है। समर का बड़ा भाई परिवार के उत्तरदायित्व का निर्वाह कर सकता है । कमाऊ हैं , बेरोज़गार समर में उतनी सामर्थ्य नहीं । विवाह पूर्व प्रभा ने अगणित स्वप्न संजोये थे जिन्हें विवाहोपरांत अपनी सखी रमा को लिखे पत्र में अभिव्यक्त करती है ।उसकी महत्वकांक्षाएँ अपूर्ण ही रह गयीं। वो लिखती है कि "अब मैं अनुभव करती हूँ कि हमारा चाहना कितना झूठा होता है हम लोग न जाने क्या चाहा करते हैं । कोई सीमा होती है , हमारे चाहने की स्कूल के दिनों की वह कल्पना वे भावुकता भरे सपने....."। मानवीय इच्छाओं की पूर्ती का एकमेव साधन आर्थिक संपन्नता का होना है । जहाँ अर्थ की समस्या भीषण रूप में रूप में विध्यमान होने के कारण मानवीय अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ती नहीं कर पाती। वहाँ मानवीय महत्वकांक्षाओं की पूर्ती का तो प्रश्न ही नहीं उठाता । समर के सामने जीवन -निर्वाह का प्रश्न ही ज्वलंत रूप में विध्यमान है ।अतः धन अभाव के कारण वह निरंतर मानवीय तनाव से त्रस्त रहता है।

मध्यवर्ग की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं होती है, विशेषतः निम्न मध्यवर्ग की आर्थिक स्थिति अत्यंत शोचनीय होती है । मध्यवर्गिय समाज में घर में कमाने वाले कम और खानेवाले ज्यादा हों तो उस परिवार के सभी सदस्य घुटन भरी जिंदगी जीते हैं । ऐसे परिवार की लड़की का विवाह करा देना परिवारवालों केलिए बड़ा कठिन हो जाता हैं ।फिर भी इस वर्ग के लोग ऋण लेकर या घर की चीज़ें बेचकर धन इकट्ठा करते हैं और लड़की का विवाह करा देता हैं। "सारा आकाश" उपन्यास में समर के परिवार की आर्थिक स्थिति अत्यंत चिंता – जनक है । परिवार में अकेला धीरज कमाने वाला है और खाने वाले हैं नौ । ऐसे में जब मुन्नी का विवाह तय हुआ तब,"घर की कुछ चीज़ें बेचकर , कुछ भाई साहब की शादी में मिली चीज़ें मिलाकर" धन इकट्ठा किया गया और विवाह कराया गया ।

मध्यवर्गीय युवक अर्थभाव के कारण अपनी शिक्षा ढंग से पूरी नहीं कर पाता। "सारा आकाश" उपन्यास के समर को इंटर की परीक्षा की फीस के पच्चीस रुप्ये घरवालों से माँगने में डर लगता है , क्योंकि घर की आर्थिक स्थिति अत्यंत विकट है। डरते – डरते वह पिताजी से पच्चीस रुपया माँगता है लेकिन पच्चीस शब्द का उच्चारण

वह इस तरह करता है कि मानो उसके "जीवन की पच्चीस साँसों ही बाकी रह गई हो "।पच्चीस रुपये का नाम सुनते ही पिताजी से समर को सुनना पड़ता है-"ये मेरी पेंशन के पच्चीस रुपये आये हैं , सो इन्हें तो ले लो। हमारा क्या है – हमें तो हड्डे पेलने है ज़िदगी भर ,सो तुम्हारे लिए करेंगे । करम में लिखा के लाए थे कि लड़के धींगर – ऊँट हो जाएँ तब तक खिलाना , सो खिलाएँगे । कल – परसों अमर रो रहा था कि उसकी फीस भी भरनी है । अभी दीवाली गई है , खर्चे के मारे ढेर हुआ जा रहा है। कमाने वाला वही एक धीरज है , सो उसे तुम चूस के खा जाओगे , साफ दीख ही रहा है"।

निम्न मध्यवर्ग में अर्थभाव के कारण नई संतान की आगमन के संकेत खुशी से ज्यादा चिंता के कारण बन जाते हैं।"सारा आकाश" उपन्यास के समर की भाभी गर्भवती थी – घर में पहला पोता होगा , इससे खुश तो अम्मा और बाबूजी सभी थे , लेकिन उसके खर्चे की जब कल्पना करते तो यही कहते ,"भगवान जाने क्या होगा?" क्योंकी उस हालत में दुनिया भर के खर्चे होगे , एक बड़ी सी दावत देनी पडेगी इसी चिंता में दिन कट रहे थे । जब समर की भाभी की लड़की हुई तब अम्मा के कथन से ध्वनित होता है कि मध्यवर्ग में लड़की का जन्म होना परिवार वालों केलिए दुखदायी होता है। निम्न मध्यवर्गीय परिवार की हालत तब और अधिक दयनीय हो जाती है, जब कमानेवाला व्यक्ति सेवा निवृत्त हो जाता है।"सारा आकाश" उपन्यास के समर के पिता जब सेवा निवृत्त हो गए तो अनेक मुसीबतें खड़ी हो गई। बच्चों की पढ़ाई,चीनी वाले, गेहूँ वाले, सभी को पैसे देने में घर में प्रतिदिन संघर्ष होने लगा। पिताजी चाहते हैं कि समर कुछ कमा कर लाए , लेकिन समर इंटर का इम्तिहान देना चाहता है । समर जानता है कि बी. ए. वाले तक नौकरी के लिए भटकते हैं और उसके इंटर को कौन पूछेगा ? अतः वह एम. ए करना चाहता है। लेकिन परीक्षा फीस केलिए जब वह पिताजि से पच्चीस रुपये माँगता है तो पिताजी उसके सामने आर्थिक कठिनाईयाँ बताते हैं ।

मनोरंजन केलिए मानवीय जीवन सदा लालायित रहता है। व्यक्ति चाहे उच्च वर्ग का हो , मध्यवर्ग का हो या निम्न वर्ग का, वह दिल बहलाव अपनी – अपनी हैसियत से करा लेता है। मनोरंजन के कई साधनों में "फिल्म" सबसे प्रधान साधन बन गया है। सारा आकाश में समर अपने दोस्त दिवाकर के साथ ही सिनेमा देखने जाता है, क्योंकि दिवाकर के साथ हो जाने पर उसे अपनी जेब से टिकट खरीदने की नौबत नहीं आती। मध्यवर्ग की आय का स्त्रोत मुख्यतः नौकरी है। आय के स्त्रोत सीमित होने के कारण इस वर्ग की आर्थिक स्थिति बड़ी शोचनीय होती है। बेरोज़गारी का सन्दर्भ राजेंद्र यादव के "सारा आकाश" उपन्यास में दिखाई पड़ता है। समर मैट्रिक के सर्टिफिकेट को लेकर नौकरी की तलाश में एम्पलॉयमेंट –एक्सचेंज की ऊँची बिल्डिंग की ओर चल दिया,तो दूर से ही उसे हज़ारों आदमियों की भीड़ और मेले जैसा कोलाहल सुनाई दिया । जब समर वहां हज़ारों लोगों की भीड़ देखता है तो यह सोचकर घर लौटने को विवश होता है कि "यहाँ मैं क्या करूँगा ? इन हजारों लोगों में से कोई एम्पलॉयमेंट ऑफिसर का भानजा होगा कोई भतीजा पहले इनके नाम जाएँगे या मेरा?"

सारा आकाश उपन्यास में समर एक प्रेस में पचहतर के बदले साठ रुपये ही देने की बात करता है और उससे पार्ट – टाइम के नाम फुल- टाइम काम करवा कर उसका शोषण करता है। मध्यवर्ग का आत्मसम्मान आज अर्थ के सामने लँगड़ा हो गया है । आर्थिक शोषण के कारण समर विवशता की जिंदगी जीता है। प्रेसवाला का बर्ताव से

उसके स्वाभिमान को ठेस पहूँचता है। उसे केवल साठ रुपये देकर पचहत्तर रुपये पर हस्ताक्षर करने की बात करता है तो समर का आत्मसम्मान भड़क उठता है। वह उससे लड़कर घर लौटता है । फिर भी आर्थिक विषमता के कारण अपने आत्मसम्मान को त्यागकर दूसरे दिन वह काम पर जाने को मजबूर होता है।

मध्यवर्गीय जीवन का आर्थिक पक्ष देखने के पश्चात यह कहने में संकोच नहीं कि इस वर्ग की आय के स्त्रोत अत्यंत सीमित है। आर्थिक पक्ष के कारण सामाजिक सम्बन्ध के साथ साथ व्यक्ति की कोमल भावनाओं को भी तोड़ दिया है। अर्थतंत्र से युक्त यही समाज व्यवस्था आज मध्यवर्गीय जीवन की विवशता है।

पोस्ट कोलोनियल दुनिया : सच्च या झूठ

कृष्णप्रिया
बी ए तृतीय वर्षीय विद्यार्थिनी
नैपुण्या इंस्टिट्यूट ऑफ़ मैनेजमेंट एंड इनफार्मेशन टेक्नोलॉजी

कहा जाता है कि यह युग पोस्ट कोलोनियल युग है। दुनिया कोलोनियलिस्म से हटकर डेमोक्रेसी के और चल रही है। वास्तव में, डेमोक्रेसी में अधिकार जनता के पास है , जनता चुनती है अधिकारीयों को। लेकिन सच्चाई तो यही है कि जो लोग चुने जाते है , वे पूरी तरह अधिकार अपने हाथ में ले लेते है। यह कोलोनियलिस्म हमारे ऊपर उनका अधिकार प्रयोग करने से अलग कैसे हुआ ?

अगर किसी चीज़ को ग्लोबल स्टेटस प्राप्त करना है तो फिर उसको अमेरिका , ब्रिटेन , यूरोप आदि जगहों में अपने आप को पकड़ प्राप्त करना पढ़ेगा। पौंड का मूल्य डोलर से ज़्यादा है , लेकिन संसार के सभी देशों के इकॉनमी को डोलर में बोला जाता है। अमेरिका के एम एन सी कम्पनियां लोक में प्रफुल्लित है , और सभी ऐसे किसी कंपनी में काम मिले। यह सोच आजकल तो कम होती जा रही है और लोग स्टार्ट-अप की ओर जा रहे है। लेकिन तभी भी लोग चाहते है कि वे अमेरिका में ही स्टार्ट-अप शुरू करें।

९२ अकाडेमी अवार्ड्स में पहली बार एक फोरिन भाषा चित्र को बेस्ट पिक्चर अवार्ड दिया गया था। २०१५ में अकाडेमी अवार्ड्स को रेसिस्ट होने के बारे में बोला गया था। अमेरिका के प्रेसिडेंट ने तब बोला कि यह क्या हो रहा है और कि उसे ' गॉन विथ द विंड' का युग वापस चाहिए। 'गॉन विथ द विंड' उसके रेसिस्ट थीम के लिए जाना जाता है।

हॅल्यू वेव - सौथ कोरियन कल्चर का देशांतर गमन। इसका शुरुआत २०१६ -२०१७ में हुआ था। बी टी एस ने विल्वर्ट टॉप सोशियल आर्टिस्ट जीता। इससे लोक को के -पोप और के-ड्रामा के बारे में पता चला और फिर उससे एक नया ट्रेंड पैदा हुआ - हॅल्यू वेव। बी टी एस ने २०१७ से २०२० तक सभी साल टॉप सोशियल आर्टिस्ट अवार्ड जीता है। अमेरिकन ओ टि टि प्लेटफार्म नेटफिलक्स में ढेर सारे के -ड्रामा रिलीज़ होने लगे। एक दिलचस्प बात यह है कि नेटफिलक्स के सबसे ज़्यादा उपभोक्ता अमेरिका में ही है। यही नहीं , पूरे संसार के लोग इसके पीछे भागना शुरू कर दिया है।

'योगा' भारत का ही है लेकिन उसका आदर करने के लिए हमें पश्चिम से उसके गुणों के बारे में जानना पड़ा। जब भारतीयों ने योगा के बारे में बात किए तब किसीको मूल्य नहीं था। लेकिन जब पश्चिम के देशों ने उसके बारे में बात करना शुरू किया, तब सभी को योगा को आदर करने का मन लगा और 'अन्तर्देशीय योगा दिवस ' भी घोषित हुआ।

यह देखते रहा है कि हम सच्च में पोस्ट - कोलोनियल वर्ल्ड में है कि , इस तरह दिखाया जा रहा है। जो भी हो, एक व्यक्ति को कभी भी उसका पहचान नष्ट नहीं होना चाहिए। एक देश की संस्कृति की मृत्यु उस देशवासियों के पहचान के एक भाग की मृत्यु के बराबर है। इसलिए हमें हमेशा अपनी संस्कृति के तरीके से रहना चाहिए और किसी भी नकारात्मक चीज़ के पीछे भाग कर अपने-आप को खोना नहीं चाहिए। अपने व्यक्तित्व को बढ़ाइए , अनुकरण को नहीं।

संजीव कुमार मित्रा और वर्तमान परिदृश्य

एंजेल रॉय
बी ए त्रितीय वर्षीय विद्यार्थिनी
नैपुण्या इंस्टिट्यूट ऑफ़ मैनेजमेंट एंड इनफार्मेशन टेक्नोलॉजी

हैंगवोमन के.आर. मीरा द्वारा लिखा गया एक उपन्यास है। जहां उन्होंने एक बिल्कुल अलग और एक नए विषय का प्रस्ताव रखा। वह एक मजबूत और बोल्ड 22 वर्षीय महिला का चित्रण करती है, जो पूरी तरह से अलग पेशे में है। उपन्यास के नायक चेतना ने अपने परिवार की विरासत को बनाए रखने के लिए जल्लाद का काम करने में मजबूर हो जाती है। लेकिन यहां हम उसी उपन्यास के संजीव कुमार मित्रा नामक एक अन्य चरित्र के बारे में बात कर रहे हैं। उपन्यास में वह सी.एं.सी के लिए एक समाचार रिपोर्टर है और वह वर्तमान पत्रकारिता का प्रतिनिधि है। उन्होंने चेतना और जतीन्द्रनाथ की फांसी की कहानी को कवर किया। वो अपने काम के लिए चेतना के जीवन का हिस्सा बनने की कोशिश करता है। वह उसके लिए गिर रही है और बाद में उसे पता चलता है कि वह उसे धोखा दे रहा था। वास्तव में संजीव कुमार मित्रा को उन पर शारीरिक रूप से दिलचस्पी थी लेकिन इन सबसे ऊपर वह अपने पेशे के लिए उनका उपयोग कर रहे थे। बस अपने चैनल की टीआरपी रेटिंग बढ़ाने के लिए और प्रसिद्धि के लिए उन्होंने ये सब किया। वह एक ऐसा व्यक्ति है जो अपने पेशे के लिए कुछ भी करने को तैयार है। यह अच्छा है कि यदि कोई व्यक्ति अपनी नौकरी के लिए अपना 100% दे रहा है लेकिन ethics नाम की भी एक चीज होती है जो संजीव में नहीं थी। प्रत्येक पेशे की अपनी नैतिकता होती है और जब पत्रकारिता की बात आती है, तो यह एक नौकरी से अधिक एक सार्वजनिक सेवा है। इस उपन्यास में हम पत्रकारिता की नैतिकता के खिलाफ होने वाले कई घटनाएं देख सकते हैं।

पत्रकारिता नैतिकता वे सामान्य मूल्य हैं जो पत्रकारों का मार्गदर्शन करते हैं। प्रत्येक और हर समाचार संगठनों का अपना लिखित आचार संहिता होता है। गांधी ने पत्रकारिता को लोगों की सेवा के साधन के रूप में देखा। उन्होंने अपनी आत्मकथा में कहा: "पत्रकारिता का एकमात्र उद्देश्य सेवा होनी चाहिए। अखबार एक महान शक्ति है, लेकिन जिस तरह पानी की एक अप्राप्य धार पूरे देश को जलमग्न कर देती है और फसलों को तबाह कर देती है, यहां तक कि एक अनियंत्रित कलम को भी नष्ट करने के लिए"। लेकिन वर्तमान स्केनरियो लेते समय यह एक सार्वजनिक सेवा है या कुछ और? उपन्यास में संजीव कुमार मित्रा पत्रकारिता की नैतिकता के खिलाफ काम करता है।जब पत्रकारिता के इतिहास को देखते हैं तो हमें पता लगता है कि पहले सिर्फ सच्ची कहानियों को दिखाने के लिए पत्रकारिता की जाती थी और कोई भी पत्रकार किसी से प्रभावित नहीं था। वे स्वतंत्र, प्रामाणिक और मेहनती भी थे। पर अब ? उन पर विश्वास करना थोड़ा मुश्किल है और वे बस अपने तरीके से चीजों में हेरफेर करने की कोशिश करते हैं।

संजीव कुमार मित्रा जो एक पत्रकार हैं, चेतना के परिवार मिलने जाते हैं और उसके पिता से चेतना का हाथ मांगता है. यह सच है कि वह उससे शादी करना चाहता है लेकिन यह केवल इसलिए था क्योंकि वह शारीरिक रूप से चेतना से आकर्षित था.। इसके अलावा वह जतिंद्रनाथ की फांसी के संबंध में पूरी खबरें चाहते थे, जहां चेतना और उनका पूरा परिवार इसका हिस्सा है। वह अपनी नौकरी के लिए पूरे परिवार का उपयोग कर रहा है। इसलिए पहले दिन से संजीव कुमार चेतना के परिवार में दखल देने की कोशिश करता है. वह चेतना के पिता को समाचारों की कहानियों के लिए एक निश्चित राशि देता है और एक समझौते पर हस्ताक्षर करता है। संजीव कुमार के बारे में सभी को पता चलता है कि वह उसके साथ प्यार में है और चेतना यह मानती थी। लेकिन वह उस व्यक्ति की तरह बर्ताव नहीं कर रहा था, जो इतना प्यार करने वाला है कि वह सिर्फ बिजनेस माइंडेड था। संजीव कुमार अपने उतार-चढ़ाव का हिस्सा होने के बजाय चेतना और उनके परिवार के बारे में रिपोर्ट करने में व्यस्त थे। उन्होंने जतिंद्रनाथ की फांसी के बारे में चर्चा करने के लिए "हैंगवोमन्स डायरी" नाम का एक शो भी शुरू किया। इसलिए वह प्रसिद्धि के लिए और अपने चैनल के लिए कुछ भी करने को तैयार थे।

उपन्यास के 31 वें अध्याय में, चेतना का भाई रामदेव मर जाता है, क्योंकि वह बीमार था और सालों तक आराम करता था। इसलिए चेतना के भावी पति होने के नाते या चेतना से प्यार करने वाले व्यक्ति होने के नाते, उसे उसके साथ होना चाहिए क्योंकि वह वास्तव में टूट गई थी, उसने अपने भाई को खो दिया और इससे पहले वह अपने चाचा और चाची को खो चुकी थी । इसलिए उसे वास्तव में एक ऐसे व्यक्ति की ज़रूरत है जो उसे बहुत प्यार करता है और उसकी उपस्थिति निश्चित रूप से उसे राहत दे सकती है। लेकिन वह कहानी की रिपोर्ट कर रहा था और अपने चैनल की रेटिंग बढ़ाने के तरीके खोज रहा था। वह बिल्कुल दुखी नहीं था और वह भावहीन था। उनकी भावी पत्नी के भाई की मृत्यु ने उन्हें बिल्कुल प्रभावित नहीं किया। ऐसी और भी कई घटनाएँ हैं उपन्यास में जिनसे पता चलता है कि संजीव एक व्यवसायिक सोच वाला व्यक्ति है। वह लोगों को समाचारों में हेरफेर करने, कैमरे के सामने रोने के लिए पैसे भी देता है, और उनसे यह भी पूछना चाहता है कि जिस तरह से वह चाहता है। वह वास्तव में जानता है कि जनता क्या चाहती है या वह इस बात से अवगत थी कि उन्हें क्या लाभ मिलता है और कैसे रेटिंग को बनाए रखना है। संक्षेप में, वह चेतना और उसके परिवार को धोखा दे रहा था। अंत में चेतना उसे मार दाती है और अपना बदला लेती है. इस प्रकार यह उपन्यास समाप्त होता है.

जैसा कि मैंने पहले कहा था कि संजीव कुमार मित्रा पत्रकारिता की वर्तमान स्थिति का प्रतिपादक हैं। आजकल ठीक वैसा ही हमारे आसपास हो रहा है। मीडिया पत्रकारिता को सेवा के बजाय व्यवसाय के रूप में देखता है। वे चीजों में हेरफेर करते हैं, पेड न्यूज करते हैं, वे सरकार या राजनीतिक दलों या किसी भी धर्म और इतने से प्रभावित होते हैं। उनमें से कुछ प्रसिद्धि और रेटिंग के लिए ये सब करते हैं क्योंकि वे हमेशा शीर्ष पर रहना चाहते थे। कुछ अन्य लोगों को इन चीजों को करने के लिए मजबूर किया जाता है क्योंकि वे दूसरों से प्रभावित होते हैं जनता द्वारा नहीं। कई राष्ट्रीय चैनल अब सरकार से प्रभावित हैं इसलिए वे हमेशा सरकार के पक्ष में चीजों को उजागर करना चाहते हैं। इससे पता चलता है कि प्रेस अब स्वतंत्र नहीं है। मीडिया बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए

काम कर रहा है और वे हमेशा उनके पक्ष में खबरों को उजागर करते हैं। वे उन समाचारों को महत्व देते हैं जो केवल उनके और कंपनियों के लिए लाभकारी हैं। वे मशहूर हस्तियों, प्रतिष्ठित व्यक्तियों, धार्मिक मुद्दों, राजनीतिक मुद्दों जैसे किसानों, आर्थिक और सामाजिक रूप से पिछड़े लोगों और अन्य पर ध्यान केंद्रित करते हैं।

मीडिया या प्रेस हमारे दिन-प्रतिदिन के जीवन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। हम उन पर निर्भर करते हुए जानते हैं कि हमारे आसपास क्या हो रहा है। हम मानते हैं कि वे हमें क्या दिखाते हैं और वे क्या कहते हैं। उन्हें एक भरोसेमंद माध्यम माना जाता है। इसका एक कड़वा सच है कि वर्तमान में वे जनता को प्रामाणिक समाचारों को उजागर करने या बताने में असमर्थ हैं। वे सिर्फ अपनी इच्छानुसार चीजों का निर्माण कर रहे हैं। कई चैनल हैं जो वास्तविकता में बदलाव करते हैं और इसे एक तरह से चित्रित करते हैं ताकि वे अपने स्वयं के पूर्वाग्रहों को खत्म कर सकें। वे गैर-गंभीर मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करते हैं जैसे कि मशहूर हस्तियों के व्यक्तिगत जीवन, अंधविश्वास या ज्योतिष में झांकना और अधिक। दूसरी बात यह है कि वे समाचार दिखाते हैं और उस पर चर्चा करते हैं लेकिन बाद में जब उन्हें एक और कहानी मिलती है जिसका अधिक समाचार मूल्य होता है तो वे उस पर ध्यान केंद्रित करते हैं। तो पुरानी कहानियाँ बस गायब हो जाती हैं। वे उन्हें न्याय दिलाने की कोशिश भी नहीं करते। जुलाई 2018 में प्रेस दिवस पर, वरिष्ठ पत्रकार कृष्ण प्रसाद ने कहा, "भारतीय पत्रकारिता वर्तमान में इतिहास के सबसे बुरे दौर से गुजर रही है।" सत्य और राष्ट्र के कल्याण की रिपोर्टिंग के बजाय उनके व्यक्तिगत हित अधिक मूल्य रखते हैं।

अर्नब गोस्वामी एक पत्रकार हैं जो रिपब्लिक टीवी के मालिक हैं, एक ऐसा व्यक्ति है जो एक पत्रकार के रूप में अपने काम के प्रति सच्चा नहीं है। वह हर रोज अलग-अलग विषय पर बहस करता है। लेकिन उन द्वंद्वों केवल व्यर्थ और केवल तमाशा के लिए हैं। वह समस्याओं के समाधान के लिए निष्कर्ष निकालने या खोजने की कोशिश नहीं करता। बहस के बीच में ही वह हस्तक्षेप करते हैं, दबाते हैं, खिलाफ बात करते हैं और पैनल के सदस्यों पर चिल्लाते हैं। वह सहायक और गैर-सहायक समूह के बीच मध्यस्थता करने के बजाय अपने व्यक्तिगत हितों के एक समूह का समर्थन करता है। वह चालाकी से और फर्जी खबर बनाने की कोशिश भी करता है। किसानों का मामला इसका एक उदाहरण था। उसने चीजों को अपने तरीके से उजागर करने की कोशिश की। मुंबई पुलिस के अनुसार चैनल की टीआरपी रेटिंग बढ़ाने के लिए उन्होंने एजेंसियों को भुगतान किया और विभिन्न प्रकार के तरीकों का चयन किया जो कि अवैध नहीं है। इस मामले को लेकर केस अभी भी चल रहा है। इसलिए यहां हम यह देख पा रहे हैं कि ये सभी चीजें पत्रकारिता की नैतिकता के खिलाफ हैं और व्यक्ति वास्तविक नहीं है और यह भी कि वे जो खुलासा करते हैं वह अनैतिक है। यह मौजूदा स्थिति का सिर्फ एक उदाहरण है। कई अन्य चैनल हैं जो ऐसा ही करते हैं।

हमारे आस-पास हो रही वर्तमान चीजें भी यही बताती हैं। जैसा कि हम सभी जानते हैं कि पूरी दुनिया एक महामारी के तहत है और बहुत से लोग मारे गए। अभी भी ऐसे लोग हैं जो कोविद -19 से पीड़ित हैं। जब यह शुरू हुआ तो यह हफ्तों और महीनों के लिए सबसे महत्वपूर्ण और सबसे बड़ी खबर थी लेकिन जब नवीनतम समाचार आया तो कोविद -19 का महत्व कम हो गया। अब हमारे पास केवल इसके अपडेट हैं। एक उदाहरण

के रूप में केरल को लेते समय, चुनाव के दिनों में कहानियों पर चर्चा की गई और उजागर किए गए चुनाव और इसके परिणाम थे। दूसरी तरह की खबरें जैसे कोविद लाइमलाइट में नहीं थीं। उनके लिए समाचार मूल्य कुछ और हैं, स्वयं द्वारा बनाई गई पत्रकारिता की नैतिकता। जब केरल में कई क्षेत्रों में वायरस "निप्पा" की सूचना दी गई थी, तो इस वायरस के संगठन के बारे में समाचार एक चर्चा का विषय था। कई चैनलों ने फर्जी खबरें दीं और अपने तरीके से चालाकी की। बलात्कार के मामले इतने सामान्य हो गए कि इसे सिर्फ एक माध्यमिक समाचार माना जाने लगा। किसान की आत्महत्या की तुलना में धार्मिक संघर्ष अधिक महत्वपूर्ण हैं। यह दिन-प्रतिदिन होता है, सब कुछ बदल जाता है।

इन वर्षों में प्रेस / मीडिया के इतिहास को ध्यान में रखते हुए, जनता को हमेशा मीडिया पर निर्भर किया गया है। वे उन्हें निहारते थे। लेकिन अब लोग उन पर भरोसा नहीं कर पा रहे हैं। यह सच है कि हर चमकती चीज सोना नहीं होती। मीडिया को जनता के सामने बोलना, उजागर करना और दिखाना है कि सच्चाई क्या है। लेकिन मीडिया के पेशेवर मूल्य कम हो गए। उनके पास कुछ भी करने की शक्ति है। हमारे पास तीन स्तंभ हैं जो विधायी, कार्यकारी और न्यायपालिका हैं। मीडिया को चौथा स्तंभ कहा जाता है। लेकिन वे अब अपनी भूमिका नहीं देख रहे हैं क्योंकि वे आवाज दे रहे हैं या शासक वर्गों से जवाबदेही की मांग कर रहे हैं। के.आर.मीरा का किरदार संजीव कुमार मित्रा वर्तमान मीडिया का एक प्रमुख उदाहरण है। वह अपनी नौकरी के लिए अपना 100% दे रहा था लेकिन वह पेशेवर मूल्यों के बारे में भूल गया और code of ethics नामक चीज का बिल्कुल अपमान किया। इस उपन्यास में मनोधा नाम का एक पत्र भी है. लेखक ने इस व्यक्ति को सबसे पुराने पत्रकार के रूप में चित्रित किया। वह अपने पेशे के प्रति सच्चा और सच्चा है। इसलिए जब समय बदला तो पत्रकारिता के लोग भी बदल गए। क्यों और कैसे,इसके बारे में कभी बाद में चर्चा किया जा सकता है.। इसलिए संक्षेप में उपन्यास और ये चरित्र हमें दिखाते हैं कि मीडिया कैसा होना चाहिए और मीडिया कैसा नहीं होना चाहिए। अंत में मैं अब्राहम लिंकन द्वारा बोली गेई एक बात उद्धरन करना चाहूंगी जिसे मीडिया को हमेशा ध्यान में रखना चाहिए, "आप सभी लोगों को कुछ समय के लिए मूर्ख बना सकते हैं। आप कुछ लोगों को हर समय मूर्ख बना सकते हैं। लेकिन आप सभी लोगों को हर समय मूर्ख नहीं बना सकते"

सन्दर्भ ग्रन्थ

के आर मीरा : आराचार

'पारिस्थितिक नारीवाद' सांस्कृतिक परिदृश्य में नवीन अवधारणा

डॉ.सुनिता एम.एस
असिस्टेंट प्रोफसर
भारत माता कॉलेज ऑफ कॉमेर्स आंट आर्ट्स, आलुवा

'पारिस्थितिक नारीवाद' पारिस्थितिकवाद और नारीवाद का संयोग है । जीवनदायिनी स्त्री और प्रकृति को केन्द्र में प्रतिष्ठित करनेवाला पारिस्थितिक नारीवाद, हमारे जीवन और अस्तित्व से जुडे दर्शनों से युक्त एक पारिस्थितिक आंदोलन है । यह स्त्री और प्रकृति पर हो रहे शोषण के उन्मूलन के साथ सामाजिक न्याय तथा मानवीय मूल्यों की स्थापना पर ज़ोर देनेवाले क्रांतिकारी परिवर्तन का नवसिद्धांत है ।

भारतीय संस्कृति में स्त्री को भूमि देवता का दर्जा प्राप्त है । अथर्ववेद में लिखा है कि "माता भूमिः पुत्रोहम् पृथ्विव्याः"- भूमि माता है, मैं पृथ्वी का पुत्र हूँ । इसप्रकार धरती को माता की तरह स्वीकार करना ही स्त्री और प्रकृति के सांस्कृतिक एवं जैविक रिश्ते का प्रमाण है । भारतीय संस्कृति की इसी संकल्पना में स्त्री और प्रकृति की उपासना या उसके प्रति श्रद्धा का भाव रखता था । यह पृथ्वी और स्त्री को एक ही मानने की परंपरा को सूचित करता है । लेकिन वैज्ञानिक-प्रौद्योगिक प्रगति, भूमंडलीकरण से उपजे उपभोगवादी संस्कृति के विकास से इन दोनों के प्रति मानसिकता में बदलाव द्रष्टव्य है । अब ये दोनों शोषण के शिकार हैं ।

पारिस्थितिक नारीवाद में प्रकृति और स्त्री के इस आपसी संबन्ध एवं उनकी दुरवस्था के सुधार से संबंधित विचार निहित है । उनके अनुसार उपभोगवादी संस्कृति, उपनिवेशवाद और पुरुषाधिपत्य मानसिकता ही स्त्री और प्रकृति के शोषण के कारण हैं । यह दर्शन सैद्धांतिक और व्यावहारिक तौर पर एक शोषणमुक्त समाज की स्थापना पर ज़ोर देता है ।

इकोफेमिनिज़म की दार्शनिक व्याख्या सबसे पहले फ्रेंच नारीवादी फ्रांस्वा डी यूबोन ने 1974 को प्रस्तुत की है । उन्हाँने 'फेमिनिज़म अथवा मृत्यु' नामक उनकी फ्रेंच भाषा की रचना में 'इकोफेमिनिज़म का काल' शीर्षक अध्याय के अंतर्गत इकोफेमिनिज़म से संबंधित अपने विचारों को अभिव्यक्त करके 'पारिस्थितिक नारीवाद' का प्रारंभ किया । फ्रांस्वा ने इकोफेमिनिज़म शब्द का आविष्कार मानवतावाद को प्रतिष्ठित करने के उद्देश्य से किया है । आधुनिक फेमिनिस्टों में सबसे पहले सीमोन द बुआ ने स्त्री और प्रकृति को साथ रखकर विचार प्रस्तुत किया है । 1971 में अमेरिकी नारीवादी शेरी ओटनर ने इसके संबंध में अपनी विचारधारा से युक्त एक सवाल उठाया था कि संस्कृति केलिए प्रकृति के समान है, क्या पुरुष केलिए स्त्री ? [Is female to male as nature is to culture ?] | सीमोन द बुआ और शेरी ओटनर की विचारधारा में इकोफेमिनिज़म के दार्शनिक अंकुर द्रष्टव्य है । कारन जे वारन, मेडम नेस्त्रा किंग, मेरी डाली, सूसन ग्रीफिन, करोलिन मरचेंट, मरिया माईस, वंदना शिवा आदि सशक्त पारिस्थितिक नारीवादियों में आती है ।

पारिस्थितिक नारीवाद के संबंध में कारन जे वारन के दृष्टिकोण विशेष उल्लेखनीय है । उनके शब्दों में "प्रकृति और स्त्री पर पुरुष के आधिपत्य की आलोचना तथा प्रकृति और स्त्री के संबंध में लिंगातीत एक नीतिशास्त्र है इकोफेमिनिज़म । स्त्री और प्रकृति को केंद्र में प्रतिष्ठित एक वैश्विक विचारधारा है इकोफेमिनिज़म ।"[1] वंदना शिवा भारत में इकोफेमिनिज़म पर केंद्रित आंदोलनों में सक्रिय है । पारिस्थितिकवेत्ता वंदना शिवा की राय में अपने दैनिक व्यवहार के ज़रिए पर्यावरण के साथ नारी का एक विशेष या निकट संबंध है । उनके अनुसार आज विकास का मतलब प्रकृति और समाज के साथ जो पारिस्थितिक और सांस्कृतिक संबंध है, उसको तोडना है । इसप्रकार पारिस्थितिक नारीवाद पुरुष द्वारा प्रकृति और स्त्री के शोषण और उत्पीडन के बीच आलोचनात्मक संबंध ढूँढता है और उसके समाधान के रास्ते खोज निकालता है ।

वैसे, उपनिवेशवाद के नवीनशक्ति रूपी भूमंडलीकरण के नकारात्मक प्रभाव स्त्री और प्रकृति पर ही पड रहे हैं । इसमें निहित उपभोगवादी संस्कृति की शोषणात्मक दृष्टि को पहचानकर उनकी मुक्ति पारिस्थितिक नारीवाद के प्रतिरोधात्मक कार्यों में शामिल है । यह कथापि प्राचीन परंपरा की पुनःस्थापना नहीं है, क्योंकि स्त्री को आदर्शात्मक रूप देकर परोक्ष शोषण वहाँ व्याप्त था । त्याग, सेवा और समर्पण का मूर्तिरूप ठहराकर उसे दिये गये आदर्श रूप सांस्कृतिक दासता का प्रतीक है । घरेलू काम को स्त्री का दायित्व समझाकर घर के चार दीवारों के भीतर उसे बंधित करता है और आजीवन वेतनरहित नौकरानी बनाती है । इसकी वजह से बौद्धिक और आर्थिक विकास के रास्ते उनके समक्ष हमेशा बंद रहते हैं । ऐसी एक सामाजिक व्यवस्था के शिकार बनकर जीनेवाली स्त्री के विकास की संभावनायें नहीं के बराबर हैं । इस तरह की रूढीवादी संस्कृति और पुरुषाधिपत्य को चुनौति देना और उससे स्त्री को संकीर्ण वातावरण से मुक्त एक स्वच्छ वातावरण में जीने का अधिकार दिलाना पारिस्थितिक नारीवाद का लक्ष्य है ।

प्राचीन काल से ही प्रकृति के साथ स्त्री को मिलाने की रीति देखा जा सकता है । साहित्य में भी इन दोनों की निकटता के रूपक दर्शनीय है । बीसवीं सदी के उत्तरार्ध से साहित्य में प्रकृति और स्त्री की समानताओं के साथ उनके शोषण और दुरवस्था का समावेश भी होने लगा । पारिस्थितिक नारीवाद की विचारधाराओं के सामयिक महत्व ही साहित्य के क्षेत्र में इसके विकास को प्रबल बनाया है । आज साहित्य के हर विधाओं में पारिस्थितिक नारीवाद प्रतिरोध का शंखनाद बनकर मुखरित है । समकालीन हिंदी कहानी में भी पारिस्थितिक नारीवाद की विचारधारायें साफ द्रष्टव्य है ।

स्त्री और प्रकृति के बीच एक जैविक रिश्ता है । नयी सृष्टि करने की क्षमता एवं उससे प्राप्त अलौकिक अनुभूति केवल प्रकृति और स्त्री ही महसूस कर सकती है । इसीप्रकार प्रकृति की उदारता, करुणा, त्याग एवं ममतामयी भाव स्त्री में ही ज़्यादा विद्यमान है । उदयप्रकाश की 'मैंगोसिल' नामक कहानी स्त्री और प्रकृति के रिश्ते को कई आयामों से उद्घाटित करती है । इसमे शोभा अपना बेटा सूरी को वात्सल्य के साथ दूध पिलाते वक्त जो अनिर्वचनीय आनंद महसूस करती है, उसे कहानीकार प्रकृति से तादात्म्य करके प्रस्तुत किया है- "उसकी देह एक धीमी सनसनाहट में काँप रही थी । उसके शरीर की करोड़ों कोशिकाओं और नाड़ियों में कोई एक ऐसा

रहस्यपूर्ण संगीत बच रहा था, जो रक्त के दूध में बदलने का अलौकिक आदिम संगीत होता है और जिसे इस पृथ्वी पर कोई और नहीं, सिर्फ स्त्री ही सुनती और जानती है ।"[2]

लोककलाओं के प्रति प्रेम की वजह से प्रकृति की संगी हो गयी एक आदिवासी लड़की की कहानी है ज्योति लकड़ा की 'कोराईनडूबा' । पति की अनुमति के बिना करियो नदी पार करके अखरा नाचने जाती है । इससे क्रोधित पति उस लता को अधकट्टा काटकर छोड़ देता है, जिसमें झूलती हुई करियो ने नदी पार किया था । करियो उस लता में ही झूलकर लौट आती है और नदी के बीच में पहुँचते ही लता दो भागों में बंट जाती है । पति पश्चात्ताप से दुखित होता है । कहानी के अंत में करियो के संबंध में कहा गया है कि करियो नदी के संग हो गयी । वैसे, इस कहानी में आदिवासी स्त्रियों के दैनिक जीवन में प्रकृति के स्थान को सहजता से उजागर किया है ।

स्त्री और प्रकृति के शोषण के पीछे स्थित मौलिक कारण उनके प्रति भोगवादी नज़र है । आज सर्वव्याप्त स्त्री के उत्पीडन एवं धरती के अनियंत्रित खनन इसका प्रमाण है । वासुदेव की 'शांबरी' नामक कहानी में स्त्री और प्रकृति को उपभोग के दायरे में बंधित करके उनसे फायदा उठानेवाले पुरुषाधिपत्य समाज के सुधार की कोशिश द्रष्टव्य है । इसमें नेताजी और पांडेयजी जिस आदिवासी लड़की को धांगरिन बनाकर सालवन की जंगली चीज़ों पर अपने अधिकार जमाने की साजिश रचते हैं, उसी लड़की की सांस्कृतिक विचारधाराओं से रेंजर साहब अत्यंत प्रभावित होता है । शांबरी के मुँह से प्रकृति-पूजा, जीवन में पेड़ों का महत्व, उसका संरक्षण आदि से संबंधित बातें सुनकर रेंजर साहब बोल उठता है- "शांबरी.... तुमने आज मेरी आँखें खोल दी । आज जिस पर्यावरण की सुरक्षा केलिए सारा संसार हाहाकार कर रहा है, हमारे भारत में हज़ारों साल पूर्व उतना अनूठा प्रयास हो चुका है । सचमुच आज तुमने मेरी आँखें खो दी ।"[3] इस कहानी में प्रतिध्वनित सामाजिक सुधार के स्वर और प्रकृति के साथ पारस्परिकता के भाव पारिस्थितिक नारीवाद का प्रमुख मकसद है ।

मैत्रेयी पुष्पा की 'अपना अपना आकाश' नामक कहानी ज़मीन की तरह माँ की ज़िन्दगी को भी बाँटनेवाली वर्तमान पीढ़ी के निष्ठुर व्यवहार को उद्घाटित करती है । पारिस्थितिक नारीवाद की विचारधाराओं के आधार पर इस कहानी की आलोचना हम कर सकते हैं । जिस माँ की कोख से जनम लिये, जिस धरती की खेती के सहारे पढ़ लिखकर बड़े हो गये, उन दोनों के प्रति बेटों के मन में ममता एवं आत्मीयता का भाव नहीं है । इसलिए वे ज़मीन और माँ की ज़िन्दगी को बाँटने में हिचकते नहीं है । कहानी में माँ के देखभाल के संबंध में बेटों ने निर्णय किया कि हर चार महीने माँ हरेक बेटे के घर में रहेगी । कहानी का प्रसंग है- "कुछ दिन बाद ही वे समझ पायी थी कि बेटों ने उनके जीवन के शेष रहते दिनों को भी आपस में बाँट लिया है, ज़मीन की ही तरह, शान्ती से...।"[4] बेटों के यह निष्ठुर मानसिकता को समझकर माँ नौकर की सहायता से चुपचाप गाँव लौट जाती है । माँ की यह प्रतिक्रिया जो है, वह एक तरह का मानसिक प्रतिरोध ही है । वैसे, निस्सहाय और परावलंबी स्त्री के शोषण और अत्याचार को रेखांकित करनेवाली है मैत्रेयी पुष्पा की 'बहेलिये' नामक कहानी । इस कहानी की गिरजा जो है, वह अपने जीवन अनुभव और परिवेशगत कटुयथार्थों से गुज़रकर जागरूक नारी बन जाती है । बचपन में अपने परिवार के साथ हुए अन्याय को वह रोक नहीं पाती, लेकिन जीवन पड़ाव पर वह ऐसी शक्ति हासिल करती है, जिससे उसने अन्याय

को रोकना चाहा । बाद में न चाहने पर भी राजनीति में आने को वह बाध्य हो जाती है । कहानी में भ्रष्टाचार के विरुद्ध गिरजा का जो प्रतिरोधी स्वर है, वह अपने परिवेश के प्रति उसकी पहचान है ।

उपरोक्त कहानियों में प्रकृति को पहचाननेवाली और उसके संरक्षण की आवाज़ उठानेवाली स्त्रियों को देख सकते हैं । इनमें अपने अधिकारों से सचेत नारी की सख्त प्रतिक्रिया भी उभर आयी है, जो यही एहसास दिलाती है कि यदि स्त्री अपनी शक्ति को सही ढंग से पहचानती है, तो वह धरती के समान दुर्जेय बन जाती है । जिसप्रकार प्रकृति अपने पर हो रहे शोषण के विरुद्ध प्रतिक्रिया अर्ज कर रही है, वैसे स्त्री भी प्रतिरोध की ओर अग्रसर है ।

संक्षेप में, पारिस्थितिक नारीवाद के प्रभाव से साहित्य सह अस्तित्व के दर्शन को ही उद्‌घाटित करती है । समाज में व्याप्त शोषण का प्रतिरोध करनेवाला यह पारिस्थितिक नारीवाद विवेचनहीन ऐसे एक संतुलित समाज की स्थापना पर ज़ोर देता है, जहाँ सबके अस्तित्व का अपना मूल्य है और ऐसी एक संस्कृति में ही सबका अस्तित्व सुरक्षित रहेगा ।

संदर्भ

1. डॉ. के वनजा - 'इकोफेमिनिज़म', पृ.14
2. उदयप्रकाश - 'मैंगोसिल', पृ.118
3. वासुदेव - 'शांबरी', कथाक्रम, अक्तूबर-दिसंबर 2011, पृ.118
4. मैत्रेयी पुष्पा - 'अपना-अपना आकाश', चिन्हार, पृ.15

कला, साहित्य और संस्कृति

डॉ. जितेंद्र पायसी
गेस्ट फैकल्टी
जियोग्राफी विभाग
गवर्नमेंट कॉलेज , उंचेहरा सतना , मध्यप्रदेश

भारत देश को धर्म गुरु का दर्जा विश्व स्तर पर प्राप्त है। प्राचीन समय से लेकर वर्तमान समय तक कला,साहित्य और संस्कृति की बात इतिहास पर होती रही है। साथ ही आज हो रही है ।आगे भी भविष्य में होती रहेगी,इस बात को हम आत्म सम्मान के साथ कह सकते है। जिस प्रकार वृक्ष मैं जड़, तना, शाखा का महत्व होता है ।उसी प्रकार भारत देश पर कला ,साहित्य और संस्कृत का महत्व जाना जा सकता है ।कला ,साहित्य और संस्कृत के अभाव में मानव जीवन वीरान जंगल के समान है ।मानव जीवन जन्म से ही ही कला प्रेमी माना गया है ।मानव जीवन की खूबी को पहचानने का कला सबसे बड़ा आधार रहा है ।हर मानव अपने कार्यों को विशेष ढंग से करना पसंद करता है जैसे कहा गया है "जहां न जाए रवि वहां जाए कवि "एक तरफ लेखक रात भर जाकर अपनी लेखनी के माध्यम से विश्व ज्ञान से परिचित कराता है ।श्रमिक रात-दिन एक करके पसीना बहा कर मेहनत करता है जब जाकरदो रोटी खाता है। एक मूर्तिकार पथ पर पड़े पत्थर को संगमरमर से मूर्ति का आकार देकर पत्थर को पूज्य बना देता है।गुरु भी शिष्य को कुम्हार के समान मिट्टी को अंदर हाथ का सहारा देकर बाहर से चोट देकर घड़े का निर्माण कर देता है। जिस प्रकार गुरु ज्ञान से परिपूर्ण शिष्य को सत्य का ज्ञान कराकर योग्य बना देता है। गुरु को समाज में भगवान का दर्जा तो दिया ही गया है। एक और बात गुरु को एक मार्ग की संज्ञा दी गई है। जो एक स्थान पर रहकर ना जाने कितने अनगिनत पीढ़ियों को मंजिल तक पहुंचा देता है। इसीलिए यहां तक कहा गया है कि "गुरु गोविंद दोऊ खड़े काके लागू पायबलिहारी गुरु आपने गोविंद दियो बताए।"

इस प्रकार कला जीवन आधार है। साहित्य समाज का दर्पण, जैसा को तैसा दिखाने का कार्य सदियों से करता आ रहा है ।संस्कृत तो बहती हुई नदी का जल है ।जो मानव जीव जगत को आत्मा तृप्त कर देता है अर्थात नवाचार अच्छाइयों का स्रोत अपनी संस्कृत है।तालाब (पोखर)को अगर हम परंपरा कह सकती हैं तू ,संस्कृत नदी को कहने में कोई मतभेद नहीं है। कहा गया है कि"हम भारत वासी बहता पानी पीने वाले मर जाएंगे भूखे प्यासे हैं, भले कही भली है कुटुम निबोरी व खीर मलाई।"इस प्रकार भारत देश में कण कण में कला साहित्य और संस्कृति आदि काल से विद्यमान मानी गई है ।मानव की उपज मिट्टी को ही माना गया है।आज के चकाचौध (भौतिकता वादी जीवन) अर्थात भोग विलास की दुनिया में विश्व भर में मानव चांद पर ताजमहल का सपना रखता है।मुझे नीव के पत्थर की कहानी याद आ रही है आज लोग नीव को भूलकर कंगूरा देखना पसन्द करने लगे हैं। अतएव ऐसे वर्तमान समय पर भारत देश में कला ,साहित्य और संस्कृति पर विचार मंथन कल्प वृक्ष के समान सार्थक सिद्ध होगा यह मै पूर्ण विश्वास के साथ कह सकता हूं।

विशेष शब्द: वीरान जंगल,आधार, कंगूरा,मंजिल,।

1 प्रस्तावना:

कला साहित्य संस्कृत भारत की धरोहर तुल्य है। कला से आप किसी कार्य को जाना जाता है ।जो हर भारतीय मानव पर बसा हुआ दिखाई देता है ।हर मानव एक कला का धनी होता है जैसे बोलने की कला, लिखने की कला, बोलने वाली अपने दोनों की कला अर्थात कार्य करने की पद्धत को कला कहा जा सकता है ।भारत के उत्तर से दक्षिण ,पूर्व से पश्चिम ,कोने कोने पर कला को देखा जा सकता है। इसमें पकवान, गायन, वादन के रूप में देखा जा सकता है ।जो आज समाज में घटित हो रहा है ।उसी साहित्य कहा जा सकता है ।समाज में चलने वाली सभी क्रियाकलाप को इसमें शामिल कर सकते हैं ।समाज का आईना कहा जा सकता है ।साहित्य को नवाचार अर्थात जो आज की त्वरित अच्छाइयों का भंडार भारतवर्ष की धरा पर है ।उसी की संस्कृत कहा जा सकता है ।जोकि भारत की धरोहर है इस पर विचार किया जा सकता है ।इन पर ज्ञान हासिल किया जा सकता है। जीवन को सफल बनाने की कवायद की जा सकती है। शोध कार्य किए जा सकते हैं ।भारत की गरिमा को बनाए रखा जा सकता है।

2 कला साहित्य और संस्कृत का महत्व:

महत्त्व यानी गुड़िया विशेषता कला का महत्व मानव जीवन के आधार के रूप में जाना जा सकता है। कला का धनी होना मानव जीवन का दी है ।किसी भी वस्तु की कीमत मानव उपयोगिता से मानी जा सकती साहित्य के बिना समाज की कल्पना नहीं नहीं की जा सकती ।और विकास की रफ्तार को कला साहित्य और संस्कृत से ही जानी जा सकती ।मानवी जीवन मूल्यों का कवच के रूप में इनका महत्व माना जा सकता है।

3 कला साहित्य और संस्कृति का क्षेत्र:

भारतवर्ष की गांव गांव से लेकर शहर नगर और महानगर एक कोने कोने इनका महत्व और क्षेत्र प्राचीन काल से अब तक माना जा सकता है ।हाथों की सुई से लेकर हवाई जहाज तक का निर्माण देखा जा सकता है। आज के वर्तमान समय की उपलब्धता ही हमारा साहित्य है ।समाज का आईना साहित्य समाज की पहचान अपना साहित्य, जन जन की आवाज अपना साहित्य ,रामराज्य की परिकल्पना साहित्य ,जनमानस का हितैषी अपना साहित्य ,आज हम नव निर्माण की योजना की समीक्षा बैठक करते हैं भ।रतवर्ष की जगह जगह वही अपना कला साहित्य और संस्कृत का हिस्सा है ।पूर्ण भारत में इनका दर्शन हम सब कर सकतहै।

1 उत्तराखण्ड राज्य पर हरिद्वार,नैनीताल, केदार नाथ, बद्री नाथ।

2 झारखण्ड राज्य पर देवघर।

3 दिल्ली पर लाल किला और इंडिया गेट।

4 अण्डमान निकोबार द्वीपसमूह पर पोर्ट ब्लेयर और निकोबार द्वीपसमूह।

5 मध्य प्रदेश पर सांची स्तूप और खजुराहो कला संस्कृति का धरोहर।

6 राजस्थान पर उदय,लेयर माउन्ट आबू और पुष्कर ।

7 महा राष्ट्र पर अजंता एलोरा।

8 उत्तर प्रदेश पर मथुरा और अयोध्या।

9 तेलगाना और आंध्र प्रदेश पर तिरूपति बाला जी, आर के ब्रिज,बिरलमंदिर।

10 जम्मू कश्मीर पर पहल गांव,गुलमर्ग।

11 गुजरात पर द्वारिका और गिरि फारेस्ट।

12 कर्नाटक पर बेलूर।

13 बिहार पर गया नालंदा।

14 ओडिसा पर पुरी।

15 तमिनाडु पर बूटि और कन्याकुमारी।

16 असम पर काजीरंगा।

17 हिमाचल पर डलहौजी, मनाली।

18 पंजाब पर अमृतसर।

19 हरियाणा पर सूरजकुंड, कुरु क्षेत्र।

20 केरल पर कोवलम और त्वकड़ी।

21 गोवा पर पुराना गोवा समुद्र तट।

22 छत्तीसगढ़ राज्य पर लाय और चित्र कोट।

जोकि संपूर्ण भारत देश को पिरोने का कार्य करते जनमानस के स्वास्थ्यवर्धक के लिए प्रेरित करने का काम कर रहे हैं।कला संस्कृत खजुराहो तू संपूर्ण विश्व में अपनी पहचान बनाने का काम कर रहा है।विश्व भर के लोगों का जमावड़ा अध्ययन को यहां लगता रहता है व ऐतिहासिक महत्व को रखता है। शोध कार्य में भी मदद करता है मै। स्वयं यहां पर परियोजना कार्य के लिए गया था।पहले यहां सड़क मार्ग था वायु मार्ग से जुड़ा था परंतु आज रेल मार्ग से जुड़ गया है।भ।षा बोली के तौर पर भी भारत देश विश्व में पहचान रखता है ।।खान पहनावा के लिए भी जाना जाता है ।नृत्य लोकगीत के लिए भी अहम पहचान रखता gSaA

4 कला साहित्य और संस्कृति के प्रति सामाजिक जवाबदेह

कहां जाता है वह दिल तो पत्थर है जिसमें स्वदेश का प्रेम नहीं ।यकीनन सत्य वचन है मानव जीवन का उद्देश्य देश की कला साहित्य और संस्कृति व्यवस्था के तहत सुव्यवस्थित बनाए रखना हमारी परम आवश्यकता है ।कहा जा सकता है कि अपना भारत देश अनेक विषमताओं के बाद भी एक माला की मूर्ति फूल के समान है ।अनेकता में एकता जिसे हम कह सकते हैं हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई हम सब भाई भाई ।अतएव भारत की कला साहित्य और संस्कृति अमिट बनाए रखना हमारी जिम्मे दारी माना गया है ।यह राष्ट्रीय एकता का प्रतीक है इनकी सुरक्षा हमारा धर्म है समाज के हर मानव का दायित्व क्लास संस्कृत और साहित्य को जानने व इसकी संरक्षण का है ।पर्यटन की प्रतीक के रूप में भी इन्हीं जाना जाता है ।भारत की अनगिनत लोगों को इनके द्वारा रोजगार मिलते हैं ।जीवन पलता है ।देश का विकास इन पर निर्भर है ।

5 <u>लाभ</u>:

1 सामाजिक लाभ।

2आर्थिक लाभ।

3 राजनैतिक लाभ।

4 धार्मिक लाभ।

5 ऐतिहासिक लाभ।

6 मनोवैज्ञानिक लाभ।

7 स्वास्थ वर्धक लाभ।

8 ज्ञानात्मक लाभ।

9 पर्यटन विभाग को लाभ।

10 पर्यावरण विभाग को लाभ।

11 जीवन मूल्यों के प्रति लाभ।

इस प्रकार भारत देश में समस्त जगहों पर कला साहित्य और संस्कृति का लाभ देखने को मिलता है।

<u>6 उपसंहार:</u>

भारत देश के समस्त जीव जगत को कला साहित्य और संस्कृति का महत्व उभर कर आता दिखाई देता ।आज हम विचार क्रांति के युग में पहुंच गए हैं। अतएव शोध कार्य हेतु, ज्ञान की जरूरत के मुताबिक भी वर्तमान युग पर कला साहित्य और संस्कृति एक कल्प वृक्ष के समान है।

<u>सन्दर्भ</u>

1 भारत भूगोल का अध्ययन।

2 प्रायोजक मूलक हिंदी का अध्ययन।

3 निबन्ध प्रतियोगिता पर सहभागिता।

4 कला साहित्य और संस्कृति का अध्ययन।

5 समयानुसार भारत भ्रमण।6 सामाचार पत्र पत्रिकाओं का अध्ययन।

6 विश्व भूगोल का अध्ययन।7 कला साहित्य और संस्कृतिहिंदी वेविनार सहभागिता

हिंदी हाइकु कविता में पर्यावरण बोध

सजना वी.ए
शोध छात्रा
महाराजास कॉलेज, एरणाकुलम

प्रथम साहित्य सृजन के रूप में कविता ने मानव जीवन को इंद्रधनुषी बनाया है। आदिकाल से लेकर अब तक प्रकृति वर्णन काव्य जगत में दृष्टिगोचर है । जीवन का स्पदन भी प्रकृति ही है। प्राचीन काल से मनुष्य और प्रकृति का रिश्ता अटूट एवं नश्वर है । प्रकृति की सुंदरता पर कब्जा करते हुए उसे पंक्तियों में बदलने में कविवर उत्सुक थे । आरंभ में प्रकृति सौदर्य के वर्णन करने वाले मानव समय परिवर्तन के साथ अपने सोच विचारों को बदलना शुरू कर दिया । इसलिए 1960 के बाद कविता में जनसंख्या वृद्धि, प्रदूषण, शहरीकरण आदि के प्रति विरोध, पर्यावरण के प्रति सजगता आदि पर कविता लेखन शुरू कर दिया । क्योंकि मनुष्य की असंख्य हस्तक्षेप के कारण प्रकृति असंतुलित थी । इसलिए प्रकृति की सुंदरता के साथ प्रकृति का भीषणता भी आज मनुष्य भोग रहे हैं। इसलिए साहित्य के क्षेत्र में कवि भी पर्यावरण के प्रति सजग एवं सावधान है।

समकालीन कविता की एक नई विधा के रूप में हाइकु प्रसिद्ध है । त्वरा के इस युग में मनुष्य सदा गतिशील है । समय अभाव से जूझने वाले मनुष्य को मनोरंजन के लिए नव्यतर लघु काव्य विधा के रूप में हाइकु उपयुक्त हैं । हाइकु माने एक श्वासी काव्य है । जापान से पुष्पित इस धारा में केवल तीन पंक्तियां होती है । प्रथम और तृतीय पंक्ति में 5- 5 और मध्य की पंक्ति में सात अक्षर होते है।

हिंदी में हाइकु का परिचय 'अज्ञेय ' की कविता संग्रह 'अरी ओ करुणा प्रभामय' के द्वारा हुई । हाइकु का विषय फलक असीम है । इसलिए ' डॉ. सुरचना त्रिवेदी ' कहती है -

" हाइकु ये है भरे / गागर में सागर / अर्थ आपार "[i]

इस त्रिपदी कविता का प्रभाव बहुत मार्मिक है । मुख्यतःहाइकु का आधारशिला प्रकृति ही है । क्योंकि जापानी लोग प्रकृति को ईश्वर मानते हैं । प्रकृति उनके जनजीवन का अंग है । हाइकु काव्य प्रकृति की सटीक अभिव्यक्ति प्रदान करती है । इसलिए कुछ पाश्चात्य समीक्षकों हाइकु को प्रकृति काव्य भी कहा है । लेकिन हाइकु काव्य में मात्र प्रकृति सौंदर्य का वर्णन ही नहीं वह सदा गतिशील और नश्वर है । साथ ही साथ मनुष्य जीवन का प्रतिबिंब भी है । इसलिए निसंदेह कह सकते हैं की प्रकृति और मनुष्य के इस अटूट संबंध को हिंदी हाइकु काव्य में बांधकर रखे गए है । लेकिन परिवर्तित इस युग में पर्यावरण की समस्यओं को हाइकुकारों ने गंभीरता से महसूस किया है । ' डॉ. कमलेश्वर भट्ट ' कहते हैं -

" किसने सुने / आर्त्ता स्वर वनो के /काटते रहे "[ii]

औद्योगिक युग में वन विनाश के नाते प्रकृति में संतुलन प्रक्रिया बिगड़ रही है । वनों की अवैध कटान की वेदना को एक आर्त स्वर के रूप में कमलेश्वर जी ने व्यक्त किया है । इसलिए ' डॉ आभा पूर्व ' ने हमें चेतावनी देते हैं कि -

"काटते वन देवो का क्रन्दन हैं/ महाप्रलय "[iii]

इस तरह 'डॉ बीना रानी गुप्ता' जंगल काटने के विरुद्ध और प्रदूषण रोकने का आदेश देते हुए व्यक्त करते हैं कि-

" कटे जंगल / रुको न प्रदूषण / त्रस्त जीवन "[iv]

हम ने अपनी सुविधाओं के लिए वनों का दोहन किया । वनों के नाश करने का कुफल भयानक है । जितना वन दुनिया में है उतना हम सुरक्षित हैं । लेकिन अनियंत्रित वन विनाश के नतीजा क्या होगा ? कमल जी की हाइकु कविता उदाहरण है -

" मर जायेगे / हरियाली के साथ / हम सब भी "[v]

जंगल है तो प्रकृति का अक्षय पात्र है । इसमें पेड़-पौधे- जीव-जंतु हैं । और पेड़ काटने के नुकसान बहुत अधिक ही है । वातावरण की गर्मी बढ़कर सूखापन, प्रलय आदि प्राकृतिक आदान आपदाएँ हो सकती है ।

"क्या गम है जो / धरा सूखी पड़ी है /बात बड़ी है "[vi]

आज पर्यावरण प्रदूषण एक भीषण समस्या ही है । इस हाइकु मीनु खरे जी का कहना है कि प्रदूषण और मनुष्य के हस्तक्षेप के कारण ही धरती सूख रही है । प्रकृति हमें जीने के लिए हर सहूलियत प्रदान की है । लेकिन विकास के नाम पर जंगलों काटकर कॉक्रीट जंगल बना रहे हैं । इसलिए प्रकृति पर आश्रित रहने वाले जीव जंतु की स्थिति भी कठीन हो गयी है ।

" खोयी गैरैय्या / ढूंढ ढूंढ आंगन / काक्रीट वन "[vii]

21वीं शताब्दी में वनों और पेड़ो का विनाश कर हम खुद का नाश कर रहे हैं और इसका फल भयानक ही होंगे । हिंदी के प्रसिद्ध हाइकुकार रमाकांत श्रीवास्तव के हाइकु में पर्यावरण की प्रधानता है -

" काट ही बैठो / हाथ - पैर अपने / पेड़ काट के "[viii]

इसमें हमें यह समझना है कि पेड़ काटने का मतलब है स्वयं अपने को काटना । क्योंकि आज मनुष्य भूल गया है कि पेड़ हमारे लिए वरदान है । शुद्ध वायु, फल, छाया को लेकर असंख्य आशीर्वाद देनेवाले वृक्षों का नाश करना अकलमंदी की बात नहीं है ।

" उन्हें बचा ले / जिन पेड़ों की जड़ें / सूखने वाली "[ix]

इसलिए ' डॉ. मिथिलेश दीक्षित ' जी हाइकु द्वारा हमें आह्वान करते हैं कि प्रकृति को बचाना हमारा फर्ज है। पेड़ को बचाकर हम अपने को और आनेवाले कल को ही बचाते हैं । वृक्ष कटाई के कारण आज बहुमूल्य प्राकृतिक सम्पति हमें नष्ट हो रही है । वायुमंडल की कार्बनडाइ ऑक्साइड को अपनाकर प्राणवायु पेड़ हमें देते हैं । शीतलता, उर्वरता और प्राण वायु की शुद्धिकरण जैसे वृक्षों के लाभ अनेक हैं । इसलिए ' देवी नागरानी ' व्यक्त करते हैं -

" पेड़ की छाँव / मुसाफिर को लगे / अपना गांव "[x]

भारतीय संकल्पना के अनुसार धरती सहनता का पर्याय मानते हैं । लेकिन आज हम उसके उल्टे रूप ही देखते हैं ।

" वृक्ष काटे तो / सूरज ने चिढ़ के /आग उगली "[xi]

इस हाइकु द्वारा मीनू जी ने पेड़ की कटाई की वजह से बढ़ती गर्मी और प्रकृति के बदलते विनाशकारी स्वरूप को प्रस्तुत किया है । आज पूंजीवादी युग में पानी, नदी आदि का नुकसान पहुंचा रहे हैं। नदियों में बढ़ता प्रदूषण से आज हम अकाल के कब्जे में है।

" नदी का नीर / कर दिया है गद्दा / आदमी अंधा "[xii]

यहां 'डॉ.सदाशिव' मनुष्य को अंधा कहकर बताते हैं कि इतने कूड़े-कचरे डालकर भी नदी का विनाश हो चुका है और शुद्ध पानी के लिए भारत में करोड़ों लोग तड़प रहे हैं, फिर भी जानबूझकर मनुष्य अंधे जैसे नाटक कर रहे हैं । बिना किसी पछतावा के फिर भी नदी को मलिन करते रहते हैं ।

" ढूंढना मिला / क्यों एक चौथाई भी / स्वच्छ निर्मल पानी "[xiii]

यहाँ हाइकुकार पानी के महत्व पर जोर करके कहते हैं कि एक चौथाई शुद्ध पानी भी अब धरती में असुलभ है। हिंदी हाइकुकार ' डॉ. के जी दीक्षित ' जी अपने हाइकु संग्रह ' महके मोती ' में गंगा घाट की आज की स्थिति वर्णित करते है ।

" लाल सफेद / कैसे कीड़े पड़े हैं / गंगा जल में "[xiv]

सरकार इतने खर्च गंगा के शुद्धिकरण के लिए आयोजित किया है फिर भी गंगा की हालत विनाश की ओर है । दूसरों के पापों को धोने वाली गंगा नदी अब खुद मलिन है । इसलिए ' अनामिका शक्य पूछती है कि -

" गंगा की धारा / अब मैली ही मैली / पावन कहाँ ? "[xv]

मनुष्य के पाप मात्र को नही, इस ओद्योगिकरण के दौर सभी कूड़ें - कचरे का वहन भी गंगा नदी करती है । नदी और नल का फर्क पहचानना मुश्किल है। औद्योगिक अपशिष्टों, रसायनों, हानिकारक धातुओं आदि को आज टन भर नदियों में छोडते हैं ।

प्रदूषित खंड के अनुसार जिन जलाशयों की बी.ओ. डी 6 मिलीग्राम से ज्यादा होता है उन्हें प्रदूषित जलाश्य कहा जाता है । नदी की प्रदूषण से संबंधित 'डॉ. रमा द्विवेदी ' की पक्तियाँ है -

" मछली मरी / तालाब के पानी से / दुनिया डरी "[xvi]

जल प्रदूषण पर्यावरण समस्या में एक बड़े संकट ही है । जल की अनुपस्थिति में जीना सरल बात नहीं है । क्योंकि दुनिया में सबसे ज्यादा हिस्सा जल है और मनुष्य शरीर में भी बड़ा हिस्सा जल का होता है । रेखा कक्कड़ की हाइकु है -

" तालाब सूखे / जंगल बचाना है / बरसो पानी "[xvii]

यह धरती हमसे कुछ नही मांगती है , सब कुछ देती हैं , लेकिन इसके बदले मनुष्य उसका नाश ही कर रहा है ।

" धरती रोयी / अब मेरी क्या खता / तू ही दे बता "

" रोया बादल / पेड़ नहीं तो कैसे / मैं कैसे लाऊँ जल "[xviii]

बारिश नहीं है तो उसका मुख्य कारण जंगल और पेड़ की विनाश है । कभी-कभी सूखापन है तो कभी कभी तांडव रुपी प्रलय है । मौसम के इस असंतुलित परिवर्तन के जिम्मेदार मनुष्य ही है । मनुष्य स्वयं अपने को पाश्चात्य संस्कृति की संन्तति मानकर प्रकृति को बिगाड़ते है ।

'' पानी दूषित / है जीवन भर / वायु विषैली "[xix]

करोड़ों का बजट नदियों का सफाई के लिए आयोजित किया है लेकिन मनुष्य नदी में फिर से गन्दगी डालते रहते हैं। इससे पानी, वायु, मिटटी की नैसर्गिकता नष्ट हो रही है । हिंदी की महिला हाइकुकार ' डॉ मिथिलेश दीक्षित' भी हमारे इस बर्ताव को अनाचार कहकर विरोध करती है, क्योंकि पूरी प्रकृति को पावन रखना हमारा कर्तव्य है । -

" क्या आचरण / प्रदूषित हो गया / वातावरण "[xx]

'डॉ सुरचना द्विवेदी ' भी इस तरह प्रदूषण को अनाचार कहती है -

" पर्यावरण /प्रदूषित करता /अनाचार ही

वातावरण / सुशोभित करता / सदाचार ही "[xxi]

भारत में प्रकृति ईश्वर तुल्य है । पेड़ - पर्वत - नदियों को ईश्वर तुल्य मानकर पूजा करने वाली संस्कृति भारत में है । लेकिन पाश्चात्य संस्कृति के दुष्प्रभाव से मनुष्य अब उसकी नाश ही करते हैं । कूड़ा - कचरा डालकर उसे प्रदूषित करके हम सदाचार से अनाचार करने वाले हीन बन गए हैं -

'' पीपल काटा / फ्लाईओवर बना / विकास हुआ "[xxii]

" वृक्षों के नाम / भेजा है विकास ने / डेथ वारट"[xxiii]

विकास आवश्यक है लेकिन प्रकृति के परवाह किए बिना विकास किया गया तो उसका दुष्प्रभाव हानिकार होगा । उद्योग, अनियोजित शहरीकरण, भूमि अधिग्रहण जैसी समस्यएँ पर्यावरण के खराब के कारण ही है । इसलिए प्रकृति संरक्षण हमारा पाबंदी है । ' डॉ मिथिलेश दीक्षित ' के अनुसार - " पर्यावरणीय प्रदूषण के फैलाव से प्रकृति में कुछ विसंगत बदलाव आने लगते हैं । वर्तमान हाइकुकारों की दृष्टि इस ओर भी गयी है औरविविध प्रसंगों में, विविध रूपों और विविध भागिमाओं में वे हाइकु के माध्यम से अपनी बात कह उठते हैं । "[xxiv]

आज पर्यावरण समस्या ने अत्यंत विकराल रूप धारण किया है । हाइकु सृजन द्वारा इन अनाचारों विरुद्ध हाइकुकार ऊँगली उठाते है । मीनु खरे जी का हाइकु इसका सर्वोत्तम उदाहरण है ।

" कौन सा रंग / तुझे चाहिए धरा / वे बोली हरा "[xxv]

दूसरा हाइकु है -

" धरा का कर्ज / हम कैसे चुकाये / वृक्ष लगायें "[xxvi]

आम लोगों को जागरूक बनाकर पर्यावरण समस्यओं को सुलझाना होगा । सभी पृथ्वीवासियों मिलकर प्रकृति की रक्षा करना है । ' डॉ रेश्मी पांडा मुखर्जी ' यही संदेश बताते हैं -

" जिम्मेदारी है / प्रकृति और भू की / मानव पर "[xxvii]

इसके अलावा ' कुंवर कुसुमेश ' का हाइकु है -

" पर्यावरण / बचाना है अगर / तो करों प्रण "[xxviii]

यदि हम प्रदूषण से प्रकृति को बचाये तो हम अपने जीने के अधिकार का ही बचाते है । इस विनाश का मंथन हम नहीं करें है तो भविष्य में यह कदम मुश्किल ही होगे । इसलिए ' अशोक अंजुम ' जी कहते हैं -

" प्रदूषण ने / फैला दिया है पर /मानव डर "[xxix]

प्रदूषण से बचाने के लिए वृक्ष लगाना है। प्लस्टिक के उपयोग से परहेज करके प्रकृति को संतुलित रखना है। कूड़े-कचरे जल, मिट्टी आदि में डालना नहीं चाहिए । इस तरह छोटे-मोटे कदम हर व्यक्ति लेना हैं, नहीं तो प्रदूषण की भीषणता को भुगतान कठिन होगा ।' डॉ मिथिलेश ' जी कहती है -

" भूल न जाना / इस धरती पर / हम आये क्यों ?"[xxx]

हाइकुकारों ने पर्यावरण का यथार्थ चित्रण प्रतीक, बिंबों, चित्रों आदि के द्वारा किया है । प्राकृतिक उपदानों के अन्धे नुकसानदायक तत्वों से हमको वातावरण की रक्षा करना है । अपनी हाइकु रचनाओं द्वारा सभी हाइकुकार यही संदेश देते हैं । इसमें मीनू खरे, डॉ मिथिलेश दीक्षित, भगवत दुबे, बीनारानी गुप्ता, मुईनुद्दीन अतहर, मीना अग्रवाल, राधेश्याम, गंगे कमल आदि हाइकुकारों के नाम पर्यावरण विमर्श के संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय है । पर्यावरण प्रदूषण जैसी ज्वलंत समस्या के प्रति हाइकुकार चिंता दर्श रहे है, क्योंकि मनुष्य के सहचारी प्रकृति का सृजित करने में हिंदी हाइकुकार अधिक सजग नज़र आते हैं ।

संदर्भ सूची :

[1] डॉ. सुरचना त्रिवेदी, पंचम सरगम 2015, पृ 79

[1] कादम्बनी, फरवरी 1990, पृ 97

[1] डॉ. मिथिलेश दीक्षित, सीपियों बंद सागर 2016, पृ 28

[1] वही, पृ 61

[1] कादम्बनी, फरवरी 1990, पृ 97

[1] मीनु खरे, खोयी कविताओं के पत्ते 2018. पृ 29

[1] वही, पृ 55

[1] हाइकु 1989, पृ 123

[1] डॉ. अमरेन्द्र, डॉ. मिथिलेश दीक्षित का हाइकु साहित्य - दिशा एंव दृष्टि 2014, पृ 49

[1] डॉ. मिथिलेश दीक्षित, हिन्दी हाइकु काव्य स्वरुप एवं विकास 2015, पृ 46

[1] मीनु खरे, खोयी कविताओं के पत्ते 2018. पृ 36

[1] डॉ. मिथिलेश दीक्षित, हिन्दी हाइकु काव्य स्वरुप एवं विकास 2015, पृ 161

[1] मीनु खरे, खोयी कविताओं के पत्ते 2018. पृ 54

[1] डॉ. के. जी. दीक्षित दद्द जी, महके मोती, 2017, पृ 94

[1] डॉ. मिथिलेश दीक्षित, सीपियों बंद सागर 2016, पृ 24

[1] वही, पृ 91

[1] डॉ. मिथिलेश दीक्षित, हिन्दी हाइकु काव्य स्वरुप एवं विकास 2015, पृ 155

[1] मीनु खरे, खोयी कविताओं के पत्ते 2018. पृ 37

[1] डॉ. के. जी. दीक्षित दद्द जी, महके मोती,2017, पृ 90

[1] डॉ. अमरेन्द्र , डॉ. मिथिलेश दीक्षित का हाइकु साहित्य - दिशा एंव दृष्टि 2014, पृ 49

[1] डॉ. सुरचना त्रिवेदी, पंचम सरगम 2015 पृ 82-83

[1] मीनु खरे, खोयी कविताओं के पत्ते 2018. पृ 37

[1] वही, पृ 37

[1] डॉ. मिथिलेश दीक्षित, सीपियों बंद सागर 2016, पृ 74

[1] मीनु खरे, खोयी कविताओं के पत्ते 2018. पृ 30

[1] वही, पृ 30

[1] डॉ. मिथिलेश दीक्षित, सीपियों बंद सागर 2016, पृ 103

[1] डॉ. मिथिलेश दीक्षित, हिन्दी हाइकु काव्य स्वरुप एवं विकास 2015, पृ 125

[1] वही, पृ 118

[1] डॉ. अमरेन्द्र, डॉ .मिथिलेश दीक्षित का हाइकु साहित्य - दिशा एंव दृष्टि 2014 , पृ 48

डॉ. सुरचना त्रिवेदी, पंचम सरगम 2015, पृ 79

[ii] कादम्बनी, फरवरी 1990, पृ 97

[iii] डॉ. मिथिलेश दीक्षित, सीपियों बंद सागर 2016, पृ 28

[iv] वही, पृ 61

[v] कादम्बनी, फरवरी 1990, पृ 97

[vi] मीनु खरे, खोयी कविताओं के पत्ते 2018. पृ 29

[vii] वही, पृ 55

[viii] हाइकु 1989, पृ 123

[ix] डॉ. अमरेन्द्र, डॉ. मिथिलेश दीक्षित का हाइकु साहित्य - दिशा एंव दृष्टि 2014, पृ 49

[x] डॉ. मिथिलेश दीक्षित, हिन्दी हाइकु काव्य स्वरुप एवं विकास 2015, पृ 46

[xi] मीनु खरे, खोयी कविताओं के पत्ते 2018. पृ 36

[xii] डॉ. मिथिलेश दीक्षित, हिन्दी हाइकु काव्य स्वरुप एवं विकास 2015, पृ 161

[xiii] मीनु खरे, खोयी कविताओं के पत्ते 2018. पृ 54

[xiv] डॉ. के. जी. दीक्षित दद्द जी, महके मोती, 2017, पृ 94

[xv] डॉ. मिथिलेश दीक्षित, सीपियों बंद सागर 2016, पृ 24

[xvi] वही, पृ 91

[xvii] डॉ. मिथिलेश दीक्षित, हिन्दी हाइकु काव्य स्वरुप एवं विकास 2015, पृ 155

[xviii] मीनु खरे, खोयी कविताओं के पत्ते 2018. पृ 37

[xix] डॉ. के. जी. दीक्षित दद्द जी, महके मोती,2017, पृ 90

[xx] डॉ. अमरेन्द्र , डॉ. मिथिलेश दीक्षित का हाइकु साहित्य - दिशा एंव दृष्टि 2014, पृ 49

[xxi] डॉ. सुरचना त्रिवेदी, पंचम सरगम 2015 पृ 82-83

[xxii] मीनु खरे, खोयी कविताओं के पत्ते 2018. पृ 37

[xxiii] वही, पृ 37

[xxiv] डॉ. मिथिलेश दीक्षित, सीपियों बंद सागर 2016, पृ 74

[xxv] मीनु खरे, खोयी कविताओं के पत्ते 2018. पृ 30

[xxvi] वही, पृ 30

[xxvii] डॉ. मिथिलेश दीक्षित, सीपियों बंद सागर 2016, पृ 103

[xxviii] डॉ. मिथिलेश दीक्षित, हिन्दी हाइकु काव्य स्वरुप एवं विकास 2015, पृ 125

[xxix] वही, पृ 118

[xxx] डॉ. अमरेन्द्र, डॉ .मिथिलेश दीक्षित का हाइकु साहित्य - दिशा एंव दृष्टि 2014 , पृ 48

हिंदी साहित्य : वैश्वीकरण का प्रभाव

डॉ. अजित एस भरतन
असिस्टेंट प्रोफेसर
चेतना कॉलेज , त्रिशूर

भारत के इतिहास में एक गौरवपूर्ण युग था, जब भारत का सांस्कृतिक संवाद, यूनान, मिश्र, रोम, चीन, जापान, कोरिया, मंगोलिया तथा एशिया के अन्य क्षेत्रों के सामान्यजन के साथ बड़ी आत्मीयता के साथ संवाद एवं अध्ययन करते थे। नालंदा और तक्षशिला जैसे महा विश्वविद्यालयों में दुनिया भर के छात्र अध्ययन के लिए आते थे।

वहाँ उस समय गुरु को आचार्य की विशिष्ट औदा प्राप्त था। वहाँ से निकलनेवाले छात्र सर्वगुण श्रेष्ठ भारतीय संस्कृति के वाहक बनकर विश्व की ज्ञान की ज्योति को जलाते रहे। धीरे-धीरे विदेशी हुकूमतों का आक्रमण से ऐसे महाविद्यालयों की क्षति हुई।

एक तरफ मुगलों का अत्याचार में भक्ति काल का उदय होना स्वाभाविक था। कबीर,सूर, तुलसी जैसे कवियों की वाणी देश में गूँजी और लोक जीवन में सांस्कृतिक विकास भी हुआ। बाद में अंग्रेजों की सत्ता ने भारतीय संस्कृति,साहित्य और दर्शन पर प्रहार करता रहा । स्वामी विवेकानंद ,दयानंद सरस्वती,अरविंद घोष,लोकमान्य तिलक, रविंद्रनाथ टैगोर और महात्मा गांधी की वाणी पूरे साहित्य जगत को प्रभावित किया। जिससे प्रेमचंद, बंकिमचंद्र जैसे साहित्यकारों को प्रेरणा मिली ।

स्वतंत्र भारत के लेखक रूसी, फ्रेंच,जर्मन, अमेरिकी, अंग्रेज एवं अन्य देशों के लेखों के साथ मैत्री बनाई हुई थी। निराला,दिनकर पंत, बालकृष्ण नवीन, रांगेय राघव जैसे साहित्यकारों ने समाजवाद को खूब समझ भी लिया था। एक तरफ रूस की समाजवादी क्रांति का प्रभाव था, फिर भी लेनिन और मार्क्स का प्रभाव बौद्धिक स्तर पर ही सीमित रहा। जिसे हम एक प्रकार का वैश्वीकरण भी कर सकते है।

सोवियत संघ के विघटन के बाद विश्व एक ध्रुवीय बन गया और पश्चिम के उद्योग तथा बाजार की आवश्यकता से वैश्वीकरण का एक नया दौर शुरू हुआ। निर्मल वर्मा ने प्रवासी भारतीयों के जीवन को भी कथा साहित्य में दर्शाया गया है। वैश्वीकरण के दौर में बहुत बड़ी संख्या में भारत में लोग दूसरे देश में जाकर बसने लगे। विश्व हिंदी सम्मेलन विदेशी धरती पर हुए हैं।

जहाँ तक हिंदी साहित्य का बात आने पर वैश्वीकरण का प्रभाव इस प्रकार रटा जा रहा है कि रोमांटिसिज्म,रियलिज्म, नैचुरलिज्म,सिंबलिज्म जैसे पर पूरी तरह छा गए। ऐसा लगता है हमारा साहित्य पश्चिमी सभ्यता का मोहताज़ बन गया। अस्मिता की तलाश हमें कहाँ से कहाँ तक पहूँचाया है ।

ऐसा लगता है कि वैश्वीकरण ने दबी वासनाओं को उकसाकर वासुदेव कुटुंब को शिथिल करने की जुर्रत या कोशिश की है। वैश्वीकरण से हमारे मूल परंपरागत शुद्ध भाषा, संस्कृति,सभ्यता एवं शिष्टाचार का लगातार बलात्कार होता आ रहा है। हमारी सर्वगुण मूलभाषा में अन्य विदेशी भाषाओं और विदेशी संस्कृति के बेदखल हस्ताक्षेप लगातार हो रहा है। एक अच्छे साहित्यकार एवं भाषा प्रेमी होने के नाते हमारा कर्तव्य है वैश्वीकरण से पकट से बचते रहें।

सहायक ग्रंथ सूची

1.हिंदी साहित्य का इतिहास -आचार्य रामचंद्र शुक्ल

2.हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - डॉ. रामकुमार वर्मा

3.हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास- डॉ. गणपति चंद्रगुप्त

4.हिंदी साहित्य का अतीत -विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

5.हिंदी साहित्य की उद्भव और विकास-आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

भारतीय संस्कृति हमारी पहचान

सचिन के सजी
पूर्व विद्यार्थी
नैपुण्या इंस्टिट्यूट ऑफ़ मैनेजमेंट एंड इनफार्मेशन टेक्नोलॉजी

भारत में एक समृद्ध संस्कृति है और यह हमारी पहचान बन गई है। धर्म, कला, बौद्धिक उपलब्धियों या प्रदर्शनकारी कला में हो, इसने हमें एक रंगीन, समृद्ध और विविध राष्ट्र बनाया है। भारतीय संस्कृति और परंपरा निबंध भारत में जीवंत संस्कृतियों और परंपराओं के लिए एक दिशानिर्देश है। जैसा कि हम जानते हैं कि भारत अपनी संस्कृति और परंपराओं के लिए प्रसिद्ध है। भारत एक ऐसी भूमि है जहाँ पूर्ण विविध संस्कृतियाँ हैं। भौगोलिक रूप से भी संस्कृतियाँ और परंपरा भारत के लिए उपयुक्त हैं। भारतीय कला को धर्मशास्त्रीय, श्रेणीबद्ध के रूप में परिभाषित किया जा सकता है या पारंपरिक के रूप में सबसे अच्छा है। चूंकि भारत एक बहु धार्मिक देश है, इसलिए प्रत्येक धार्मिक की अपनी तरह की कला और संस्कृति हैं।

भारत कई आक्रमणों का घर था और इस प्रकार यह केवल वर्तमान विविधता में जुड़ गया। आज, भारत एक शक्तिशाली और बहु-सभ्य समाज के रूप में खड़ा है क्योंकि इसने कई संस्कृतियों को अवशोषित किया है और आगे बढ़ा है। यहां के लोगों ने विभिन्न धर्मों, परंपराओं और रीति-रिवाजों का पालन किया है।हालांकि लोग आज आधुनिक हो रहे हैं, नैतिक मूल्यों पर पकड़ रखते हैं और रीति-रिवाजों के अनुसार त्योहार मनाते हैं। इसलिए, हम अभी भी रामायण और महाभारत से महाकाव्य सीख रहे हैं और सीख रहे हैं। इसके अलावा, लोग अभी भी गुरुद्वारों, मंदिरों, चर्चों, और मस्जिदों में घूमते हैं।भारत में संस्कृति लोगों के रहन-सहन, संस्कारों, मूल्यों, विश्वासों, आदतों, देखभाल, ज्ञान आदि से सब कुछ है। इसके अलावा, भारत को सबसे पुरानी सभ्यता माना जाता है जहां लोग अभी भी देखभाल और मानवता की अपनी पुरानी आदतों का पालन करते हैं।

इसके अतिरिक्त, संस्कृति एक ऐसा तरीका है जिसके माध्यम से हम दूसरों के साथ व्यवहार करते हैं, हम कितनी आसानी से विभिन्न चीजों पर प्रतिक्रिया करते हैं, नैतिकता, मूल्यों और विश्वासों के बारे में हमारी समझ।पुरानी पीढ़ी के लोग अपनी मान्यताओं और संस्कृतियों को आने वाली पीढ़ी तक पहुंचाते

हैं। इस प्रकार, हर बच्चा जो दूसरों के साथ अच्छा व्यवहार करता है, वह पहले से ही दादा-दादी और माता-पिता से उनकी संस्कृति के बारे में जान चुका होता है।इसके अलावा, यहां हम फैशन, संगीत, नृत्य, सामाजिक मानदंडों, खाद्य पदार्थों आदि जैसे हर चीज में संस्कृति देख सकते हैं। इस प्रकार, भारत व्यवहार और विश्वास रखने के लिए एक बड़ा पिघलने वाला बर्तन है जिसने विभिन्न संस्कृतियों को जन्म दिया।

भारतीय संस्कृति और धर्म- ऐसे कई धर्म हैं जिन्होंने अपनी उत्पत्ति सदियों पुरानी पद्धतियों में पाई है जो पाँच हज़ार साल पुराने हैं। इसके अलावा, यह माना जाता है क्योंकि हिंदू धर्म की उत्पत्ति वेदों से हुई थी।इस प्रकार, पवित्र माने जाने वाले सभी हिंदू शास्त्रों को संस्कृत भाषा में लिखा गया है। इसके अलावा, यह माना जाता है कि सिंधु घाटी में जैन धर्म की प्राचीन उत्पत्ति और अस्तित्व है। बौद्ध धर्म दूसरा धर्म है जो गौतम बुद्ध की शिक्षाओं के माध्यम से देश में उत्पन्न हुआ था।

कई अलग-अलग युग हैं जो आए हैं और चले गए हैं लेकिन वास्तविक संस्कृति के प्रभाव को बदलने के लिए कोई भी युग बहुत शक्तिशाली नहीं था। तो, युवा पीढ़ी की संस्कृति अभी भी पुरानी पीढ़ियों से जुड़ी हुई है। साथ ही, हमारी जातीय संस्कृति हमें हमेशा बड़ों का सम्मान करना, अच्छा व्यवहार करना, असहाय लोगों की देखभाल करना और जरूरतमंद और गरीब लोगों की मदद करना सिखाती है।

इसके अतिरिक्त, हमारे देश में एक महान संस्कृति है कि हमें हमेशा देवताओं की तरह अतिथि का स्वागत करना चाहिए। यही कारण है कि हमारे पास एक प्रसिद्ध कहावत है 'अथिति देवो भव'। तो, हमारी संस्कृति में मूल जड़ें आध्यात्मिक अभ्यास और मानवता हैं।

राकेश कुमार सिंह के उपन्यासों में चित्रित आदिवासी संस्कृति और कला

ऐश्वर्या अनिलकुमार
शोध छात्रा
महाराजास् कॉलेज, एरणाकुलम

संस्कृति और कला का संबंध प्रायः हर मनुष्य के साथ होता है । कला संस्कृति को लेकर चलती है । एक प्रकार से हम कह सकते हैं कि कला संस्कृति की वाहिका है । हर एक देश की असली पहचान उसकी विविध संस्कृति और कलाओं से होती है । विश्व इतिहास में भारतीय संस्कृति विशेष महत्व रखती है । भारत की संस्कृति संसार के प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है । इसलिए ही उसका सम्बन्ध भारत की आदिम जनजातियों से अधिक निकट है । भारत में 200 से अधिक जनजातियां और उपजनजातियां पाई जाती हैं । मुण्डा, खासी, गारो, भील, मीणा, कोल आदि इनमें प्रमुख हैं । प्रत्येक जनजातियों की अपनी संस्कृति और सामाजिक संरचना होती है । इसके अन्तर्गत सहभागिता, भाईचारा, जाति-लिंग समानता, गीत-नृत्य, प्रकृति-प्रेम आदि आते हैं । आदिवासी संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता है प्रकृति से निकटस्थ संबंध । आदिवासियों की 'अरण्य संस्कृति' में कई सारी विशेषताएं हैं । उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति जंगलों से होती है । वे उतना ही जंगल से लेते हैं, जितना उनके जीवन आगे बढ़ने केलिए आवश्यक है । वे अपनी संस्कृति की तरह जंगलों को भी अपने आने वाली पीढ़ी केलिए बचाए रखते हैं । उनकी संस्कृति में पौराणिक-ऐतिहासिक कथाएं और पीढ़ियों के यथार्थ इतिहास उपस्थित हैं । आदिवासियों की कलात्मक अभिव्यक्ति केवल आराम के क्षणों को भरने या मनोरंजन मात्र नहीं है, बल्कि उनके जीवन को प्रेरणा प्रदान करते हैं । इनके नृत्य-गीत, संगीत, कहानी, कला आदि धार्मिक भावनाओं और क्रियाशील सृजनात्मकता से जुड़ी हुई हैं । कला आदिवासियों के सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक मान्यताओं से एक विशेष रिश्ते या अटूट संबंध रखते हैं । आदिवासी संस्कृति और कला बाहरी दुनिया की कला और संस्कृति से भिन्न है । नई संस्कृति और औद्योगिक विकास ने आदिवासी संस्कृति और कला पर ठोस प्रहार किया है । इसलिए आदिवासी समाज अपने सामाजिक और सांस्कृतिक हितों की रक्षा केलिए आगे आया । अपनी अभिव्यक्ति साहित्य के द्वारा करने लगे । जल, जंगल और ज़मीन की रक्षा की मांग करने लगे ।

साहित्य जिस प्रकार समाज का दर्पण होता है उसी प्रकार संस्कृति का भंडार है । साहित्य में दीर्घ कालीन परंपरा का सुदृढ़ नीव है जिस पर संस्कृति विकसित हुई है । साहित्य और संस्कृति एक दूसरे के बिना अधूरी है । भारतीय साहित्य में भारतीय संस्कृति और कला के कई पहलुओं को उजागर किया है । भगवत शरण उपाध्याय संस्कृति और सामाजिक जीवन के सम्बन्ध को व्यक्त करते हुए लिखते हैं – "संस्कृति का संबंध सामाजिक जीवन से अधिक है, जब आदमियों का एक दल या समाज एक ही रीती से कुछ करता है, एक ही विश्वास रखता है, एक

ही प्रकार के आदर्श सामने रखता है, अपने पुरखों के कामों को समान रुप से आदर, गर्व और गौरव की चीज़ समझता है तब संस्कृति का जन्म होता है । संस्कृति आदमी के सामाजिक जीवन का प्राण है ।"[1]

साहित्य में उपन्यास साहित्य सबसे प्रौढ़ और प्रमुख विधाओं से एक है । उपन्यास साहित्य में जीवन के विस्तृत यथार्थ को आत्मसार्थ करते हुए समाज के समक्ष व्यक्त करने की क्षमता है । इसीलिए उपन्यास में संस्कृति की अभिव्यक्ति भरपूर मात्रा में मिलती है । उपन्यासों में जनजातीय जीवन, संस्कृति, कला, रीति-रिवाज, पर्व-त्यौहार आदि को रेखांकित करते हुए आदिवासी अस्मिता को उजागर किया है ।

बीसवीं सदी के अंतिम दशक में हिंदी साहित्य में अपना उपस्थिति दर्ज किये रचनाकारों में महत्वपूर्ण है राकेश कुमार सिंह । उनका जन्म 1960 में पलामू जिला, झारखण्ड के गुरहा गाँव में हुआ था । उन्होंने ज़्यादातर रचनाओं में अपनी जन्मभूमि झारखण्ड को आधार बनाया है । अपनी रचनाओं द्वारा पठार के चिर उपेक्षित आदिवासी जीवन, संघर्ष और दुःख को बाहरी दुनिया को दिखाने का प्रयास की है । संस्कृति और कला आदिवासी जीवन से जुड़े रहने के कारण उनके रचनाओं में आदिवासियों के विभिन्न संस्कृति, कला, नृत्य-गीत, त्योहार, पर्व आदि का बहुमूल्य चित्रण है । राकेश कुमार सिंह जी के पाँच उपन्यास हैं -

1. पठार पर कोहरा (2003)
2. जहाँ खिले है रक्त पलाश (2003)
3. जो इतिहास में नहीं है (2005)
4. हुल पहाड़िया (2012)
5. महाअरण्य में गिद्ध (2015) आदि ।

इन सारे उपन्यासों में झारखण्ड के आदिवासियों की विभिन्न विशेषताओं का उल्लेख इतनी गहराई से है कि उपन्यास हर एक त्योहार-पर्व, रीति-रिवाज़, नृत्य-गीत के वैशिष्ट्य को अनावृत करते चलते हैं । राकेश कुमार सिंह जी के उपन्यास आदिवासी जीवन, दुःख और संघर्ष को ही नहीं बल्कि उनके बहु-आयामी संस्कृति को पाठकों के सामने रखते हैं ।

झारखण्ड के वर्तमान आदिवासी जीवन को आधार बनाकर लिखा गया एक उपन्यास है 'पठार पर कोहरा' । अवसर रहित, अभावग्रस्त और शोषित आदिवासी समाज का दस्तावेज़ है यह उपन्यास । आर्थिक तानाशाही ने झारखण्ड के आदिवासी समूह के संस्कार, रहन-सहन, और परम्पराओं को विकृत किया है । प्रस्तुत उपन्यास के केन्द्र में 'मुण्डा' जनजाति है । मुण्डा भारत की एक प्रमुख जनजाति है, जो मुख्य रूप से झारखण्ड के छोटा नागपुर क्षेत्र में निवास करता है । मुंडा संस्कृति की समाजिक व्यवस्था बहुत ही सरल और बुनियादी है । मुण्डा जनजाति मुख्य रुप से सिंगबोंगा देवता पर विश्वास रखते हैं । पीढ़ी दर पीढ़ी चले आये उनके विश्वासों की कथा इससे जुड़े हुए हैं- "सेंगल-दा में कभी भयानक आग बरसी थी, आसमान से आग की बरखा हो रही थी मुंडा लोगों के दादा-परदादाओं पर । तब प्रकट हुए थे सिंगबेंगा । सर्वशक्तिमान देवता, मुंडा लोगों के रक्षक...! सिंगबेंगा ने मुण्डाओं

को केंकड़े के छिछले गढ़े में छुपा दिया था । मुण्डा लोगों की जान बचायी थी, नहीं तो आज मुण्डाओं को 'बांस–बिरिख' (वंश-वृक्ष) का नाश हो चूका होता ।"[2]

'महाअरण्य में गिद्ध' उपन्यास में भी सिंगबेंगा का उल्लेख मिलते है –"...लेकिन सिंगबेंगा को भी क्यों दोष देता बुचानी मुरमू सिंगबेंगा ने जो किया था ठीक ही किया था । सिंगबेंगा की इच्छा के बिना कोई धरती पर आ सकता है, न धरती से उठ सकता है ।"[3]

आदिवासियों के बीच पूर्वजों के प्रति श्रद्धा या पूर्वज पूजा की बहुत अधिक महत्त्व है । वे उन्हें ईश्वर के समान मानकर अतीत पर गर्व करते हैं । 'पठार पर कोहरा' उपन्यास में आदिवासियों के वीर नायक बिरसा मुण्डा का उल्लेख करते हुए राकेश जी ने लिखा है – "बिरसाइत... यानी मुण्डाओं के भगवान सामान बिरसा मुंडा के साथी लड़ाके जो बिरसा के विद्रोह, उलगुलान में बिरसा महान के साथ बाँह से बाँह गहकर लड़े थे । फिरंगियों से लोहा लड़ाया था ।"[4]

संथाल आदिवासी समुदाय पूर्वजों के प्रति स्नेह, श्रद्धा, विश्वास रखते हुए अपने आपको एक वीर वंश की सन्तान मानते हैं । 'महाअरण्य में गिद्ध' उपन्यास के नायक पात्र बुचानी मुरमू अपनी लड़ाई में पूर्वजों से प्रेरणा लेते हैं । "भगवान बिरसा के कन्धे से कन्धा जोड़कर फिरंगियों से लोहा लड़ाने वाले लोग थे बुचानी मुरमू के पुरखे । वनवीर सिद्धू- कान्हू जैसे पूर्वजों का लहू था बुचानी मुरमू की देह में । प्राण पर अड़ने वाले और आने केलिए जूझकर जान मेटने वाले चाँद और भैरव जैसे लड़ाका संतालों का वंशज था बुचानी मुरमू ।"[5]

झारखण्ड के आदिवासियों के बीच जो पूजा पद्धति या परंपरा विद्यमान है वे है *सरना धर्म*। सरना धर्म में पेड़, पौधे, पहाड़ आदि प्राकृतिक संपदाओं की पूजा की जाती है । उनके धार्मिक स्थल कोई इमारत या भवन नहीं है बल्कि किसी महावृक्ष या पहाड़ होता है । "जंगल में देवस्थल तो जगह-जगह मिल जाते थे । क्षीण आबादी और जंगल झाड के अबाध सिलसिले के बीच किसी महावृक्ष की जड़ को घेरे मिट्टी के अनगढ़ चबूतरे...। वृक्ष की जड़ को बाँहों में समेटे बैठे माटी के चबूतरे पर पकी मिट्टी की आकृतियाँ... हाथी-धोड़े ...।"[6]

आदिवासी लोग अभावग्रस्त जीवन जीने पर भी त्योहार, उत्सव, पर्व आदि वर्ष भर मनाए जाते हैं । पर्व-त्योहारों से उनके मनोरंजन और विश्वास जुड़े हुए हैं । राकेश कुमार सिंह जी ने 'पठार पर कोहरा' उपन्यास में झारखंड के आदिवासियों के विभिन्न त्योहारों को प्रस्तुत की है । "सरना - स्थल पर करमवृक्ष की मोटी डाल गाड़ी गई है । नदी जल से सींचा गया है करमदेऊ का यह प्रतीक... करम की डाल । सरजोम, सखुआ और करम के पेड़ों को भूलने का अर्थ है - झारखंड की संस्कृति को बिसरा देना ।"[7]

करमा मुण्डा, संथाल आदिवासियों का प्रमुख त्योहार है । आदिवासी समाज में करमवृक्ष मर्यादापुरूष के रूप में पूजित है । आदिवासियों का विश्वास है कि करमवृक्ष की पूजा से अच्छी फसल, पशुओं की रक्षा, स्वस्थ सन्तान, किशोरों केलिए सुयोग्य जीवनसाथी, शांति, सुख-समृद्धि आदि कामनाओं की पूर्ति होती है । करमा त्योहार के साथ आदिवासियों की एक लोककथा जुड़ी हुई है । त्योहार के दिन किशोर युवक-युवतियाँ खेतों से गीली मिट्टी

उखाड़कर लाते हैं । फिर करम की डाल काटकर लाते हैं । गांव के पहान के नेतृत्व में 'करमा-धरमा' की कथा सुनाई जाती है ; सारी रात नाचते-गाते है । अगले दिन करम की डाली नदी में प्रवाहित कर दी जाएंगी ।

उरांव, मुण्डा आदिवासियों के एक प्रमुख पर्व है *सरहुल*। इसमें सरना देवता की पूजा की जाती है । हर एक गांव में प्रत्येक सरना स्थल होती है । सरना स्थल पर गोबर-मिट्टी से लिपाई-पुताई की जाती है और गांव के प्रधान पूजारी पूजा की जाती है । 'पठार पर कोहरा' उपन्यास में सरहुल का वर्णन मिलते हैं - "सखुए का वृक्ष पूज्य है जंगल में । सखुए की डालियों की पूजा होती है आज । सरहुल में सखुए की डालियों पर फल - फूल और नैवेद्य चढ़ाए जाते हैं । आज न किसी ने लकड़ी काटी है ना ही अभी तक किसी ने दातुन ही चबाया है । सिंगबोंगा के आशीर्वाद है वृक्ष । आज यदि वृक्ष काटे तो देवता के सारे आशीर्वाद भी कट जाएंगे ।"[8]

सारे त्योहार प्रायः एक समान है फिर भी सब का अपना महत्त्व है । सब के पीछे आदिवासी जीवन परंपरा से जुड़े किसी न किसी कारण या विश्वास रहते है । 'महाअरण्य में गिद्ध' उपन्यास में भी सरहुल पर्व का उल्लेख हुआ है । 'महाअरण्य में गिद्ध' अलग झारखण्ड राज्य की मांग को लेकर हुए संघर्ष और आन्दोलनों को आधार बनाकर लिखा गया उपन्यास है । बिहार विभाजन की पृष्ठभूमि में लिखे गए इस उपन्यास में आदिवासी संस्कृति की कई पहलुओं का चित्रण मिलते हैं । विस्थापन से लुप्त होती आदिवासी संस्कृति को उपन्यास में देख सकते हैं । "परम्पराजीवी और उत्सवधर्मी आदिवासियों की संस्कृति में तभी तो जीवित है यह कहावत की चलना ही नृत्य है, बोलना ही गीत...! सेन से सुसुन, का जी गे दुरंग ...! तभी तो जीवट से भरे वनस्पतियों के जीवन में भात के बाद कोई दूसरी बड़ी चिंता नहीं होती, क्योंकि वे जानते है की यदि किसी समस्या का हल संभव है तो समस्या के प्रति चिंतित रह कार पर्व-त्योहारों के उल्लेख से क्यों वंचित रहे? क्योंकि वे समझते है की यदि किसी समस्या का हल होना असंभव है तो चिंतित होने से भी क्या होना ? व्यर्थ की चिन्ता में आज के रास-रंग को क्यों व्यर्थ होने दे ?"[9]

'जो इतिहास में नहीं है' झारखण्ड के संताल, उरांव जनजाति को केंद्र में रखकर लिखा गया है । "संताल समाज में हर मौसम का अपना राग,रंग और त्योहार होता है । सावन में कारम बोंगा तो भादों में जानताड़ बोंगा, अश्विन में दासाय दाडान तो कार्तिका में सोहराई है – असढ़िया बोंगा ।"[10]

पुत्र के लंबे जीवन, सुख, स्वस्थ और समृद्धि के लिए माताओं द्वारा उपवास रखते हैं, इसे 'खरजितिय का पर्व' कहा जाता है । मूलतः यह पर्व गैर-आदिवासी समाज या सादानों का है । लेकिन आदिवासियों के बीच भी खरजितिया पर्व मनाया जाता है । यह बदलाव आदिवासी वन-प्रांतर में दिकुओं के आगमन के बाद आया है । रीति-रिवाजों के आदान-प्रदान की यह परंपरा बहुत समय से एक साथ रहने से जनजातियों और दिकुओं के बीच विकसित सामासिक संस्कृति का परिणाम है । "मुण्डा समाज में पहले न तो पति केलिए तीज-व्रत होता था और न ही बेटे केलिए जितिय, मगर मिश्रित आबादी है गजलीठोरी की । रीति-रिवाज लोक-व्यवहार और पर्व- त्योहार... सब साझे है । सादानों के आरखांड में शामिल होते हैं मुण्डा । सहुआइन को करमा-धरमा का नेम-टेम सिखाती है रंगनी और सहुआइन से रंगेनी ने सीखा है खरजितिया करना !"[11] पर्व-त्योहार के समय गाँव के सारे लोग एक जुट हो जाते हैं । सारे दुःख और अभावों को भूलकर ख़ुशियाँ मनाते हैं ।

पहाड़िया जनजाति के बीच प्रचलित तीन दिवसीय शिकार-पर्व है *बेझा-तुन*। गाँव का बूढ़ा पुजारी शगुन विचार कर पूजा योग्य ज़मीन चुनता है । ज़मीन को साफ़ करके गोबर-पानी से लिपाकर सफ़ेद चावल की परत बिछाये जाते है । उसपर सफ़ेद कबूतर, लाल मुर्गे और बकरे की बली दी जाती है । पूजा के बाद अच्छे शिकार उपलब्ध होने की आदिम विश्वास इसके पीछे है ।

आदिवासियों के कोई भी त्योहार-पर्व नृत्य-गीत के बिना पूर्ण नहीं होता । इसके साथ विभिन्न प्रकार के वाद्य भी बजाये जाते हैं – मादल, नगाड़ा, ढोल इत्यादि । 'हुल पहाड़िया' उपन्यास में झूमर नाच की चित्रण इस प्रकार की गई है- "बड़ा सा गोल घेरा बनाए नाच रही थी वनजाएँ । हरेक के बाएँ हाथ में दूसरी लड़की का हाथ था और दायें हाथ बगल वाली लड़की की कमर से लिपटा था । पारंपरिक वेश-सज्जा में सजी बालाएँ घेरे में झूमर नाच रहीं थी, गा रही थी ।"[12]

'पठार पर कोहर' उपन्यास में सरना देऊ का गीत गाते नाच रही लड़कियों की उल्लेख है –

"खद्दी चाँदी हिये रे नाद नौर

फागु चाँदी हिये रे नाद नौर

भर चाँदो चाँद रे नाद नौर

मिरिम चाँद हो-साँड़, ले उनाउऽऽऽ ।

वनजाएँ कभी सिमट जाती है, कभी उलटे पाँव वापस लौटती हैं । भंवर की तरह सिमटना और फिर पोखर में केकड़ गिरने पर उत्पन्न तरंगों की भांती खुलना...!"[13]

आदिवासी संस्कृति और कला का धरोहर है आदिवासी लोककथा और लोकगीत । इसका संबंध विभिन्न विषयों से होता है । जैसे पशु-पक्षी, पेड़-पौधे आदि के बारे में भी हो सकता है । पर्व-त्योहार के समय ये गीत और कथाएँ बुजुर्गों द्वारा सुनाई जाती हैं ।

"करम उदासी गई जाने लगी है । करम उदासी अर्थात करमदेऊ का विदा गीत...।

सबकारो घरे आईज माँदर बजाय

मोर घरे सुना चले रेऽऽऽ

मोरा साईयाँ गेल परादेस

मोरा घारे सुना चेल रे ऽऽऽ

करम कहाल गे संवारा

करमा का दिन कैसे आवय रे ऽऽऽ

करमा का तरे-तरेजला भरी फूल रे

डाला भरी बाती बराय रे ऽऽऽ ।"[14]

अर्थात् सबके घर आज माँदल बज रही है पर मेरा घर सूना है । पति गया है परदेस । अगले करमा में सईयाँ आनेवाला है । जल्दी अगला करमा आवे । घर की उदासी टूटे । करम की डाली को सींचूँ | टोकरी भर दिये जलाऊँ ।

करमा पर्व के संबंध में 'पठार पर कोहरा' उपन्यास के पात्र हरमू एक कथा सुनाता है । एक राजा के दो बेटे थे धरमा और करमा । करमा व्यापार करने परदेश चला जाता है और धरमा राजकाज देखने लगता है । खूब धन कमाकर करमा घर लौटा । करमदेऊ की पूजा पर बैठा था धरमा, इसलिए दौड़कर भाई से गले नहीं मिला । गुस्से में आकर करमा करमदेऊ की डाली उखाड़कर नाली में फेंक दी । करमदेऊ का कोप टूटा । कमाया सारा धन हवा में मिल गया । करमा पश्चाताप करने लगा । अंत में करमदेऊ उन्हें माफ कर दिया । धरम के रास्ते पर चलने को कहा । जिस दिन दोनों भाई गले मिल गए उस दिन आदिवासी करमा का त्योहार मनाया जाता है । इसे धर्म और कर्म का संयोग मानते है । आदिवासी कथाओं और लोग गीतों के पीछे एक परम्परा या मूल्य होते है जो जीवन की जरूरतों से जन्म ली है ।

आदिवासियों के बीच उनके देवी-देवताओं, पशु-पक्षियों आदि को लेकर पौराणिक कथाएँ प्रचलित हैं। जिसका उद्देश्य रीति-रिवाजों, विश्वासों और प्रथाओं की पुष्टि करना होता है । ये लिपिबद्ध न होकर कल्पना के माध्यम से अभिव्यक्त होती है । 'पठार पर कोहरा' उपन्यास के केंद्र पात्र रंगेनी अपने बेटे को 'पण्डुकी की कहानी' सुनाकर सुलाती है । पण्डुकी की कहानी आदिवासियों के बीच प्रचलित एक लोककथा है, जिसका पात्र पण्डुकी नामक एक गाय है । पण्डुकी राजा के घर से तीसी लाकर तेल बनाकर वापस राजा के घर तेल पहुँचाती थी । एक दिन पण्डुकी की बच्चे का पैर तेल के बासन में लग गया । थोड़ा-सा तेल गिर गया था । पण्डुकी को डर था कि तेल घटेगा तो राजा कुपित हो जाएँगे । पण्डुकी गुस्से से हाथ में पकडी मूसल बच्चे की पीठ पर धर दिया । बच्चा चुप हो गया था । पण्डुकी तेल लेकर राजा के पास पहूँचा तो तेल घटा नहीं बल्कि थोड़ा बढ़ गया था । पंडुकी घर पहुँचकर देखा तो मूसल की मार से बच्चा मर गया था । पण्डुकी रो रोकर बच्चे को जगाने लगी । आज भी रोती फिरती है ।

"फिर का ?... कपार नोचने लगी पण्डुकी । रोने लगी सो आज तक रोती फिरती है रे ! तूने सुनी है पंडुकी की रोने की आवाज़?"

"नईं" ..."

"तो ध्यान से सुनना अब कि कैसे बोलती है पण्डुकी । कहती है - तूर्रु... तूर्रु... तीसी के तेल! तूर्रु... तूर्रु... टक्के सेर ! तूर्रु...तूर्रु... बेटी भेल ! तूर्रु... तूर्रु..."

"मर - मर गोल !" सोनारा ने पंडुकी की आर्त टेर का अन्तिम बन्द पूरा किया ।"[15]

पशु-पक्षियों की आवाज़ों-ध्वनियों में भी आदिवासी लोग कथाएं ढूँढ़ लेते हैं । ऐसी कथाएं वर्तमान को अतीत के साथ जोड़ती हैं। 'महाअरण्य में गिद्ध' उपन्यास के ऐसी एक पात्र है बुलाकी मुंडा, जो कथाओं को इतिहास की भाँति उपस्थित कर देते हैं ।

आदिवासी गीत-नृत्य, कथा आदि का एक रागात्मक मिलन 'घुमकुडिया' में होता है । घुमकुडिया में देर रात तक चलते है नृत्य - गीत - संगीत । घुमकुडिया यानी कि *घोटुल प्रथा* । आदिवासी संस्कृति में घोटुल प्रथा प्रमुख है । शाम होने के बाद गीत, नृत्य गाते हुए युवक-युवतियां गांव के बाहर झोंपड़ी में इकट्ठे हो जाते हैं। युवागृह, गितिओरा, रंगबंग, घुमकुडिया आदि नामों से भी घोटुल प्रथा परिचित है । 'पठार पर कोहरा' उपन्यास में 'गितिओरा' शब्द का प्रयोग है । अविवाहित युवक-युवतियों के शयनस्थल है, *गितिओरा* । एक झोपड़ी में जीवन बिताने वाले आदिवासी परिवारों के पति-पत्नी के दैहिक संबंधों का निर्वाह एक समस्या है, जिसका समाधान युवागृह के जरिये होता है । "युवागृह मात्र रात बिताने की जगह नहीं होते, वरन् किशोर-किशोरियों के युवा प्रशिक्षण केन्द्र भी है । आरण्य के भावी नागरिकों को सामाजिकता और भावी जीवन के पाठ पढ़ाने वाली शाला ।"[16] विवाह से जुडे निर्णय युवागृहों से लिये जाते हैं ।

आदिवासी संस्कृति में अंध-विश्वास, जादू-टोना आदि की भी अत्यधिक प्रभाव है । विश्वास इतना गहरा है कि कभी-कभी सीधे-साधे लोगों को भी जादू-टोना करनेवाले डायन मानकर मारा-पीटा जाता है । 'जो इतिहास में नहीं है' उपन्यास के हँसुली माई के चित्रण में देख सकते हैं कि गाँववाले उन्हें डायन मानते हैं । 'महाअरण्य में गिद्ध' उपन्यास में आदिवासिन बूढ़ी बाहामुनी को डायन घोषित कर दिया जाता है । 'पठार पर कोहरा' उपन्यास के रांगेनी जीवन यापन करने केलिए और गाँववालों के तानों से बचने केलिए बकुली बुढ़िया से ओझाई-मताई सीखती है ।

आदिवासियों के अंतिम संस्कार में भी अपने तौर-तरीके और मान्यताएं होती है । 'पठार पर कोहरा' उपन्यास में हम देख सकते हैं कि रंगेनी के पति होकाना की मृत्यु के बाद अलग जगह पर जलाया जाता है । "होकाना को श्मशान में नहीं जलाया गया था । अपनी मौत तो मरा नहीं था, ऐसी देह श्मशान नहीं जाती । अलग दाह करने के बाद फूल (अस्थियां) बीन लिया जाते हैं, फिर उन फूलों को खूब भारी पत्थर के नीचे गाड़ दिया जाता है । नकटी दाई के टीले के पीछे ही कब्रिस्तान है जहां एक चट्टान के नीचे गड़ा है होकाना ।"[17] मुण्डाओं के विश्वासों के अनुसार हत्या, आत्महत्या, अकाल मृत्यु से मरनेवालों के देह श्मशान में नहीं जलाया जाता । अलग जगह जलाकर अस्थियों को पत्थर के नीचे दफन की जाती है ।

पंचायत आदिवासी संस्कृति के एक हिस्सा है । गांवों में विवाह, बंटवारा, खेत चराई, प्रेम संबंध जैसे किसी भी समस्याओं के समाधान पंचायत करती थी । अतिथि देवो भवाः आदिवासी संस्कृति की एक विशेषता है । अपने आप को भूखा रखकर भी घर आए मेहमान को पूजना उनकी रीति है । आदिवासियों के पहनाव में आभूषणों का विशेष महत्व है । वे सोने के गहनों के बजाय लकड़ी, मोती, चांदी, हाथी दांत, सींगों आदि से बने गहनों का प्रयोग करती हैं । आदिवासी गहनें स्थानीय रूप से उपलब्ध सामग्रियों से बनायी जाती हैं । गहनों में उनके प्राचीन कला और शिल्प की झलक मिलती है । किसी त्योहार, मेला आदि के समय पर पारम्परिक वेश-भूषा के साथ नए

गहने सज-धज कर नृत्य करते हैं । "रानी छाप रुपए की माला पहन रखी है जिसमें रुपयों के बीच-बीच में कौड़ियां गूंथी है । पीतल का कनपासा और नकबेसर भी...!"[18]

आदिवासी क्षेत्रों में अक्सर कई मेलाओं का आयोजन होता है, जिसमें अलग-अलग गांव के लोग आया करते हैं ?। मेला आदिवासी समाज की एकता स्थापित करने के उद्देश्य से आयोजित किया जाता है । जतरा मेला, अखरा का उजड़ा मेला, बाघबुरू का मेला जैसे छोटे-बड़े कई मेले होते हैं, जो आदिवासी परंपराओं की गहराइयों तक जुड़े हुए हैं । 'हुल पहाड़िया' में बाघबुरू मेले के उल्लेख मिलते हैं । "करम वृक्षों के कुंज में कंकरील ललछौंह ज़मीन पर जुड़ता था बाघबुरू का मेला । दस दिनों तक चलने वाले इस वार्षिक मेले में दो इतवार पड़ते थे ।"[19]

चित्रकला, मूर्तिकला, संगीत, नृत्य जैसी हर एक कला अपनी संस्कृति को पीढ़ी दर पीढ़ी सुरक्षित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं । प्रकृति-पूजा आदिवासी संस्कृति की पहचान है । आदिवासी जीवन पूरी तरह जंगलों पर निर्भर है । इसलिए वे जंगल को भी देवता की तरह मानकर पूजा करते हैं । आदिवासी समाज संस्कृति की दृष्टि से संपन्न रहा है । आदिवासी समाज विकास की गति से दूर, अपनी संस्कृति और परम्परा की रक्षा करने केलिए संघर्ष कर रहा है । विकास के नाम पर आदिवासियों की संस्कृति पर हुए संकट को साहित्य ने वाणी दी है । राकेश कुमार सिंह जी ने उपन्यासों में मुख्य रूप से झारखंड के आदिवासी जन-जीवन को आधार बनाया है । लेकिन इन उपन्यासों में चित्रित संस्कृति, रीति-रिवाज़, त्योहार-पर्व आदि केवल झारखंड आदिवासियों तक सीमित नहीं है । राकेश कुमार सिंह जी के उपन्यासों में मुंडा, उरांव, संथाल, पहाड़िया जन-जातियों के विभिन्न त्योहार-पर्व, मेला, कला, संस्कृति आदि का जीवन्त चित्रण है । यह केवल रचनात्मक संतुष्टि या परिपूर्णता के नज़रिए से नहीं लिखा गया है, बल्कि इस अनोखी संस्कृति को विश्व समाज के सामने उपस्थित करने के उद्देश्य से लिखा गया है । वास्तव में जंगली, बर्बर, पिछड़ा और असभ्य माने जानेवाले आदिवासियों की संस्कृति सभ्य कहने वाले मुख्यधारा समाज से कहीं ज़्यादा बेहतर और सुसंस्कृत है । जिस समाज में सबके बराबरी हो, अपनी सहजीवियों के प्रति प्रेम और भाईचारा हो, समता और सामूहिकता हो, वह समाज जंगली और असभ्य कैसे हो सकते हैं ? व्यवस्था से आक्रांत मुख्यधारा समाज आदिवासियों के बीच जाते हैं और उन्हें सभ्य और सुसंस्कृत बनाने की चेष्टा करते हैं । राकेश कुमार सिंह जी ने आदिवासी संस्कृति और कला की सभी पहलुओं को अपने उपन्यासों में चित्रित करते हुए आदिवासियों की संस्कृति को सुरक्षित बनाए रखने के सार्थक प्रयासों पर बल दिया है ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भगवत शरण उपाध्याय, भारतीय संस्कृति की कहानी पृ. 8
2. राकेश कुमार सिंह, पठार पर कोहरा, पृ. 95
3. राकेश कुमार सिंह, महाअरण्य में गिद्ध, पृ. 51
4. राकेश कुमार सिंह, पठार पर कोहरा, पृ. 62
5. राकेश कुमार सिंह, महाअरण्य में गिद्ध, पृ. 33
6. राकेश कुमार सिंह, महाअरण्य में गिद्ध, पृ. 103

7. राकेश कुमार सिंह, पठार पर कोहरा, पृ. 222
8. राकेश कुमार सिंह, पठार पर कोहरा, पृ.199
9. राकेश कुमार सिंह, महाअरण्य में गिद्ध, पृ. 104
10. राकेश कुमार सिंह, जो इतिहास में नहीं है, पृ. 114
11. राकेश कुमार सिंह, पठार पर कोहरा, पृ. 234
12. राकेश कुमार सिंह, हुल पहाड़िया, पृ. 77
13. राकेश कुमार सिंह, पठार पर कोहरा, पृ. 200
14. राकेश कुमार सिंह, पठार पर कोहरा, पृ. 224
15. राकेश कुमार सिंह, पठार पर कोहरा, पृ. 99
16. राकेश कुमार सिंह, हुल पहाड़िया, पृ. 48
17. राकेश कुमार सिंह, पठार पर कोहरा, पृ. 74
18. राकेश कुमार सिंह, पठार पर कोहरा, पृ. 201
19. राकेश कुमार सिंह, हुल पहाड़िया, पृ. 76

मानवीय संस्कृति को बचाने की कोशिश करती कलात्मक अभिव्यक्ति

डॉ लीना सामुएल
असिस्टेंट प्रोफेसर
हिंदी विभाग
पनमपिल्ली स्मारक सरकार महाविद्यालय. चालकुडी

कला एक भावुक संवेदनशील, चिंतनशील प्रतिबद्ध कलाकार की आत्माभिव्यक्ति होती है। हर कलाकृति कलाकार की आत्मा की आभिव्यक्ति है। कलाकार सच्चा साधक होने के कारण सच्चाई का संरक्षक भी है। वे अपनी कला में सच को बचाए रखने की भरसक कोशिश करते हैं। कलाकार का व्यक्तित्व समाज एवं अपने सहजीवियों के संघर्षों पर आत्मसंघर्ष का अनुभव करता है। इसलिए उनकी आत्माभिव्यक्ति अर्थात उनकी सृजनात्मकता में समय, संस्कृति एवं मानवीयता पर होने वाले हर हमले के प्रतिरोध की चाह होना स्वाभाविक है। सहित्य, चित्रकला, संगीत कला, नृत्य कला, वास्तु कला, मूर्ति कला आदि सारी कलाएँ व्यक्ति की अभत्मभिव्यक्ति होने के बावजूद भी वैयक्तिक बिलकुल नहीं। आत्माभिव्यक्ति वैयक्तिक भी हो सकती है, मगर एक कलाकार की आत्मा समाज से इतनी जुडी हुई होती है कि वह समाज के हर धडकन को जानती है। समाज को या मनुष्य प्रकृति को आंदोलित करने वाली समस्या से वह भी उलझ जाती है। उस समस्या से मानव जाति को या पूरे संसार को बचाने की कोशिश कला सदियों से निरंतर करती रहती है। प्रत्येक काल में यथार्थ या समाज को मथने वाली समस्या अलग - अलग होती है। इसलिए कला का विषय भी निरंतर बदलता रहता है। साहित्य को कलाओं में एक अप्रतिम स्थान है, क्योंकि साहित्य समाज का दर्पण होने के कारण समाज का हर चेहरा उस में प्रतिबिंबित रहता है।

भाषा के आविर्भाव के साथ- साथ भाषा में विचारों एवं भावों को अभिव्यक्त करने की प्रवृत्ति शुरू हुई है। मानवेतिहास के विविध मोड इसलिए साहित्य में उपलब्ध है। दूसरे शब्दों में कहे तो मानवेतिहास का भावात्मक एवं संवेदनशील अंकन साहित्य में हुआ है। अर्थात साहित्य में हम मानवजाति का इतिहास पढ़ सकते है यद्यपि उसमें रचनाकार की कल्पना भी हो। उदाहरण स्वरूप भक्तिकालीन साहित्य को उठा लीजिए। तत्कालीन समाज की तमाम विडंबनाएँ जैसे अंधविश्वास, छुआछूत, सतीप्रथा, विधवा विवाह का विरोध, बाल विवाह विभिन्न प्रकार की धार्मिक कुरीतियॉ जैसे बाहयाडंबर ,मूर्तिपूजा, बहुदैववाद आदि का स्पष्ट चित्रण तत्कालीन

साहित्य में हुआ है। इसे पढ़ने के पश्चात पाठक यह एहसास करने लगता है कि यह सब समाज की उन्नति में बाधा डालने वाले तत्व है यह मानवीयता के खिलाफ है और इनका उन्मूलन करना चाहिए ताकि मानवीयता को बचा सकें। कबीरदास इस अर्थ में महा मानववादी कवि है जिन्होंने निडर होकर अत्यंत प्रखर भाषा में तत्कालीन भारतीय समाज में फैली कुरीतियों के खिलाफ आवाज उठायी है। उनकी बाणी में मुखरित जो आवाज है वह मानव संस्कृ ति की आवाज थी। मानवीयता को बचाने की कोशिश थी। मनुष्य को अपने जीवन में प्रेम, विनय, ज्ञान आदि तत्वों को जगाने और उन्हें विकसित करने की बात कबीर ने की है। इस अर्थ में कबीर महा मानववादी है। कबीर की वाणी में दरज यह गूँज प्रतिरोध की संस्कृति की गूँज है जो निरंतर हमसे यह जता रही है कि जहॉ अन्याय होता है, जहॉ मानवीयता का हनन होता है तब कलाकार को उसके खिलाफ आवाज बुलंद करनी है।

कला की पक्षधरता मानवीयता से है। उस मानव संस्कृति को बचाए रखने की भरसक कोशिश कलाकार करता रहता है। सांस्कृतिक संकट के इस दौर में भी ऐसे असंख्य प्रयास हम देख सकते है। विश्व भर में धर्म, जाति, वर्ण, वर्ग आदि को लेकर जितना भेदभाव व्याप्त है उनके खिलाफ प्रतिरोध करने का रवैया किसी भी कला का मूल, उददेश्य हो जाता है। इसलिए कला की पक्षधरता हमेशा सत्य के साथ है और मानवीयता के साथ है। आधुनिक भूमंडलीकृत विश्व ग्राम की परिकल्पना में निहित बाजार के तंत्र से अब विश्व भर के देश दम घुट रहे है। इन सारे देशों में अग्रेजी शासन के तले रौंदा गया भारत इस बाजारीकरण का सबसे बुरा अंजाम भोग रहा है। पाश्चात्य औपनिवेशिक संस्कृति के प्रभाव के परिणामस्वरूप भारतीय संस्कृति भयानक रूप से खतरे में है। उपभोगवादी संस्कृति से भारत की प्रकृति, मिटटी, पानी यहॉ तक की हवा भी प्रदूषित हो गयी है। भारतीय संस्कृति की मौलिकता, धार्मिक सहिष्णुता,सबको समाने की शक्ति आदि कहीं नष्ट हो रही है। एक कृषि प्रधान देश भारत में किसान सदियों से अपनी मेहनत का महत्व वा मूल्य न मिलने से आजीविका तक के लिए तडपकर आत्महत्या कर रहे है। गाट करार में हस्ताक्षर करने से विदेशी मालों का भारत में आयात करने से भारतीय किसान एवं लघु उद्योग करने वाले या हस्तकला से प्रवीण असंख्य जनजातियों का अस्थित्व ही संकट में हो रहा है। तत्परिणाम से भारत के प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधनों का सही इस्तेमाल न कर पाने की वजह से लाखों करोडों लोग स्वाधीनता के इतने साल के पश्चात अब भी स्वावलंबी नहीं हो पाए।

भारत जैसे प्रजातांत्रिक देश में प्रजातांत्रिक मूल्यों का निरंतर ह्रास हो रहा है। स्त्रीयों के प्रति निम्न जन जातियों के प्रति पर्यावरण के प्रति होने वाला शोषण यहॉ स्पष्ट है। एक उदात्त संस्कृति संपन्न देश स्त्रीयों के

प्रति अत्यंत आदर एवं सम्मान के साथ व्ययवहार करेगा। मगर भारत में हमेशा स्त्रीयों के प्रति अन्याय एवं शारीरिक मानसिक शोषण चलता रहता है।पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री को मात्र एक देह समझने से ये समस्याएँ उत्पन्न होती हैं।शासन एवं राजनीति के क्षेत्र फासिज्म के गिरफ्त में हैं।धर्म एवं राजनीति के बीच का सदियों पुराना गठबंधन सिथितियों को ओर अधिक ख्राब कर देता है। चारित्रवान एवं देश एवं जनता केलिए समर्पि त राजनेताओं के दवारा देश की उन्नति संभव है। लेकिन दुर्भाग्य से भारत के नेतागण अधिकांशत किसी न किसी राजनीतिक दल का कार्यकर्ता मात्र रह जाते हैं।अपनी दलनीति को पालना मात्र उनका काम रह जाता है।

सांस्कृतिक संकट के इस भयानक मोड पर कलाकार का दायित्व अत्यंत चुनौती पूर्ण हो गया है। सच्चाई का पक्ष बोलना या तटस्थ होना गुनाह माना जाता है। सच बोलने वाले निडर कलाकार को अपनी जान को कुर्बान करना पड रहा है।सफ्दर हश्मी ,गोविन्द पंसारे, कलबुर्गी , गौरी लंकेश आदि इनमें कुछेक है।लेकिन फिर भी कलाकार अपना कर्म जारी रख्ता है।साहित्य स्वयं एक कला है।फिर भी कुछ अनुभूति प्रवण साहित्य्कार अन्य कलाओं को भी अपनी रचनाओं में उकेरते है। क्योंकि कला का आस्वादन करना या उसको पसंद करना भी मनुष्य होना है। इस अर्थ में कला को सहेजना मनुष्यत्व को बचाने का प्रयास है। ऐसे सन्दर्भ में अशोक वाजपेयी का अवदान अत्यंत महत्वपूर्ण है जिन्होंने अपने कवि कर्म और संस्कृति कर्म के माध्यम से सच्चाई को, मानवीयता को,मूल्यों को, भारतीयता को संजोकर बचाए रख्ने की भरसक कोशिश अपनी रचनाओं के दवारा की है अशोक वाजपेयी के कवि व्यक्तित्व की बुनावट कलाओं की अंदरूनी संगीत से हुई है। वे भारतीय भाषाओं में अकेले कवि है जिनका संगीत, नृत्य, रूपंकर कलाओं, लोककलाओं एवं रंगमंच के कलाकारों पर कविताएँ लिख्ी हो।

आत्मा के ताप में
राख होकर भी बची रहती है इच्छाएँ
चित्रों में ख्र्च होने के बाद भी बचे रहते हैं शब्द
प्रार्थना में लुप्त होने के बाद भी बची रहती है हृदय की पुकार
हम उस बचे हुए से
जो समय के पार बचा रहेगा
काल के प्रतिघात के बावजूद

उसका अभिषेक करते हैं
समय से घायल हाथों से हम
जो कालातीत है
उसका अभिषेक करते है।

चित्रकार हैदर रज़ा पर लिखी लंबी कविता में कवि चित्रों में जीवंत मानवीय अनुभूति को शब्दों में उतारते हैं। दूसरे कलाकार की आत्माभिव्यक्ति से सहस्थिति स्थापति करके उसमें निहित अर्थ की गहराई को भॉपना एक संवेदनशील प्रतिभाधनी कलाकार ही कर पाएँगे। समकालीन दौर के संवेदन शून्य एवं अमानवीय हरकतों के बीच में अन्य की अनुभूति से सहस्थिति दर्ज करना बहुत ही महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय एक बात है। अशोक वाजपेयी के काव्यजीवन की शुरूआत से लेकर यह अहसास सक्रिय रहा है कि सचाई शब्दों के अलावा सुरों या रेखाओं या मुद्राओं में भी उतना ही बसती है। तबसे लेकर कवि बराबर यह मानता रहा है कि कविता की संगीत, नृत्य, चित्र, मूर्ति से अटूट बिरादरी है। मकबूल फिदा हुसैन के चित्र, अली अकबर खॉ का सरोद वादन, सैयद हैदर रज़ा के चित्र, एम एफ हुसैन के चित्र, कुमार गंधर्व , भीमसेन जोशी,जगदीश स्वामिनाथन आदि के संगीत खजुराहो, कोणार्क, अजन्ता आदि के कला वैभव पर उन्होंने कविताएँ लिखी हैं ये तमाम कविताएँ संगीत, नृत्य, मूर्ति और साहित्य जैसी ललित कलाओं का कवितानुभव ही है।

चौंधियाते प्रकाश में
अनगिनत ऑखों के घेरे में
सबके बीचों बीच
वह अकेली नाचती है
अकेलेपन से खोजती है
अपने लिए जगह

'तत्पुरुष' शीर्षक काव्य संग्रह में संकलित 'नर्तकी' नामक कविता में नर्तकी का नृत्य कवि मन में असंख्य दृश्य उपस्थित करते है। जिसप्रकार फूलों से लथ पथ डाल नदी की ओर झुककर पानी से कुछ बताती है और हवा के झोंके में डोलकर वापस स्थिर हो जाती है उसीप्रकार नर्तकी का नृत्य है। उसके पैरों से पायल की ध्वनि आकाश के तारे का गीत है। वह अपने जीवन के एकांत को शरीर की लय से, लालित्य से भरती है। अकेली होकर नाचते समय अपने लिए स्वतंत्र जगह की बुनावट करनेवाली स्त्री कवि मन की उम्मीद है। इधर स्त्री जीवन की अनंत संभावनाओं की गहरी पहचान है। संगीत और नृत्य के समान चित्र एवं मूर्ति भी

कवि को कविता करने केलिए प्रेरित कर रहे है। चित्र एवं मूर्ति में सौन्दर्य संबंधी परंपरागत अवधारणा एवं संस्कृति की पहचान उपलब्ध होती है। उनके प्रथम काव्य संकलन की एक कविता है खजुराहो जाने से पहले। इस कविता में खजुराहो की मूर्तियों में जीवंतता की खोज करने की अदम्य इच्छा प्रकट है। उन मूर्तियों में जो कविता है कविता की चुप्पी है बहुत गहन एवं गूढ़ है। आवाजों को प्यार करने वाले कवि केलिए वह मौन आवाजों की बहुत बडी दुनिया का आभास देना स्वाभाविक है। अतिप्राचीन एवं पुरानी हवा और संस्कृति को आत्मसात् करने का भाव उनमें प्रबल है।

कला और कलाकारों पर लिखी समूची कविताओं को एकत्रित करना कलाओं से उनके संबंध की निजी यात्रा का वृत्तांत तैयार करना ही है। कविता और कला के बीच का संबंध कलाकार और कवि के बीच का सघन एवं भावुक तादात्म्य स्थापन का परिणाम है। संगीत की लहरें आरोहण अवरोहण राग हमारे भीतर आध्यात्मकता का भाव जगाते है। संगीतकार मूलतः साधक है। वे संगीत के द्वारा उस विराट रहस्य का अन्वेषण करते है और अपनी साधना में वह कभी कभी अनंत को छूता भी है। श्रोता इसे सुनकर अतीन्द्रीय आनन्द की अवस्था में पहुँच जाते हैं। मल्लिकार्जुन मंसूर का गाना और उसकी स्मृति में कवि कहते है

वे बूढे ईश्वर की तरह सयाने पवित्र
एक बच्चे की फुरती से
आते हैं
उँगली पकड
हमें अनश्वरता के पडोस में ले जाते हैं।

संगीत में ऐसी अनिर्वचनीय शक्ति है जिससे सुननेवाले तादात्म्य स्थापित करते हैं। संगीत की अजस्र धारा के प्रवाह में मानव के कलंक सब दूर हो जाता है और पवित्र एवं शांत होकर ईश्वर का एहसास अपने भीतर करने लगता है। संगीत का महत्व एवं उसकी अनिवार्यता आजकल बढ़ रही है। क्योंकि समकालीन संदर्भ में आकर आधुनिक मानव संघर्ष में है। जो जो कलाएँ मनुष्य में मानवीयता भर देती हैं आज वे कलाएँ मनुष्य से बहुत दूर है। उनके ही शब्दों में जीवन सच्ची और विश्वसनीय है। विकल्प जीवन और कला के बीच नहीं है। भरपूर आदमी बना रहना है तो दोनों की जरूरत है। संगीत के स्वरों का हृदय में उतरने का अनुभव इधर तीव्र है। कवि केलिए कला का यह कवितानुभव एक तरह से आध्यात्मिक पुनर्वास है।

कला समय को सहेजती है। मनुष्य को संभालती है। क्योंकि समय इतना विडंबनात्मक है जिससे कोई भी व्यक्ति मुक्त नहीं है। अशोक वाजपेयी की कविता के मूल में उनका अपना दर्शन है। ईश्वर के अनुपस्थित होने का कारण कवि में संघर्ष का अनुभव होता है। इस संघर्ष से लगभग मुक्ति कलाओं के द्वारा संभव है। कवि संगीत की लहरों के इधर उधर तैरकर अम्त में अनंत के पडोस में पहुँच जाते हैं।

वे गाते हैं
जो कुछ बहुत प्राचीन हममें जागता है
गूँजता है ऐसे जैसे कि
सब कुछ सुरों से ही उपजता है
सुरों में ही निमजता है
सुरों में ही निवसता और मरता है।

इसतरह मल्लिकार्जुन पर लिखी कविता दार्शनिक आशयों से परिपूर्ण है। उनकी संगीत साधना और व्यक्तित्व की विशिष्टता को जिस ढंग से अशोक वाजपेयी ने उद्घाटित किया है वह पवित्रता और उदात्तता का भाव जाग्रत करती है। संगीतकार कुमार गंधर्व से कवि का संबंध जितना गहरा है उसे स्पष्ट करती है बहुरि अकेला संग्रह की कविताएँ उनके निधन ने जीनेवाले को कितना अकेला बना दिया है और स्मृतियॉ कैसे इस अकेलेपन को संगीतिक सा बनाता है ये सब इस संग्रह की कविता में मुखर है। कुमार गंधर्व अपनी संगीत साधना में रूढ़ता को नहीं बल्कि परंपरा के पुनराविष्कार को समकालीन दबावों में अत्यंत परिवर्तित कसरत करनेवाली व्यावसायिकता से संगीत की मुक्ति के पथ को चुना है।

अकेलापन आधुनिकता की एक बडी चारित्रिक विशेषता रहा है। पर उनके संगीत का अकेलापन कुमार गंधर्व द्वारा सृजित अकेलापन है। संगीत का जो नया सौन्दर्यशास्त्र कुमारजी ने विकसित किया है उसमें मौन का अत्यंत संवेदनशील और अर्थगर्भ उपयोग है। अपनी पूरी विकलता और उत्कृष्टता के बावजूद उनके यहॉ आदमी का अकेलापन निरी संबंधहीनता का पर्याय नहीं बनता उसमें अध्यात्मिक भराव भी है। इसी अकेलेपन में मनुष्य ईश्वर की अनुपस्थिति और उसके कारण को पहचानते है। इसलिए यह अकेलापन उच्च एवं उत्कृष्ट है।

चट्टान का एक चित्रित आकाश है
निश्शब्द ।

उसकी दिगन्तहीन करुणा के आगे नृत्यलीन पत्थर

किस पदस्पर्श की प्रतीक्षा में खडे है

कोणार्क और अजन्ता के चित्र और वास्तुकला का प्रभाव भी उनमें तीव्र है ।चिर पुरातन से यह संबंध कवि को मानव बनाता है।संवेदनशील बनाता है।परंपरा एवं प्राचीन संस्कृति की संवेदनात्मक ऊर्जा कवि की आत्मिक शक्ति को बढावा देती है।चिर पुरातन की सुगंध एवं संगीत इधर कवि की प्रेरक शक्तियॉ है। अशोक वाजपेयी के अनुसार कला समय को सहेजती है।मनुष्य को संभालती है।क्योंकि समय इतना विडंबनात्मक है इससे कोई भी व्यक्ति मुक्त नहीं।यथार्थ की विडंबनात्मक स्थिति में कवि का कलाओं के आश्रय में जाना स्वाभाविक है।क्योंकि कलाएँ ही वह निष्कंप दीपशिखाएँ हैं जो सारे मोम बुझ जानेपर भी प्रकाशित रहती हैं। 'उजाला एक मंदिर बनाता है' कला एवं कलाकारों पर लिखी कविताओं का संचयन है। शीर्षक की भॉति ये कला पर आधारित कलात्मक काव्याभिव्यक्त उम्मीद दिलाती है।कवि हमेशा कला के आलोक से अपने कविता संसार ज्योतित रखने के लिए जतन किया है।उनकी ये कविताएँ मूल्य विघटन एवं सांस्कृतिक अवमूल्यन के समय में मनुष्यत्व को बचाए रखने का अनथक प्रयास है।

सहायक ग्रन्थ

1 इबारत से गिरी मात्राएँ अशोक वाजपेयी पृष्ठ संख्या **144** प्र सं **2002**

2 तत्पुरुष तिनका तिनका भाग **1** अशोक वाजपेयी पृष्ठ संख्या **340** प्र सं **1989**

3 शहर अब भी संभावना है तिनका तिनका भाग **1** अशोक वाजपेयी पृष्ठ संख्या **80** प्र सं **1966**

4अभी कुछ और तिनका तिनका भाग **2** अशोक वाजपेयी पृष्ठ संख्या **346** प्र सं **1998**

5 उजाला एक मंदिर बनाता है अशोक वाजपेयी पृष्ठ संख्या **73** प्र सं **2002**

महिला रंगकर्मी अमाल अल्लाना का योगदान - एक झलक

अजिता कुमारी ए.आर
शोध छात्रा
महाराजास कॉलज, एरणाकुलम

जीवन की अनुकृति को शब्दगत संकेतों में समाहित कर सजीव पात्रों द्वारा व्यवस्थित रूप में प्रदर्शित करनेवाली विधा है नाटक। नाटक में केवल साहित्य ही नहीं, बल्कि अन्य ललित कलाओं जैसे चित्रकला, संगीत, नृत्य, काव्य, इतिहास, समाजशास्त्र, वेशभूषा आदि का भी समन्वय होता है। नाटक का प्रमुख उपादान उसकी रंगमंचीयता है। नाटक और रंगमंच एक सिक्के के दो पहलू या परस्पर पूरक होने से नाटक रंगमंच का आत्मा बन जाता है। नाटक और रंगमंच दोनों के मेल से मात्र नाट्य कला परिपूर्णता प्राप्त कर लेती है। नाटककार, निर्देशक और दर्शक तीनों के मेल से ही नाट्य कला का विकास होता है तो नाटक को सार्थकता पर पहुँचाने में दृश्य योजना, अभिनय, रंग-दीपन, ध्वनि-संगीत आदि के समन्वय भी महत्वपूर्ण है, जिससे नाट्यानुभूति या रंगानुभूति पैदा होती है।

निर्देशन और प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से आधुनिक भारतीय रंगमंच के उद्भव और विकास की लंबी सफर उतार-चढ़ाव का है। इस दौर में निर्देशक का भी महत्वपूर्ण भूमिका है। नाटककार द्वारा सृजित नाट्यकृति को अपनी अमिट कलात्मक, प्रदर्शनात्मक शक्तियाँ और अस्मिताएँ लेकर रंगमंच पर प्रस्तुत करके दर्शकों तक सफलतापूर्वक पहुँचाने का कार्य निर्देशक करते हैं। निर्देशक नाट्य प्रदर्शन का परिचालन, नियमन एवं निर्धारण करता है और अभिनय को श्रृंखलाबद्ध एवं अनवरत बनाकर नाट्य कृति का प्रायः पुनः सृजन करता है। रंगमंच पर आते ही नाटक नाटककार का नहीं, निर्देशक का बन जाता है। 'रंगकर्म और नाटककार' में डॉ. लक्ष्मण सहाय ने ऐसा कहा है - ''निर्देशक को अभिनय कला के साथ ध्वनि-संगीत, दृश्य-बंध, रूप-सज्जा, वेशभूषा, रंगदीपन कला का सम्यक ज्ञान भी होना चाहिए तथा नाट्याभ्यास-प्रदर्शन के पूर्व इन सभी कलाओं के ज्ञाता अभिकल्पकों से अपने ज्ञान के माध्यम से विचार-विनिमय एवं परामर्श करने के बाद ही विभिन्न कलाओं का प्रयोग करना चाहिए।''[1] हिन्दी रंगमंच को संपन्न और समृद्ध बनानेवाले रंगकर्मियों में सत्यदेव दुबे, हबीब तनवीर, श्यामानंद जालान, ब.व. कारंत, ओम शिवपुरी, रामगोपाल बजाज, एम.के. रैना, लक्ष्मीनारायण लाल, देवेन्द्रराज अंकुर आदि नामी पुरुष रंगकर्मियों के साथ शांता गाँधी, जे. शैलजा, मीता वशिष्ठ, बी. जयश्री, शीला

भाटिया, गिरीश रस्तोगी, कीर्ति जैन, नादिरा बब्बार, उषा गाँगुली, अमाल अल्लाना, त्रिपुरारी शर्मा, अनुराधा कपूर आदि महिला रंगकर्मियों का नाम ज़रा भी पीछे नहीं हैं। बराबरी का जो दर्जा आज रंगमंच पर महिलाओं को है यह मुकाम हासिल करने में उन्होंने अपना पूरा जीवन लगाया है, अपने कौशल और क्षमता से रूबरू कराया है। महिलाओं को जब मौका मिला है तब वे नए तरह का रंगमंच लेकर आई हैं और अपनी अलग छाप द्वारा हिन्दी एवं भारतीय रंगमंच संपन्न हो उठी।

सन् 1950 के बाद जनवादी नाट्य समूहों द्वारा स्त्री विषय मुद्दों को एक नई दिशा में आम जनमानस तक पहुँचाने में शौकत कैफी, शमा जैदी, डॉ प्रतिभा अग्रवाल, अरुंधती नाग, ज़ोहरा सहगल, त्रिपुरारी शर्मा, नादिरा बब्बार, उषा गाँगुली, कुसुम कुमार आदि सशक्त महिलाओं का योगदान गरिमामय है। इनमें से कई ने रंगकर्मी के रूप में लेखन, निर्देशन मात्र नहीं, रंगमंच के अन्य विभिन्न क्षेत्र जैसे पटकथा लेखिका, कास्ट्यूम डिज़ाइनर, कला निर्देशक, नाट्यकर्मी, कला आलोचक, वृत्त चित्र लेखिका, अनुवादक, नाट्य समीक्षिका, नाट्यरूपांतरकार आदि में रंगमंच को संपुष्ट एवं समृद्ध बनाया है। अतः हिन्दी नाट्य जगत में बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी महिला रंगकर्मियों का समर्पण सर्वोपरी है और उसे नकारा नहीं जा सकता। रंगकर्म के नभ में चमकते सितारे अमाल अल्लाना के व्यक्तित्व, प्रतिभा, रंगकर्म एवं सफलता का चित्रण यहाँ है। हिन्दी रंगमंच के क्षेत्र में महिला रंगकर्मियों की जो उल्लेखनीय क्षमता, प्रतिभा, तल्लीनता, सफलता एवं महत्वपूर्ण योगदान है उसे अमाल अल्लाना के माध्यम से दर्शाने का प्रयास किया है।

हिन्दी रंगमंच के निर्देशक और कॉस्ट्यूम डिज़ाइनर के रूप में प्रशस्त अमाल अल्लाना सुविख्यात रंगकर्मी इब्राहिम अल्काजी की सुपुत्री है। उन्होंने भारत के राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, थिएटर प्रशिक्षण के प्रमुख संस्थान की अध्यक्षा का पद भी अलंकृत किया है। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय दिल्ली से सन् 1968 में सर्वोत्तम विद्यार्थी के रूप में निर्देशन का डिप्लोमा प्राप्त करके दो वर्षों तक बर्लिन आन्साम्बल, जर्मनी में आब्जर्वर के रूप में व्यापक रंग अनुभव प्राप्त किया। फिर वे जापानी रंगमंच के अध्ययन के लिए जापान गई। उन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय में 'डिपार्टमेंट ऑफ इण्डियन थिएटर' के अध्यक्षा के पद पर सन् 1977-1978 में कार्य किया है। अतः ज्ञात होता है कि बचपन से लेकर उनका संबंध रंगमंच से जुड़ा रहा है।

एक थिएटर निर्देशक के रूप में उन्होंने हिन्दी में 55 से ज्यादा नाटकों का निर्देशन किया है। डॉ. जयदेव तनेजा के शब्दों में - ''अमाल अल्लाना हिन्दी रंगमंच के उन बहुत थोडे निर्देशकों में से एक हैं जिन्होंने अपनी निर्देशन - शैली से एक विशिष्ट पहचान कायम की है।''[2] सन् 1971 में अपने 'दि वर्कशाप' नामक नाट्य दल की स्थापना बंबाई में की थी और सन 1978 में 'स्टूडियो - 1' की स्थापना दिल्ली में भी की। 'स्टूडियो - 1' ने कम समय के अंदर गंभीर, सार्थक और तकनीक-समृद्ध रंगकर्म के लिए पर्याप्त चर्चा एवं प्रशंसा प्राप्त की।

इनके द्वारा ओनील के 'ए लांग डेज़ जर्नी इन टू नाइट', ब्रेख्त के 'द एक्सैप्शन एण्ड द रूल', टेनेसी विलियम्स के 'कांच के खिलौने' (द ग्लास मैनेजरी), विजय तेंदुलकर के 'खामोश अदालत जारी है', लोर्का के 'बिरजीस कादर का कुनबा', मोहन राकेश के 'आषाढ का एक दिन' तथा शेक्सपियर के 'किंग लियर' जैसे सुप्रसिद्ध नाटकों के तकनीक-समृद्ध और प्रयोगशील प्रस्तुतीकरण किए गए। इन सभी प्रस्तुतियों ने निर्देशन-कौशल, अभिनय, प्रकाश तथा संगीत के कल्पनाशील इस्तेमाल और अपने भारी-भरकम मौलिक दृश्य-बंधों के प्रदर्शन द्वारा अत्यंत श्रेष्ठ एवं अनूठा साबित किए।

सन् 1977 मार्च में अमाल अल्लाना ने राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के लिए बोधायन के संस्कृत प्रहसन 'भगवद्ज्जुकम' तथा जीयामी कृत जापानी नोह शैली के नाटक 'सोतोबा कोमाची' का निर्देशन किया। 'रंगमंडल' से आपने मन्नू भंडारी के 'महाभोज' और मोहन राकेश के बहुमंचित 'आधे-अधूरे' की प्रयोगधर्मी प्रस्तुति भी की। अपने 'स्टूडियो - 1' द्वारा प्रस्तुत प्रायः सभी नाटकों का निर्देशन अमाल अल्लाना द्वारा संपुष्ट है। साथ ही आपने सन् 1981 में सर एटिनबरॉ की बहुचर्चित फिल्म 'गाँधी' की नेपथ्य-व्यवस्था का उत्तरदायित्व भी कुशलतापूर्वक निभाया है। उसकी विशेष उपलब्धियों में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय रंगमंडल के लिए निर्देशित 'आधे-अधूरे' और बहुचर्चित 'महाभोज' भी उल्लेखनीय जान पड़ता है।

सन् 1981 में 'स्टूडियो - 1' ने श्रीराम सेंटर के तलघर में मोहन राकेश के बहुमंचित नाटक 'आषाढ का एक दिन' को अमाल अल्लाना के निर्देशन में प्रदर्शित किया। निर्देशिका द्वारा नाटक के कथ्य और चरित्रों के पारस्परिक संबन्धों को मंच के व्याकरण में अनूदित एवं रूपायित करने की सफलता इस प्रस्तुति की सबसे बड़ी उपलब्धि के रूप में देख सकते हैं। इस संबन्ध में डॉ. जयदेव तनेजा ने 'हिन्दी रंगकर्म दशा और दिशा' में अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है - ''अमाल अल्लाना ने यहाँ मोहन राकेश के मंच-निर्देशों से अलग रहकर बड़े दालान वाली एक झोंपड़ी के अतिरिक्त प्रेक्षागृह का दो-तिहाई हिस्सा पेड-पौधे, पुल आदि से भरने के कारण दृश्यांकन एवं दृश्य बंध में कुछ कमी महसूस होकर दिखाई देता है। तकनीक से प्रभावित विस्तृत दृश्यांकन ने सार्थकता के बदले सुन्दरता का ही बोध कराता है। इस विस्तृत और सघन मंच-परिवेश के बीच दर्शक ही नहीं अभिनेता भी उपेक्षित एवं नगण्य प्रतीत हो रहे थे।''[3] साथ ही साथ झरोखे के अभाव ने कई प्रसंगों और संवादों को अतार्किंत बनाए हुए प्रतीत होता है। संवाद में हुई कमी के बारे में डॉ. जयदेव तनेजा का अभिप्राय यह है - ''संवाद-प्रस्तुति में अंग्रेजी भाषा की लय अथवा पंजाबी-उच्चारण से बार-बार भूमिका में रवि झंकल कमज़ोर रहे।''[4] इस प्रस्तुति का हर एक पात्र चाहे वह प्रधान हो या गौण, अभिनय की दृष्टि में श्रेष्ठ एवं दर्शनीय प्रतीत होता है।

संपूर्ण दृष्टि से सार्थक एवं सफल निर्देशन की गरिमा प्राप्त की प्रस्तुति है नीलाभ द्वारा भारतीय रूपांतरण किए अमाल अल्लाना से निर्देशित 'किंग लियर'। इसमें निर्देशिका अमाल अल्लाना ने मनोहर सिंह को अधिकाधिक भावों या रसों की अभिव्यक्ति का मौका देने लायक कुछ नाटकीय प्रसंगों को मूल आलेख से काट-छाँटकर चुन लेने का जोखिम भरा कार्य किया है। अमाल अल्लाना ने प्रगति मैदान के 'विलेज कम्पलेक्स' के मुक्ताकाशी मंच पर प्रस्तुत 'किंग लियर' में मनोहर सिंह द्वारा अभिनीत यशवंत राव (लियर) के प्रभावशाली नाटकीय रूप को देखना एक रोचक नाट्यानुभव ही नही, एक विरल एवं सुन्दर संयोग ही जान पड़ता है। इसमें मनोहर सिंह के अभिनय को देखकर ऐसा लगता है मानो निर्देशिका ने प्रदर्शन का सारा बोझ उन्हीं के कंधे पर डाल दिया हो। नाटक के अन्य अभिनेताओं का चयन भी अमाल अल्लाना ने बहुत ही अच्छी ढंग से की है। निर्देशिका ने उनकी भूमिका को संक्षिप्त करके इस चरित्र और कलाकार के प्रति संपूर्ण रूप से न्याय किया है। नाटक देखने से यह मालूम होता है कि ये अभिनेताओं ने दर्शकों या निर्देशिका को निराश न बनाया है। लेकिन नाटक के हास्यपरक वैचारिक दार्शनिक पक्ष कहीं-कहीं कुछ कमज़ोर बनते जान पड़ते हैं। उन्होंने इसका दृश्य बंध परिकल्पना परिवेशमूलक शैली में, बेहद कल्पनाशील ढंग से इस्तेमाल किया है। प्रदर्शन को राजस्थानी रंग देने में परिधान परिकल्पना ने निर्णायक भूमिका निभाई है। साथ ही साथ वस्त्रों के रूप-रंग, आकार-प्रकार, सौन्दर्य प्रामाणिकता और नाटकीय प्रभाव पर परिकल्पक की सूक्ष्म एवं गहरी पकड साफ नज़र आती है। इसके अलावा चरित्रों एवं प्रसंगों के मूल में मुताबिक चंदोवे के लाल, नीले रंग का उपयोग सार्थक मालूम होता है। संगीत और प्रकाश योजना ने भी प्रस्तुति के प्रभाव को गहराने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

समसामयिक जीवन और परिवेश को विविध स्तरों पर प्रभावित और निर्धारित करनेवाले सत्ता या व्यवस्था के ऊपर से भोले एवं मासूम किंतु भीतर से क्रूर और धिनौने चेहरे को निर्ममता से बेनकाब करनेवाला मन्नू भंडारी का स्थितिप्रधान राजनीतिक उपन्यास 'महाभोज' का नाट्य रूपांतर नाट्य निर्देशिका अमाल अल्लाना के रचनात्मक सहयोग से उन्होंने स्वयं की है। नाटक देखने पर यह समझ पाता है कि उपन्यास के ढेरों पात्रों और कई स्थानों पर एक साथ चलते बहुस्तरीय क्रिया-कलापों को नाट्य प्रस्तुति की पूर्व निर्धारित सीमित अवधि और गिने-चुने रंग-स्थलों में चुस्ती एवं एकाग्रता से सफलतापूर्वक बाँध कर श्रव्य को दृश्य अनुभव में रूपांतरित करने का चुनौती भरा काम करने में अमाल अल्लाना की निर्देशकीय क्षमता मन्नू भंडारी को बहुत सहायक बना है।

नाटक 'महाभोज' के कथानक में तीव्र नाटकीय घटनाओं का रोचक संयोजन, चरित्रों में वैविध्य, भाषा में सहज नाटकीयता और संवादों में जीवंतता है। यह नाटक समकालीन सामाजिक-राजनैतिक स्थितियों की विसंगतियों एवं मूल्यहंता गतिविधियों की शर्मनाक सच्चाई के विविध आयामों का प्रभावशाली एवं जीवंत

प्रस्तुतीकरण है। साथ ही यथास्थिति के विरुद्ध विद्रोह की ज़रूरत का संकेत भी देकर बहुत दूर तक चलनेवाली एक ज़रूरी लड़ाई की आस्थावान और समझपूर्ण शुरुआत का स्पष्ट संकेत देते हुए सामाजिक दायित्व भी निभाता है।

रंगमंचीयता की दृष्टि से 'महाभोज' एक सफल नाटक सिद्ध हुआ है। अमाल अल्लाना के कुशल निर्देशन में इसका प्रदर्शन अपने अनुभव संसार की दृष्टि से सबसे बेहतरीन प्रतिष्ठित हुआ है। महाभोज के प्रदर्शन को एक सार्थक, उत्तेजक, तीव्र एवं स्मरणीय अनुभव बनाने में घात-प्रतिघातपूर्ण घटनाओं की त्वरा और एकाग्रता, बहुरूपी पात्रों की आचरणमूलक विविधता, कथ्य की प्रासंगिकता और सार्थकता तथा तेवर की सहज आक्रमणता का विशेष स्थान है। साथ ही साथ अमाल अल्लाना के कुशल निर्देशन और रंगमंडल के विशिष्टता प्राप्त और अनुभवी कलाकारों के श्रेष्ठ अभिनय, उचित प्रकाश - परिकल्पना तथा ध्वनि-प्रभावों का योगदान भी महत्वपूर्ण है।

'महाभोज' के हर एक पात्र के संवाद, हँसी, मौन, विभिन्न प्रकार की आवाज़ एवं चेष्टाएँ आदि उत्तेजक और दर्शनीय हैं। इसकी विस्तृत और दोमंजली दृश्य-बंध परिकल्पना कई अर्थों में आकर्षक है। इस बहुआयामी अभिनय स्थल की पूर्णता एवं क्षमता उपन्यास के कई स्थानों पर फैले-बिखरे कार्य-व्यापार को प्रस्तुत करने में सक्षम है। पूरे नाटक के कथ्य को एक भिन्न रूप में व्याख्यायित कर पाने का सामर्थ्य दृश्य-बंध को अर्थपूर्ण बना देता है। रंग सज्जा एवं प्रकाश व्यवस्था का उचित, अनुरूप एवं व्यवस्थित प्रयोग से चरित्रों और स्थितियों के विषम्य को तीव्रता से उभारी है। इसका एक श्रेष्ठ उदाहरण है- मुख्यमंत्री की झकाझक सफेद रंग से सुसज्जित बैठक के पीछे बाईं ओर दिखाई पड़ती सुरमई रंग की दीवार और मंच पर बनी इस स्थाई संरचना के दो दरवाज़ों का ऊपरी हिस्सा-एक ओर यदि विरोधी रंग-योजना के कारण अद्भुत चाक्षुष प्रभाव पैदा करता है तो दूसरी ओर प्रेस के नीचे का यह खंड तहखाने का और इसके दरवाज़ों का ऊपरी अंडाकार-सा अंश भयावह काली गुफाओं अथवा प्रकाश को लीलती राक्षसी आँखों का आभास देकर समकालीन राजनीति के बाहर-भीतर के परस्पर विरोधी चित्र को उजागर करता है।

'महाभोज' की दृश्य योजना प्रस्तुति बड़े व्यय-साध्य है और सूक्ष्म व्यौरों भरे दृश्य-बंध की उपयोगिता तथा प्रेक्षक की कल्पनाशीलता को अवरुद्ध करनेवाली विस्तृत मंच सज्जा की सार्थकता से भरा है। इस दृश्य-बंध में मंच-सज्जा सर्वाधिक अर्थपूर्ण, व्यावहारिक एवं उल्लेखनीय सिद्ध हुआ है। अतः महाभोज की दृश्य योजना प्रस्तुति की आत्मा से बहुत गहरे में जुड़ी है और नाट्यालेख की संवेदना को बहुत सूक्ष्मता तथा नाटकीयता के साथ रेखांकित करने में अपने महत्वपूर्ण भूमिका भी निभाती है। यथार्थवादी सार्थक नाट्यालेख 'महाभोज' अपनी सारी प्रासंगिकता के बावजूद लगभग तीस पात्रों, ग्यारह दृश्यों और बहुसंख्यक प्रशिक्षित अभिनेताओं के

साथ बहुरंग स्थलीय विराट दृश्य-बंध, तकनीकी कौशल और अन्य साधनों की अपेक्षा करता है। लेकिन व्यावहारिक दृष्टि से दुर्भाग्यपूर्ण सत्य यह महसूस होता है कि देश की दलित किंतु संघर्षरत जनता के लिए सामाजिक जागृति और प्रतिरोध के हथियार के तौर पर इस अर्थपूर्ण एवं जीवंत नाट्यालेख के व्यापक उपयोग की ज्यादा संभावना वर्तमान समय में दिखाई नहीं हुई। केवल प्रासंगिक कथ्य के प्रभावी संप्रेषण की दृष्टि भी मात्र नहीं प्रदर्शन मूल्यों के लिहाज़ से भी एक सफल प्रस्तुतीकरण है 'महाभोज'। निश्चय ही यह नाट्य प्रस्तुति बुद्धिजीवी और प्रेक्षकों के बीच समान रूप से लोकप्रिय तथा प्रशंसनीय बन गया है।

अमाल अल्लाना ने रंगमंचीय नाटक के अलावा टेलीविज़न नाटक का भी निर्देशन किया है। अमाल अल्लाना के सूक्ष्म से सूक्ष्म कार्यों तक का ध्यान, सुझाव दृष्टि एवं प्रतिभा के कारण उनके द्वारा निर्देशित प्रायः सभी नाटक सचमुच प्रभावशाली बन गए हैं, जो लेखक, रंगकर्मी तथा दर्शक-समीक्षक को समान रूप से संतुष्ट कर सकें। हिन्दी नाट्य साहित्य में रंगकर्मी महिला नाटककारों का योगदान गरिमापूर्ण है। अपनी प्रतिभा, क्षमता एवं समर्पण से पुरुषों के बराबर ज्वलंत महिला रंगकर्मी हिन्दी रंगजगत के लिए ही नहीं, भारतीय रंगमंच के लिए भी खजाना है। वे किसी एक दायरे में सीमित न रहकर अनवरत बहनेवाली सरिता के समान बहती रहती हैं।

संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. लक्ष्मण सहाय, रंगकर्म और नाटककार, पृ.49.
2. डॉ. जयदेव तनेजा, आधुनिक भारतीय रंग परिदृश्य, पृ.166.
3. डॉ. जयदेव तनेजा, हिन्दी रंगकर्म दशा और दिशा, पृ.166.
4. डॉ. जयदेव तनेजा, हिन्दी रंगकर्म दशा और दिशा, पृ.166-167.

कमल कुमार की कहानियों में स्त्री अस्मिता की तलाश
(''पहचान'' कहानी के सन्दर्भ में)

तंकम्मा. एम.एस.
शोध छात्रा
महाराजास कॉलेज, एरनाकुलम

कमल कुमार हिन्दी की मशहूर कलाकार, उपन्यासकार, कवयित्रि एवं एक स्त्री विमर्शक है। इनके कथा साहित्य का संबंध सीधे जन सामान्य से जुड़ता है। उन्होंने अपनी कहानियों में हमारे चारों ओर फैले .पड़े क्रूर यथार्थ, विडंबनाओं तथा विसंगतियों में पडे हुए साधारण मनुष्य का मार्मिक चित्रण किया है। प्यार, अपनत्व, समर्पण भाव, धर्मनिरपेक्षता और मानवीय संवेदना का सच्चा चित्र इनकी रचनाओं में पा सकते हैं। उन्होंने चुनौतिपूर्ण विषय वस्तु के ज़रिए जीवन के विविध पक्षों का वर्णन किया है।

'पहचान' (1984) 'क्रमशः' (1986) 'फिर वहीं से शुरू' (1998) 'वेलैटाइन डे' (2002) 'घर - बेघर' (2006), 'पूर्णविराम', 'अंतर्यात्रा' आदि उनके कहानी संग्रह हैं। देश - विदेश के (अमेरिका के प्रवासी भारतीय) कई साहित्यिक संस्थाओं ने विभिन्न पुरस्कारों से उन्हें सम्मान किया है।

नयी पीढ़ी की स्त्री को अपने औरत होते और अपने स्वत्व के अर्थ की पहचान है। वह धर्म के नाम पर होनेवाले व्यर्थ दंगों पर नहीं उतरती है। जाति - धर्म आदि के साथ समझौता करने में उसे अधिक देर की ज़रूरत नही है। धर्म, स्त्री के खिलाफ़ प्रयुक्त होनेवाला एक सशक्त हथियार है। इस के नाम पर होनेवाले भेद-भाव और अपमान उसे मान्य नहीं है। वह अपने अहं और बुद्धि शक्ति से परिचित ही नहीं, उसे समाज की भी अच्छी पहचान है।

'पहचान' शीर्षक कहानी में चॉदनी-चौंक के एक संयुक्त परिवार की कथा है। इसकी नायिका डॉरथी अपने स्वत्व को पहचाननेवाली है। डॉरथी के पति की माँ और बूढी माँ दोनों पुरानी रीति-रिवाज़ों के अनुसार जीवन बितानेवाली हैं। डॉरथी के पति सुरेश एक निर्मम तथा स्वार्थी पुरुष है। कहानी का एक उल्लेखनीय कथापात्र है धीरज। सुरेश का बड़ा भाई महेश, हमेशा अनमना रहनेवाला आदमी है। राजेन्द्र, कहानी का एक स्मरणीय पात्र है। वह संगीत प्रिय है। डॉरथी का दोस्त है। लाला एक नौकर है, वह सदा व्यस्त है। अगला पात्र एक बूढ़ा बीमार है, बूढ़ी माँ के पति है वह। मीनू आधुनिक काल की नारी है। वह एक विचित्र मानसिकता का दृष्टांत है। वह ज़माने के ''को-लिविड़' का नमूना है। घर की परिस्थितियों के संबंध में सर्वेक्षण केलिए आनेवाला

युवक भी इस कहानी का एक विशेष व्यक्ति है। महेश के दो बच्चे भी 'पहचान' में अंतर्गत हैं। मीनू का ''को-लिविड़'' पार्टनर, उन दोनों का छोटा सा बच्चा और बच्चे का देख-भाल करनेवाली स्त्री भी 'पहचान' के सदस्य हैं।

प्रस्तुत परिवार में स्त्री की पत्नी, माँ, बहन, चाची, कामकाजी जैसी विभिन्न भूमिकाएँ हैं। उसका अपना भावनालोक परिवार से संबन्ध है। इसलिए परिवार के प्रति वह अधिक संवेदनशील और सेवानिरत रहती है। उसी वक्त परिवार में उसका सर्वाधिक शोषण भी होता है। ससुराल में नारियों का शोषण नयी बात नहीं जब से पारिवारिक जीवन की परंपरा शुरु हुई तब से आज तक रिवाज़ लगातार कायम रहती है। ''पहचान'' की डॉरथी भी उसका अपवाद नहीं।

डॉरथी चतुर और कामनिरत नारी है। हर रोज़ स्कूल और दफ्तर जाने के पहले और शाम को वापस आने के बाद घर के बिखराव अर्थहीन शोर और संघर्ष के बीच डॉरथी के काम करते जाते रहे। पल भर केलिए आराम का वक्त न मिलने से उसका दिल दुखता रहता है। रोज़-रोज़ चूल्हे के कामों से उँगलियाँ जलती हैं। आटा गूँथते सबेरे की चाय की तलब से हल्का-हल्का सिरदर्द महसूस होने पर सोचने की भी फुरसत नहीं रही। इन सब से असहनीय लज्जास्पद बात यहाँ होती है। जेठजी बाथरूम के दरवाज़े की फ़ांक से नंगी बाहु के साथ किरकिराती आवाज़ में ''तौलीया पकडाओ''[1] पुकारते तो डॉरथी ठिठककर चारों और देखने लगती है। उसके मन में शंका है कि कोई दूसरा, जेठजी की निन्दनीय व्यवहार देख रहा है। फिर भी जेठजी रोने के नाते, वह उलटे पैरों दौडकर दरवाज़े की ओर से झिझकते हाथ से तौलिया पकडा देती है।

डॉरथी ललित जीवन और उच्च विचार की युवती है। वह अपना शरीर जगमगते आभूषण और ज़रीदार कपड़ों से अलंकृत करना नहीं चाहती है। शादी के बाद माथे पर सिन्दूर डालने में उसे कोई विश्वास नहीं। डॉरथी अपने घर की सजावट और घरवालों की सेवा बड़ी खुशी से करती है। ससुराल के हर एक व्यक्ति उसके प्रिय है। उन्हें खुश रखने वह अपना धर्म समझती है। घर को तुलवा - रँगाकर नया रूप देने में उसे कोई संकोच नहीं है। माँजी उसकी सेवा से थोडा खुश और संतृप्त है। फिर भी वह बीच - बीच में उनकी छेड देती है। लेकिन डॉरथी इस ओर बेपरवाह रहती है। कभी-कभाक मात्र ही अपने घर आनेवाले धीरज को, शादी के बाद जबरदस्ती से डॉरथी खींच लाती है। बडे भाई महेश के नालायक बच्चों को समझा बुझाकर वह अस्तव्यस्त घर को खुद तरतीब से लगाती है।

डॉरथी संगीत में उच्चशिक्षा प्राप्त की हे। उसके जीवन का प्रमुख अंग संगीत की कला है। तन तोड़कर घर की सेवा करने से उसका मन संगीत से छुट जाता हे। इसी वजह से उसकी उँगली का निशान फीका पड़ने

लगा। एक ही छत्त के नीचे होने पर भी सब लोग एक दूसरे से कोसों दूर अलग रहते हैं। ऐसे अव्यवस्तित परिवार के सदस्यों को एक ही डोर में बाँधने में डॉरथी एक सीमा तक सफल हुई है।

एक समृद्ध व्यापारि परिवार का प्रतिपादन ''पहचान'' कहानी में किया है। तंग गली के उस घर की दो स्त्रियों का प्रस्तुतीकरण विशेष रूप से किया है। उन में एक अधेड उम्र की है और दूसरी एक बूढ़ी स्त्री है। वे दोनों डॉरथी के पति की माँ और माँ की माँ है। उनका मन वर्णव्यवस्था, जातिभेद, छुआछूत जैसे जीर्ण-शीर्ण खराब चिंताओं से ग्रस्त है। अशुद्ध तंग-गलियों के वातावरण में गुज़रने पर उनका मन वर्ग-भेद के मालिन्य से भरपूर रहता है। ईसाई धर्म की लड़की से संपर्क करने के नाते माँ अपने बेटे को भी अच्छूत मानती है। शादी के बाद नववधु डॉरथी माँ-बाप की आशीर्वाद केलिए ससुराल में पहली बार पहुँचती है। लेकिन माँजी बहु को घर के भीतर घुसने नहीं देती है। यही नहीं घर के बर्तनों तक छूने नहीं देती है। क्यों कि पुत्रवधु ईसाई धर्म की है। पुराने बुजर्वा लोगों के मन में संगीत की कला की ओर रूखा मनोभाव है। संगीत में वे बुराई और निंदा देखते हैं। उन के मन में नाच-संगीत आदि हास्यास्पद है।

एक दिन अचानक राजेन्द्र डॉरथी के घर में आता है। वह भी डॉरथी के समान संगीत प्रेमी है। राजेन्द्र अपने हल्के हाथों से तबले पर ताल देने लगा। झट से ही ज़मीन पर और पटककर घरवाले वहाँ आते हैं। बम फटाके की आवाज़ में शब्द निकला, ''रोको-रोको।''[2] फिर सुनाई पड़े ''यह क्या बईजी का कोठा है? यहाँ इज्जतदार लोग रहते हैं।'' इस धमाके से अपमानित राजेन्द्र जड सा रहता है। डॉरथी को यह असहनीय लगी। वह तुरंत ही क्षमा माँगकर अपने मित्र को लौटा देती है। अपनी निंदा के प्रतिरोध के रूप से डॉरथी माँजी से सवाल करती है, ''संगीत की साधना क्या बुराई है माँजी? आपने इतने अपशब्द कहे बाहर के व्यक्ति के सामने।''[4] माँ इसपर व्यंग करती हुई कहती है ''यहाँ भांडों की चौकडी जोडने की ज़रूरत नही है।''

पुरानी पीढ़ी की स्त्री अपने-आपको पतिपरायण और पतिव्रता मानती है। जीवन भर पतिसेवा करना अपना धर्म है - ऐसा वह विश्वास करती है। पति के स्वास्थ्य और सुखद ज़िन्दगी केलिए वह करवाचौथ व्रत का अनुष्ठान करती है। उत्तर भारत में पति के दीर्घायू केलिए करवाचौथ व्रत एक त्योहार के रूप में मनाया जाता है। ''पहचान'' की दादी माँ भी यह व्रत वडी निष्ठों से करने वाली है। उस दिन वह माथे पर बडी सी बिंदी लगाए गहनों में गमकती खडी रहती है। कीमती रेशमी साडी पहनकर पूजा घर में बैठकर आँखें मूँदे मनका फिरा रही है। उसी वक्त उसके पति पलंग से गिरकर गूंमूत में सने-सने पडे हुए हैं। गिरने की आवाज़ सुनने पर भी वह अनसूनी करके और भी तेज़ी से फिराने लगी। सुहाग की रक्षा के व्रतानुष्ठान करनेवाली बूढ़ी माँ से अपने पति नीचे गिरकर अपने को उठाये जाने की दुआ माँगते रहते हैं। इसी अवस्था में भी दादी माँ पति के पैर का अंगूठा छुआकर चरणामृत ग्रहण करती है। वह उनकी ज़िंदा-लाश की दीर्घ जिन्दगी केलिए व्रत रखती है।

इसी बीच दादी माँ के साथ इस में भाग लेने केलिए डॉरथी आती है। उसकी आभूषण रहित साधारण-सी-साधारण वेशभूषा बूढ़ी माँ को अचंभे में डालती है। वह डॉरथी की ओर व्यंग करती हुई पूछती है, ''अरी ऐसे? न मांग भरी, न बिंदि या लगाई, न गहना, न कपडा। सुहाग की रक्षा का व्रत रखा है। ऐसी ठूँठ बनी खडी है, जा बदली करके आ।''[5] माथे के सिन्दूर की बात सुनते ही उसके मन में धीरज के शब्द कोंधने लगे। जापान में पति अपनी पत्नियों पर अपने नाम का ठप्पा लगाकर उनकी वैडिंग करने थे। उसी प्रकार भारत में सिन्दूर एक तरह सी विवाहित होने का ठप्पा है। उसके अनुसार स्त्री के शरीर पर लगानेवाला यह छापा जिन्दगी भर उसे शोषित रखने का ही निशान है। शायद दादी माँ भी कभी शब्द से, कभी तटस्थ रहकर कभी निर्विकार रहकर अपने पति के अत्याचारों का प्रतिकार कर रहती है। इसी बीच बुढ़िया माँ अपनी कुर्ती उठाकर कहा, ''ये निशान देखती हो ये इसी की मरदानगी है।''[6] खुलासा दिखाने पर डॉरथी एकबारगी दहल जाती है। नख से शिख तक अलंकृत होकर माँजी भी वहाँ बैठती है। बूढ़ी दादी की सास घंटा भर आई तो वह अपने अत्याचारी बेटे के पक्ष में रहकर कहती है, ''कालीहारी तो क्या हो गया, पति है, तेरा दो-चार लगा दी तो क्या आसमान फट गया। हमारा ज़माना तोः।'' उस बूढी का सास भी उसे कलही बताकर फटकारती है और कहती है, ''दूसरों को होइती फिरती रहती है, यूँही जा अपना काम कर।''[8] पति की जिन्दगी में पत्नी केवल अपनी ज़रूरतें भरने की एक चीज़ मात्र ही है। इसप्रकार शोषण सहनेवाली स्त्रियों को कहानीकार चेतावनी ही नहीं देती व्यंग बाण भी भेजती है।

नौकर-चाकर सदैव शोषण के शिकार बने रहे थे। ये लोग अपनी भूख मिटाने केलिए दिन-रात एक करके काम करनेवाले हैं। बेचारे ये काम के दबाव में रहनेवाले हैं। यहाँ का नौकर लाला भी ऐसा एक पात्र है। उसपर निरंतर काम के आदेशों की बौछार पडती रहती है। पहली आदेश को धक्केलकर दूसरे आदेश की आवाज़ फिर तीसरी। इसी तरीके से ही एक-के-एक आदेश सुनाई देती है। इसलिए लाला धर्म संकट में पड जाता है। वह कोई भी काम शांत होकर नहीं कर पाता। लाला चुप्पी होकर किसी कर्ज-सा प्रत्येक काम चुकाए चला जा रहा है। समाज और परिवार में नौकरों का शोषण एक साधारण सी बात है। बीच-बीच में इस जटिल समस्या पर सर्वेक्षण भी होता रहता है। घरेलू नौकरों पर होनेवाले काम के दबाव और उसकी परिस्थितियों पर सर्वेक्षण केलिए एक दिन एक युवक आता है। माँजी जल्दी ही युवक की आडे खडी रहती है। घर की मालिकिन के अनुरूप अधिकारपूर्ण आवाज़ में वह उसकी ओर आज्ञा देता है, ''तुम कौन होते हो, हमारे घर के जाँच-पडताल करने वाले, चलो, जाओ।''[9] वह उस शिक्षित मान्य व्यक्ति के मूँह छोत बरसाकर धड से दरवाज़ा बंद कर देती है। फिर वह उसकी और पत्थर उछालती है और उसको न रोकने से बहु की ओर फटकारती है। बूढ़ी

माँजी के मन में मात्र नौकर की ओर नही शिक्षित युवकों की ओर भी निंदा का भाव है। वह अपने-आप को सब के ऊपर मानती है। दूसरे लोग उसके आज्ञानुवर्ती होना चाहती है।

मीनू आज की एक उच्च शिक्षित नारी है। वह घर के सारे उजाड खंड के बीच भी पूरी तरह निर्लिप्त रहती है। घर के सब शोर देखने-सुनने पर भी वह कुछ न देखने-सुनने का बहाना करती है। उसकेलिए कोई आवाज़ और चिल्लाहट मायने नहीं रखती है। घर से कहाँ, कब आने-लौटने या न लौटने के बारे में उस से पूछने-कहने की हिम्मत किसी को नहीं है। उसके अपने सब कार्य उसकेलिए स्वतंत्र और सहज है। तंगगली की दल-दली गृहस्थी में भी वह सज-धजकर एडियाँ और गर्दन उठाये खडी रहती है। बोलचाल के बीच में एक बार मीनू की बैग से निरोध के पैकट नीचे गिर गए। यह देखते ही डॉरथी हतप्रभ-सी हो गयी। मीनू अपने पर्स के हवावे करके शांत दृढ़ रूखी स्वर में कहती है, ''यह मेरी पर्सनल ज़रूरत है।''[10]

थोडे ही दिनों के बाद कनॉट प्लेस में मीनू डॉरथी से मिला। वह लपककर आयी और उसके हाथ थाम ली। मीनू उसे एक गलियार जैसे मकान ले गयी। दरवाज़ा खुलने पर एक स्त्री आयी। उसकी गोद में एक डेढ़-दो वर्ष का बच्चा है। मीनू उस बच्चे को खींच सा लेकर चूमती-चुमकारती रही। वह फिर बोली, ''यह मेरा बेटा है।''[11] उसका नाम खिढ है। वह बोलती रही, ''हम ने शादी नहीं की, उसकी ज़रूरत ही महसूस नहीं हुई। मनीष और मैं साथ-साथ रहते हैं। जब तक रह सकेंगे हम बहुत खुश हैं।''[12] विस्मित होकर डॉरथी वहाँ से लौटी। वर्तमान कालीन पढी-लिखी नारियों में ऐसी विकृत मानसिकतावाली भी है। वह स्वतंत्र और अलस जीवन बिताती है। अपनी मर्जी उनकेलिए अमूल्य और मान्य है।

''पहचान'' की नायिका के पति एक व्यापारी है। उसका व्यापार भी बहुत विकसित होकर आगे बढ़ता रहता है। उसके मन में केवल उसके व्यापार के माल, उसकी बिक्री के अलावा किसी भी पर परवाह नहीं है। यही नहीं माल के आने उसके बेचने या न बेचने पर भी उसे अधिक चिंता या परेशानी नहीं है। अपनी पत्नी का अस्तित्व उसकेलिए अपनी दिनचर्या का आखिरी हिस्सा है। पत्नी के साथ सोने का वक्त भी बिना संवाद या स्फुरण का है। पत्नी की इच्छा या अनिच्छा को पहचानने की वह कोशिश नहीं करता है। मशीन की तरह कोई संवेदना के बिना सुरेश की हथेलियाँ उसके शरीर को दबोचती, दाबती और गुँथती रहती हैं। पति सुरेश की जिन्दगी में अपनी पत्नी की ज़रूरत ''पेट व पेट के नीचे की थी।''[13] उसका मन वितृष्णा, भय व दुख से बिलबिला उठकर सवान करता है, ''क्या इसी में उसके पत्नी होने का सुख, सुरक्षा व जिन्दगी की धडकन है।''[14]

पुरुष में कितनी ही कमियाँ और कमज़ोरियाँ हैं उसे समझने केलिए वह तैयार नहीं है। स्त्री का सुख, सुरक्षा और स्वास्थ्य वह नहीं मानता है। उसके अनुसार स्त्री केवल अपनी उपयोग की वस्तु है। पुरुष की दृष्टि में स्त्री अपना गुलाम एवं हमेशा केलिए एक प्राप्य साधन मात्र ही है।

''पहचान'' का और एक कथापात्र है धीरज। वह अपने तंग घर में शोषण मुक्त, वर्गहीन और खुला-खुला सा वातावरण चाहता है। महेश डॉरथी के पति का बड़ा भाई है। आजकल उसकी पत्नी की मृत्यू हुई है। पत्नी के अभाव में उसका जीवन बहुत शोकमूक बन जाता है। वह दो बच्चों के पिता भी है। लेकिन अपने छोटे बच्चों के प्रति भी कोई ध्यान नहीं देता है। किसी की ओर भी उसके मन में तत्परता नहीं है। माँ की मृत्यू के बाद बच्चे नन्हा टिंकु और बाँबी दोनों बिलकुल अनाथ बन गये। अपने पिता से भी प्रेम-वत्सलता से भरा हुआ व्यवहार न पाने से वे एकदम दुःखी बन जाते हैं। सदस्यों की संख्या में वह परिवार बहुत बडा है। लेकिन किसी से भी प्यार-दुलाकर का एक स्पर्श या सांत्वना उसे नहीं पाया। उस अशांत परिवार में दोनों का जीवन बहुत कठिन हो जाता है। वे धीरे-धीरे हुडदंगे और नालायक बन जाते हैं। फिर डॉरथी के आगमन से दोनों के जीवन में कुछ परिवर्तन आने लगता है।

कमलकुमार की कहानियों में मानवीय संवेदना के धरातल पर मध्यवर्गीय कुरूपताओं और असंगतियों का अहसास मिलता है। आम आदमी में विद्यमान आत्मीयता और कोमलता इनकी रचनाओं का महत्व है।

इनकी रचना परंपरागत शैली से अलग होकर पाठक की इच्छा पूर्ती करती है। उन्हें अपना एक निजी कलात्मक भाषा शैली है। संकेतों, बिंबों, प्रतीकों में कहने में वे सिद्धहस्त हैं। जीवन और जगत के कटु अनुभवों का रचनात्मक और कलात्मक वर्णन से वे पाठक को चमकृत करती है।

नयी पीढ़ी की नारी सामाजिक रूढ़ियों, परंपराओं का बोझ उठाना नहीं चाहती। वह अपने स्वत्व और अस्तित्व को पहचानने की ताकत रखनेवाली है। वह परिवार में अपना अस्तित्व बनाये रखने केलिए लगातार लडती रहती है। उच्च शिक्षित नारी पुराने मिथक को तोडती पितृसत्ता की सामंतशाही के विरुद्ध खडी होती है। वह जीवन का अपना अर्थ तलाश करती है। घर के चार दीवारों के भीतर धम-घूट-घुट कर जिन्दगी काटने केलिए वह तैयार नही है।

नारी जीवन की प्रगति केलिए बदलाव अत्यंत आवश्यक है। आज की नारी आत्मनिर्भर है। इसलिए उनके विचार और दृष्टिकोण बदल रहे हैं। इनके जीवन में नये मूल्यों की भावना की नितांत ज़रूरत है। इसपर ''शोभा परवार'' का यह कथन,''[15] आधुनिक चिंतन में नारी को देह और मान के स्तर पर सोचने केलिए ज़मीन तैयार की है। शिक्षा, विवाह, पति-पत्नी के आपसी संबंध, स्त्री-पुरुष संबंध तथा ''कैरियर'' को लेकर

उसकी सोच में परिलक्षित होता है।'' ''पहचान'' कहानी की प्रख्यात गायिका के जीवन में शादी के बाद अपने मृदु-सुन्दर जीवन की हरियाली को साँस के अपशब्दों से पाला माराजाता है। इसकी प्रतिक्रिया के रूप में नायिका के मुँह से कमल कुमारजी बोलती हैं, ''वह हिम्मत नहीं हारेगी - - - - - - एक औरत, लेकिन वह कुछ और भी है, वह जो वे सब नहीं है, लेकिन जब भी वह अपनी बात पर आती है, उसका चेहरा सपाट हो जाता है - - - उसका रूखा स्वर अस्वीकार की विकृत मुद्रा में बन जाता है।''16

संदर्भ

1. कमल कुमार - ''कमल कुमार की यादगारी कहानीयाँ '' ''पहचान'' - पृष्ठ संख्या - 16
2. कमल कुमार - ''कमल कुमार की यादगारी कहानीयाँ '' ''पहचान'' - पृष्ठ संख्या - 10
3. कमल कुमार - ''कमल कुमार की यादगारी कहानीयाँ '' ''पहचान'' - पृष्ठ संख्या - 11
4. कमल कुमार - ''कमल कुमार की यादगारी कहानीयाँ '' ''पहचान'' - पृष्ठ संख्या - 11
5. कमल कुमार - ''कमल कुमार की यादगारी कहानीयाँ '' ''पहचान'' - पृष्ठ संख्या - 15
6. कमल कुमार - ''कमल कुमार की यादगारी कहानीयाँ '' ''पहचान'' - पृष्ठ संख्या - 15
7. कमल कुमार - ''कमल कुमार की यादगारी कहानीयाँ '' ''पहचान'' - पृष्ठ संख्या - 16
8. कमल कुमार - ''कमल कुमार की यादगारी कहानीयाँ '' ''पहचान'' - पृष्ठ संख्या - 16
9. कमल कुमार - ''कमल कुमार की यादगारी कहानीयाँ '' ''पहचान'' - पृष्ठ संख्या - 13
10. कमल कुमार - ''कमल कुमार की यादगारी कहानीयाँ '' ''पहचान'' - पृष्ठ संख्या - 13
11. कमल कुमार - ''कमल कुमार की यादगारी कहानीयाँ '' ''पहचान'' - पृष्ठ संख्या - 14
12. कमल कुमार - ''कमल कुमार की यादगारी कहानीयाँ '' ''पहचान'' - पृष्ठ संख्या - 14
13. कमल कुमार - ''कमल कुमार की यादगारी कहानीयाँ '' ''पहचान'' - पृष्ठ संख्या - 16
14. कमल कुमार - ''कमल कुमार की यादगारी कहानीयाँ '' ''पहचान'' - पृष्ठ संख्या - 16
15. कमल कुमार - ''कमल कुमार की यादगारी कहानीयाँ '' ''पहचान'' - पृष्ठ संख्या - 83
16. कमल कुमार - ''कमल कुमार की यादगारी कहानीयाँ '' ''पहचान'' - पृष्ठ संख्या - 83

कला साहित्य और संस्कृति

राधिका.आर.वी
शोधछात्रा
महाराजास कॉलेज, एरणाकुलम्

मानव जीवन आधुनिक युग में प्रगति की ओर बढ़ रहे हैं, जो जीवन के हर क्षेत्र में विद्यमान है। मानव जब बदलती परिस्थितयों के अनुसार अपने सोच विचार और आचरण में बदलाव लाया तब उसका संस्करण प्रारंभ हुआ। आदिम मानव से आधुनिक मानव की ओर जो रूपांतरण हुआ उसमें यह संस्करण का बहुत बडा योगदान है। मानव अपने नए-नए विचारों और आविष्कारों के द्वारा जीवन को केवल जीने योग्य ही नही बल्कि आस्वाद्य भी बना दिया। जीवन को और भी खुबसूरत बनाया। मानव के आंतरिक संस्करण के साथ कला, साहित्य और संस्कृति का सृजन हुआ। यह क्षमता मानव के लिए प्रकृति का वरदान है। प्रकृति के साथ तादात्म्य प्राप्त करने पर मानव के अन्दर छिपी हुई रचनात्मक शक्तियाँ जाग उठी। क्योंकि प्रकृति स्वयं एक कलाकार है। सूर्य का उदयास्तमय, हरे-भरे पेड-पौधे, पक्षियों का कलकूजन, नीला अनंत आकाश, चंद्रमाँ का सौन्दर्य आदि का सृजन प्रकृति ने ही किया है। इन सब का अनुभव करनेवाले मानव को स्वाभाविक रूप से सृजनात्मकता प्राप्त होती है। यह सृजनात्मकता ही कला और साहित्य की जननी है।

कला

''जीवन के उस माधुर्य साधन को कला कहना चाहिए जो हमें भौतिक और मानसिक उल्लास-आनंद की उपलब्धि कराए। दूसरे शब्दों में, मानव निर्मिति भौतिक और मानसिक आनंद के उपादानों में जो कुछ भी सुंदर, अद्भुत और विलक्षण है, उसे ही कला का नाम दिया जा सकता है।''[1]

'कला' शब्द बाहरी रूप से बहुत छोटा है, लेकिन इसका आंतरिक अर्थ बहुत विस्तृत है। जब मानव अपने विचारों विकारों और अनुभवों को एक प्रत्येक तन्मयता के साथ एक अनुपम सौंदर्य से अलंकृत करके जन हृदय को आस्वादन के उच्चतम स्तर पर ले जाते हैं

वहाँ कला का सृजन होता है। इन्सान अपनी आत्म संतृप्ति के लिए भी कला का सृजन कर सकता है। यह क्षमता तो मानव के अलावा किसी अन्य जीव-जन्तुओं में देखी नही जा सकती। जब कोई एकाग्र चित्त से पूरी निष्ठा के साथ किसी भी कलारूप का सृजना करता है और जन मानस को मुग्ध करने में सक्षम हो जाता है तो वह कला पूरे मानव समाज के लिए अनमोल संपत्ति बन जाती है। कला का क्षेत्र बहुत ही विस्तृत है। नृत्य, वाद्य, संगीत, चित्रकला आदि बहुमुखी स्वरूप कला का ही है। आज कला तो मानव जीवन का एक अंग बन चुका है। इन्सान की वैयक्तिक रुचि उसे कला की ओर अग्रसर कराता है।

साहित्य को भी हम कला की संज्ञा दे सकते हैं। साहित्य शब्द का अर्थ 'हित सहित होना' है। ''सहितस्य भावः साहित्य अर्थात् हित के साथ होने का भाव ही साहित्य है। जहाँ शब्द और अर्थ विचार और भाव परंपरानुकूलता के साथ सहभाव हो, वही साहित्य है।''[1] साहित्य का उद्देश्य बहुमुखी है। वह केवल मनोरंजन तक सीमित नही है। साहित्य का लक्ष्य तो मानव की सद्वृत्तियों का विकास करते हुए उसके व्यक्तित्व का निर्माण और विकास ही है। आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विववेदी की राय में -''साहित्य का लक्ष्य मनुष्यता ही है। जिस पुस्तक से यह उद्देश्य सिद्ध नही होता, जिससे मनुष्य का अज्ञान, कुसंस्कार और अविवेक दूर नहीं होता, जीससे मनुष्य शोषण और अत्याचार के विरुद्ध सिर उठाकर खडा नही हो जाता, वे पुस्तकें किसी काम की नहीं।''[2] अर्थात् साहित्य का लक्ष्य सुसंस्कृत जनता का निर्माण है। साहित्य मानव को अपने अस्तित्व का बोध दिलाता है। साहित्य के माध्यम सेइन्सान अपनी विचारधारा को दूसरों तक पहुँचाने के साथ-साथ पाठकों को भावना के अद्भुत लोक की ओर ले जाते हैं। साहित्य मानव की अभिव्यक्तियों का माध्यम होने के कारण एक देश या समाज की संस्कृति, सभ्यता और परंपरा की झलक उसमें विद्यमान होती है। बदलते परिवेशों के साथ-साथ साहित्यकार के दृष्टिकोण भी बदल जाते हैं। समाज में अंतर्लीन कुरीतियों और सभी प्रकार के अपचयों के खिलाफ साहित्यकार अपने कलम से युद्ध कर सकते हैं। साहित्य के बिना किसी संसार की कल्पना करना भी असंभव्य है।

संस्कृति शब्द का वाच्यार्थ है-सम्यक् कृति या चेष्टा। जिन चेष्टा या विचारों द्वारा मनुष्य अपने जीवन के समस्त क्षेत्रों में उन्नति करता हुआ सुख-शांति प्राप्त करता है, वे ही संस्कृति कही जाती है। संस्कृति किसी देश के दर्शन, परंपरा आचार-विचार और विवध कलाओं का संयोजित रूप है। यह भी कह सकती है दि संस्कृति प्रगतिशील भी है, क्योंकि

आदिम मानव को आधुनिक मानव के रूप में बदलेन वाली कडी संस्कृति है। 'संस्कृति' शब्द की व्याख्या के माध्यम से उसका स्वरूप हमारे सामने उजागर होता है। भारतीय मनीषी स्वामी ब्रह्मानदं सरस्वतीजी ने लिखा है-''मनुष्य की वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि सभी क्षेत्रों में लौकिक पारलौकिक अभ्युदय के अनुकूल देहेन्द्रिय, मन-बुद्धि, चित्ताहंकार की चेष्टा ही उसकी भूषणभूत सम्यक् चेष्टा या संस्कृति है।''[1] आचार्य रवीन्द्रनाथ ठाकुर के अनुसार-''मानसिक जीवन के स्वरूप का नाम संस्कृति है।''[2]

डॉ.सर्वपल्ली राधाकृष्णन की धारणा है कि ''संस्कृति वह वस्तु है, जो स्वभाव, माधुर्य, मानसिक निरोगता एवं आत्मिक शक्ति को जन्म देती है।''[3]

संस्कृति से संबंधित व्याख्याओं को पढने पर हमें यह तथ्य प्राप्त होती है कि संस्कृति मानव समाज को परिष्कृत करनेवाली शक्ति है। मानव के आचार-विचार का शुद्धीकरण करके एक नवीन मानव समाज का निर्माण करना संस्कृति का लक्ष्य है। संस्कृति भौतिक विकास के साथ-साथ मानसिक विकास करके मानव स्वभाव को सुंदरतम बनाती है। मानव के मन में सामाजिक भावना उत्पन्न करके कल्याण के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करती है। हर देश की अपनी संस्कृति होती है। उस संस्कृति का विकास मानव के द्वारा ही संभव है। संस्कृति दर्शन, चिंतन, धर्म, नीति, कला, साहित्य सभी का समन्वय रूप है।

कला, साहित्य और संस्कृति ये तीनों परस्पर पूरक हैं। कला के विकास में साहित्य और संस्कृति का योगदान है। कला वह सुंदर वरदान है जिसकी सृष्टि केवल मानव ही कर सकते हैं। अगर साहित्य की बात करें तो वह अर्थपूर्ण सर्वोत्तम विचारों की सुंदर अभिव्यक्ति है। कला और साहित्य का सृजन सुसंस्कृत समाज ही कर सकते हैं। सिन्धुघाटी की सभ्यता के अवशेषों से ज्ञात होता है कि उस समय में भी भारतीय वास्तु तथा शिल्पकला ने बडी प्रगति की और उसी के आधार पर वैज्ञानिक ढंग से नगरों का निर्माण हुआ। इससे यह बात सिद्ध हो जाती है कि संस्कृति के साथ-साथ कला का भी विकास हो जाता है। यही सच है कि संस्कृति निर्माण में कला का महत्वपूर्ण स्थान है।

कला के स्वरूप को देखें तो हम यह कह सकते हैं कि कला एक उच्च सांस्कृतिक प्रयास है। क्योंकि कला मानव के विचारों और भावनाओं से युक्त है। उसके विचारों और भावनाओं की नींव तो संस्कृति ही है। ऐसे में हम कह सकते हैं कि संस्कृति कला की दिशा निर्देशिका है। इसलिए, आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा है-''कला संस्कृति को रूप देती है,

उसकी अभिव्यक्ति है। संस्कृति कला, तथा जीवन का आधार एवं उनकी प्रगति की मुख्य प्रेरणा है।''[1] इस कथन के आधार पर हम यह भी मान सकते हैं कि संस्कृति साहित्य का पथ-प्रदर्शक है। क्योंकि साहित्य मानव की कल्पनाओं, विचारों और अनुभूतियों कि अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। साहित्यकार अपनी रचनाओं के द्वारा पाठकों के हृदय में जगह पा लेते हैं। यह तभी संभव है जब रचनाकार के विचार-विकार पाठकों से तादात्म्य प्राप्त करता है। यह भी तो एक कला ही है। साहित्यकार एक उत्तम कलाकार ही है जो अपनी अनुभूतियों, विचारों और भावनाओं के द्वारा हज़ारों लाखों पाठकों को अपनी रचना की ओर आकर्षित करता है। साहित्यकार निजी जीवन के अनुभवों, सामाजिक यथार्थों और अपने नए-नए दृष्टिकोण को भी साहित्य के माध्यम से व्यक्त कर सकते हैं। समाज में व्याप्त अनीतियों, अधर्मों और आपत्तियों की ओर ध्यान दिलाकर उसके खिलाफ आवाज़ उठाने तथा समाज को सचेत करने के उद्देश्य से भी साहित्यकार रचना-कर्म करते हैं। तब उसकी रचनाएँ कल्पना और भावना के धरातल से यथार्थ की पृष्ठभूमि पर आ पहुँचती है। इस प्रकार की रचनाएँ मानव जीवन से सीधे जुड जाती है। समाज को सचेत करके अच्छे-बुरे का ज्ञान दिलानेवाला साहित्यकार समाज - सेवक भी है। अपनी संस्कृति और सभ्यता को धरोहर के रूप में देखनेवाले साहित्यकार सामाजिक शुद्धीकरण को अपना कर्तव्य मानता है। इसे दृष्टि में रखकर ही वह सृजन करता है। वह रचना निश्चय ही लोक कल्याणकारी बन जाएगी, इसमें कोई शंका नहीं, अतः साहित्यकार एक कलाकार ही है, जो अपनी रचना रूपी कला के माध्यम से एक सर्वोत्तम समाज की सृष्टि में भागीदार बन जाता है।

कला, साहित्य और संस्कृति मानव जीवन से इस प्रकार जुड गए हैं जिसे कभी अलग नही किया जा सकता। इन तीनों के अभाव में मानव मानव न रहकर पशु मात्र बन जाएगा। आधुनिक युग में संसार अनगिनत संघर्षों से गिरे हुए हैं। सही गलत का अनुमान लगाना भी कभी-कभी मुश्किल बन जाता है। सब लोग अपने आप में लीन है। वैयक्तिक सुख-सुविधाओं पर ही सभी का ध्यान है। यह परिस्थिति उत्तम मानवीय संस्कृति के पतन की ओर हमें ले जाऐगी। तब इन्सान और पशु में कोई अंतर नही देख सकेंगे। ऐसे अवसर पर मानव ही मानवता की रक्षा कर सकता है। वह मानव जो अपनी संस्कृति को देश, काल और वातावरण के अनुकूल रूप में स्वीकार करके इस विस्तृत संसार में अपने महत्व को प्रतिष्ठित करने में सक्षम हो। कला और साहित्य के द्वारा जीवन को मोहक और अर्थपूर्ण बनाए। कला और साहित्य के माध्यम से अपनी संस्कृति नित्य नूतन सनातन बन जाए। जीवन को मधुमय

और जीने योग्य बनाए। निष्कर्ष के रूप में हम यह कह सकते हैं कि कला, साहित्य और संस्कृति अलग-अलग नही बल्कि परस्पर बंधे हुए हैं। ये तीनों मानव जीवन को परिष्कृत करने के लिए सुशोभित करने के लिए और सांसारिक जीवन को सर्वोत्तम बनाने के लिए अपनायी गयी साधना है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हिंदी निबंध साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन डॉ बाबूराम
2. भारतीय संस्कृति नरेंद्र मोहन
3. मानव और संस्कृति श्यामचरण दुबे
4. काव्य के रूप बाबू गुलाबराय
5. विचार और वितर्क आचार्य हज़ारी प्रसाद द्रिववेदी

हिन्दी कहानियों में आदिवासी विमर्श

डॉ. अश्वति. वी.के
एच.एस.एस.डी हिन्दी
ओ.एल.सी.जी.एच.एस.एस
तोप्पुमपडी

इक्कीसवीं सदी के कथा साहित्य में आदिवासी जीवन का चित्रण धीरे-धीरे अपनी जगह बना रहा है । भारतीय स्वाधीनता के पचपन साल के बाद देश में दस करोड से ज़्यादा ऐसा अनावश्यक लोग है, जिन्हें संवैधानिक अधिकार भी प्राप्त नहीं हुए है । यहाँ अभी भी बावन करोड लोग निरक्षर है । तीस करोड से अधिक लोग गरीबी रेखा के नीचे है । संवैधानिक सुरक्षा के बावजूत भी महिलाओं, दलितों, बच्चों, एवं बूढों के साथ अमानवीय व्यवहार होता है । संघर्ष के इस दौर में अब जनजातियों को कहीं पीछे धकेल जा रहा है । वे आदि बाशिदे है और उन्हीं को नागरिक अधिकारी से वंचित करके समाज से फेंकने की साजिश हो रही है । इनमें इनकी संपत्ति जिसमें जंगल, पानी आदि शामिल है, छीन ली जाती है । सत्ता, प्रतिष्ठान, पुलिस आदि इसके साथ अमानवीय व्यवहार करते है । आदि मानव, संस्कृति की खोज करें तो आदिवासियों की रंगीन दुनिया में इसकी जड़ें को पाया जा सकता है ।

आदिवासी अब समझने लगे है कि उन्हें हर प्रकार से भाषा साहित्य, संस्कृति जंगल, संपदा से अलग किया जा रहा है । आज अभिजात्य साहित्य के बाहर एक बहुत बडा आदिवासी समाज जो बरसों से अपने अधिकारों से वंचित था । जिस समाज की ओर अभी तक साहित्य की नज़र भी नहीं गई । किंतु आज साहित्य में यह स्वर मुखर हो चुका है । हिन्दी में आदिवासी जीवन पर कुछ छूट-पुट कहानियों की रचना हुई है ।

राधा कृष्ण लाल बाबू ने 'संताल परगना' की पृष्ठभूमि में 'गेंद और गोल' कहानी, डॉ.श्रवण कुमार गोस्वामी की 'जिस दिए में तेल नहीं' तथा 'चाय-पानी' जैसे आदिवासी प्रधान कहानियाँ लिखी । डॉ. वासुदेव जी का 'इस जंगल के लोग' कहानी संकलन भी आदिवासी जीवन पर आधारित कहानियों की श्रेणी में गिना जाता है । आदिवासी जीवन पर केन्दित कहानियाँ दलित विमर्श के पश्चात् ही प्रारंभ होती है ।

आज आदिवासी जीवन केन्द्रित कहानियों में प्रगति दिखाई देती है । संजीव, रमणिका गुप्ता, हरिहर वैष्णव, लक्ष्मीनाराश्ण पयोधि, रोज केरकटयजी, अश्विनी कुमार पंकज, कालेश्वर, मेहरुन्निसा परवेज, राकेश कुमार सिंह आदि कहानीकार आदिवासी जीवन के विविध पक्षों के आधार बनाकर कहानियाँ लिख रहे हैं । कहानी संग्रह के रूप में – लक्ष्मीनारायण पयोधि जी का कहानी संग्रह 'संबंधों की एवज में' (1992) में प्रकाशित हुआ ।

इस कहानी संग्रह की 'संस्कार' कहानी आदिवासियों के शोषण की महागाथा है । कहानी का मुख्य पात्र खेती के लिए साहूकार से ऋण लेता है । ऋण न चुकाने पर साहूकार ज़मीन नाम लिखाने की बात करता है, किंतु वह ज़मीन को अपनी माँ समझता है । अंत में अपनी बैटी को साहूकार के पार गिरवी रखने को वह तैयार हो जाता है ।

संजीव ने आदिवासी जीवन पर आधारित कहानियों की रचना की । उनकी 'प्रेममुक्ति', 'टीस तथा अपरेशन जोनकी' आदिवासी जीवन पर आधारित कहानियाँ है । 'टीस कहानी आदिवासी जीवन के संघर्ष शोषण और समस्याओं को लेकर लिखी गई कहानी है । 'ओपरेशन जोनकी' नवसलवाला आंदोलन की पुण्य भूमि पर लिखा कहानी है ।

मेहरुन्निसा परवेज़ आदिवासी बहुल क्षेत्र बिस्तर में पली बढी है । उन्होंने बिस्तर के जगदलपुर में रहकर आपने काफी साहित्य रचा है । परवेज जनजातियों के आर्थिक, सामाजिक जीवन इनके विभिन्न सांस्कृतिक स्तर तथा क्रिया कलापों के बहुत नज़दीक से देखा परखा है । उनके कहानी संग्रह 'मेरी बस्तर की कहानियाँ (2006) में आदिवासी जीवन के परिवेश विभिन्न संस्कार, उनके खेल, घोटुल गृह का चित्रण, रीति-रिवाज़ों आदि का सुंदर चित्रण मिलता है ।

राकेश कुमार सिंह नई पीढ़ी के प्रखर कथाकार है, जो स्वयं आदिवासी क्षेत्र पलायु के निवासी है । उनके आदिवासी जीवन पर केंन्द्रित कहानी संग्रह 'जोडा धारल का रूप कथा' (2006) तथा महुआ मादल और अंधेर (2007) में झारखंड के आदिवासी जीवन से संबंधित विभिन्न पहलुओं को समेटे, दु:ख, दैन्य जीवन संघर्षों को इन कहानियों में उकेरा है ।

कालेश्वर स्वयं आदिवासी है, उनपके दो कहानी संकलन 'सलाम भटू' (2009) तथा 'मैं जीती हूँ' (2011) आदिवासी जीवन पर आधारित उनके सामाजिक-सांस्कृतिक सभी पक्षों को रखती है । इनके कहानियो में आदिवासियों के विस्थापन का दर्द है । 'रमणिका गुप्ताजी ने छोटा नागपुर की वादियों, जंगलों में आदिवासी महिलाओं की स्थिति से बखूबी परिचित रचनाकार है । इन्होंने साक्षात जीवन में आंदोलन को सहारा लिया और साहित्य में भी आंदोलनकारी रूप को निखारा है । उनका कहानी संग्रह 'बहुजुठाई' (2010) में आदिवासी स्त्रियों के शोषण के विविध रूप की चर्चा अपनी कहानियों में की है । रमणिका गुप्ता आदिवासी स्त्रियों के प्रति केवल सहानुभूति की दृष्टि से ही नहीं देखती उन्हें संघर्ष करना भी सिखाती है ।

साहित्य समाज का दर्पण है । चाहे वह समाज विदेशी हो या भारतीय साहित्य में आदिवासी समाज और उनका जीवन अब तक उपेक्षित ही है । कई दशकों से हिन्दी में कम अपनी मातृभाषा में आदिवासी कहानीकार सक्षम ढंग से लेखन कर रहे है । हिन्दी में जो कहानी संग्रह आदिवासियों के ऊपर लिखे गए हैं, वे हिन्दी में आदिवासी अस्मिता का विकास है ।

'इदन्नमम' में स्त्री का प्रतिरोधी स्वर

डॉ. अबिंली. एम. एच
असिस्टेंट प्रोफसर
नैपुण्या कॉलेज, कोरट्टी

साहित्यकार ने साहित्य की सभी विधाओं में स्त्री को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया । वही स्त्री अपने स्वत्व को तलाश करने के लिए स्वयं साहित्य सृजन की ओर अग्रसर हुई तो आलोचकों ने उसे 'स्त्री-लेखन' नाम से अभिहित किया । एक स्त्री मन को उसकी गहराईयों से समझने की क्षमता पुरुष से ज़्यादा स्त्री में होती है । इसलिए स्त्री-लेखन में स्त्री के भोगा हुआ यथार्थ का विश्वसनीय एवं प्रामाणिक अभिव्यक्ति होती है । स्त्री-लेखन के बारे में रोहिणी अग्रवाल का कथन उल्लेखनीय है – "स्त्री-लेखन स्त्री की मानवीय अस्मिता के लिए लड़ी जाने वाली वैचारिक लड़ाई है । इसका अभिप्रेत पुरुष को पछाड़कर अपने वर्चस्व का परचम फहराना नहीं ; बल्कि समाज में स्त्री-पुरुष के लैंगिक विभाजन और पहचान पर आधारित पितृसत्तात्मक व्यवस्था का कोई बेहतर समतामूलक मानवीय विकल्प खोजना है । यह एक सर्जनात्मक आन्दोलन है, जो स्त्री-पुरुष दोनों को बद्ध भूमिकाओं और रूढ़ छवियों से मुक्त कर आत्म विश्लेषण एवं आत्म परिष्कार का संवेदनात्मक आधार देता है ।"[1]

स्वतंत्रता पूर्व स्त्री लेखन में समाज सुधार, स्त्री अस्मिता एवं स्वाधीनता संग्राम के लिए आवाज़ था तो स्वातंत्र्योत्तर कथा साहित्य में चित्रित स्त्री पात्र समाज में अपना अस्तित्व को खड़ा करने के लिए प्रतिरोध करते हुए नज़र आती हैं । स्त्रियों ने कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक तथा अन्य विधाओं में अपने विचारों को अभिव्यक्त किया है । फिर भी स्त्री लेखन का केन्द्र बिन्दु उपन्यास बन जाने का प्रमुख कारण है- 'युगीन परिवेश' । स्त्री उपन्यासकारों ने उपन्यास जैसे विस्तृत कैनवास में मानसिक, पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं पारिस्थितिक परिवेश में शोषित स्त्रियों की समस्याओं को उद्धृत करके, स्त्रियों को अपने अधिकारों के प्रति सचेत होने की शक्ति दी है ।

उत्तराधुनिक युग की स्त्री उपन्यासकारों ने अपनी रचनाओं में हाशिएकृत स्त्री, प्रकृति और आदिवासी को मुख्यधारा में लाने का भरसक प्रयास किया है । बीसवीं सदी के अन्तिम दो दशकों में स्त्री उपन्यासकारों का सृजन सशक्त हुआ है, जिसमें मैत्रेयी पुष्पा का महत्वपूर्ण स्थान है । उनके अधिकांश उपन्यासों में गाँवों-कस्बों और आदिवासी टीलों के जनसामान्य के जीवन का वास्तविक चित्रण हुआ है । सन् 1994 में प्रकाशित मैत्रेयी पुष्पा के 'इदन्नमम' उपन्यास में एक गाँव के लिए सबकुछ समर्पित करनेवाली नारी के संघर्ष को समकालीन सामाजिक, राजनीतिक एवं पारिस्थितिक समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है । इसमें तीन पीढ़ियों – बऊ(दादी), प्रेम(माँ), मन्दा के अर्न्तसंघर्ष एवं बाह्य संघर्ष को दर्शाया है ।

उपन्यास का प्रारंभ सोनपुरा के भूतपूर्व प्रधान महेन्दर सिंह की माँ बऊ तेरह साल की अपनी पोती मन्दाकिनी को लेकर सोनपुरा से श्यामली जानेवाली घटना से हुई है । सोनपुरा गाँव में मन्दा के पिता महेन्दर सिंह एक अस्पताल बनाते है, उसके उद्घाटन समारोह के दिन महेन्दर की हत्या होती है । महेन्दर सिंह की हत्या के बाद उनकी पत्नी प्रेम, रतन यादव के साथ भाग जाती है । चालाक रतन यादव का उद्देश्य यह था कि प्रेम की संपत्ति हड़प लेने के साथ साथ मंदा की संपत्ति भी छीन ले सके । इस डर से बऊ अपनी तेरह साल की पोती की सुरक्षा के लिए उसको लेकर श्यामली गाँव के जागीरदार पंचम सिंह के घर जाती है । पंचम सिंह के रिश्तेदार दारोगा विक्रम सिंह का पुत्र, स्कूल में पढ़ाई करनेवाले मकरन्द से निरन्तर संपर्क से मन्दा को यह प्रतीत होता है कि पाँचवीं कक्षा तक शिक्षा अपर्याप्त है । लेकिन बऊ मन्दा की सुरक्षा को ध्यान में रखकर आगे की शिक्षा नहीं देती । पुलीस से बचने के लिए मन्दा को बिरगवाँ गाँव में रहना पडा, और उस दौरान पन्द्रह साल की उम्र में कैलास मास्टर द्वारा बलात्कार का शिकार होती है । श्यामली वापस आने पर मन्दा की सगाई मकरन्द से होती है, लेकिन मकरन्द के माता-पिता बेटे की इच्छा के विरुद्ध सगाई तोडकर उसे इलाहाबाद ले जाते हैं । मन्दा के पिता के अस्पताल में डॉक्टर बनने के लिए मकरन्द डॉक्टरी पढ़ने का फैसला करता है ।

सात साल बाद बऊ और मन्दा सोनपुरा में वापस आते है तो शहरीकरण के दौरान गाँव को पहचानना भी मुश्किल हो जाता है । क्रेशर के कारण सारा वातावरण प्रदूषित हो गया है । इसकी ओर उपन्यास में संकेत है - "चारों ओर बजरी, रेता और धुल के बवंडर ! नाक में रेत जबरदस्ती घुसी जा रही है । धरती-आसमान रेत ही रेत से अटा हुआ.....।"[2] ठेकेदारों द्वारा किसानों की कृषि क्षेत्र हडप लिए गए है, उसके बदले पहाडिया के ठेकेदार गाँववालों को क्रेशरों में काम करने भी नहीं देते है ताकि वे किसान भी न रहे और उन्हें मज़दूर होने के अधिकार से वंचित किया गया । बऊ और मंदा को यह ज्ञात होता है कि उनकी सारी ज़मीन गोविन्द सिंह ने अभिलाख को बेच दिया है । उस समय मंदा बऊ से कहती है – "दोष किसका है **? हमारा ही न ? हम क्यों गए थे पराये गाँव ? क्यों नहीं लड़े अपनी धरती पर ?** "[3]

राजा साब जैसे लोग विकास की ओर उन्मुक्त है, उसकी ओर उपन्यास में संकेत है – "सरकार विकास लाती है, उन्हें विनाश लगता है । किसी का खेत, किसी का बाग, किसी की मेंड़, किसी का ताल, किसी का घूरा, किसी का पोखर संकटों में घिरे हैं । हम क्या समझायें कि मूर्खों, इतनी छोटी-छोटी चीजों की परवाह की तो बड़ी-बड़ी प्रगति-योजनायें लागू कैसे होंगी **?** परियोजनाओं का क्या होगा **?** नई-नई तकनीकों को किस स्थान पर प्रयोग करेंगे **?** देश आगे कैसे बढ़ेगा **?**"[4] **अधिकारी वर्ग देश की प्रगति की चाह में साधारण जनता के खेत, बाग जैसी चीज़ों को नगण्य मानते हैं । पारिस्थितिक असंतुलन से पैदा होनेवाले दुष्प्रभाव के बारे में वे तनिक भी चिन्तित नहीं हैं । लेकिन मन्दा एक ऐसा स्त्री पात्र है, जो क्रेशर के कारण प्रकृति और गाँववालों पर पड़े दुष्प्रभाव के बारे में चिन्तित है जो उपन्यास में दृष्टव्य है -**"पहाड़, वन, नदियाँ, महुआ, बेर, करौंदी, चिरौंदी, हल्दी, अदरक – अरे, तमाम सम्पदा है । पर दुरभाग्य है हमारा कि हम नहीं बरत पाते । दलालों के सुपुर्द हो जाती है हमारी सम्पत्ति । पहाडों की नीलामी, वनों की बोली तहस-नहस कर देती है मनोरम वातावरण को । पहाड़ टूट रहे हैं, वन कट रहे हैं । सुनसान, सपाट मैदानों में फड़फड़ाते डोल रहे हैं पंछी-परेवा ! "[5] "क्रेशरों के कारण

गाँवों में धूल ही धूल छायी रहती है । पहले के मुकाबले दमा, साँस, तपेदिक कई गुना अधिक फैल गये हैं । मजुदूरों के ही नहीं, किसानों के शरीर भी हो गये हैं इन बीमारियों के घर ।"[6] "**क्रेशर्स के कारण पहाड़ पर अनहाइजीनिक कंडीशन्स हैं । दमा-खाँसी, टी.बी., पीलिया और टाइफाइड डस्ट और गंदे पानी के कारण इतनी जल्दी-जल्दी होता है यहाँ । धूल सबसे बड़ी दुश्मन है इन मज़दूरों की । डस्ट दबाने के लिए पानी के फव्वारे लगाने चाहिए । पीने के पानी का समुचित प्रबंध होना चाहिए ।**"[7]

गाँववालों की विवशता और गरीबी को देखकर मन्दा अपना ज़मीन वापस लेने का नहीं, बल्कि उनकी ज़िन्दगी का पुनरुद्धार का भी प्रयत्न करती है । कायले के महाराज के साथ मिलकर मन्दा किसान लोगों को संगठित करके उनमें चेतना जगाती है । महाराज मन्दा को संगठन का मूलमंत्र देते हैं । उनका नारा था – "सो जागो रे जागो ! चेतो रे चेतो ! छोटे-बडे, नन्हे-मुन्ने, बूढे-पुराने, नये जवानों के अलावा ढोर-चोंपे, परेवा-पंछी, नदी-ताल, पेड़-रूख, हवा-पानी यहाँ तक कि दसों दिशाओं को जागना होगा । बचने-बचाने को जूझना होगा । अमीर-गरीब, शत्रु-मित्र सबको शामिल होना होगा इस यज्ञ में । समय पड़े तो समिधा-सामग्री भी बनना होगा । बात होम की है । बात आन्दोलन की है ।"[8] मन्दा क्षयग्रस्त गाँव को सुधारने के लिए गाँव के प्रधान द्वारिका काका एवं अन्य ग्रामीणों के सहयोग से ट्रेक्टर खरीदकर गाँववालों की समस्या को एक हद तक सुलझाकर एक नये जीवन की शुरुआत करने में मदद देती है । उपन्यासकार ने यहाँ पारिस्थितिक संतुलन के ज़रिए गाँववालों को संतुलित जीवन उपलब्ध कराने के लिए संघर्षरत नारी को चित्रित किया है । पुरुष मेधा समाज स्त्री और प्रकृति को उपभोग की दृष्टि से देखता है । इसलिए आज स्त्री और प्रकृति विनाश के कगार पर खड़ी है । "स्त्रियों ने इस भयानक एवं संकटपूर्ण अवस्था के कारण समझ लिए । इसलिए उसने अपने आपको, पृथ्वी को, पृथ्वी की अन्य शोषित जातियों, नस्लों, जीव-जन्तुओं तथा गरीबों को पितृसत्तात्मक पूँजीवादी अधिकारी वर्गों से तथा उनकी गलत व्यवस्था से बचाने का दायित्व अपने ऊपर ले लिया ।"[9] पृथ्वी और स्त्री को तथा अन्य उपेक्षित वर्गों को पितृसत्तात्मक पूँजीवादी शोषण से बचाने के लिए प्रकृति के साथ मिलकर जीने की मन्दा की इच्छाशक्ति पारिस्थितिक स्त्रीवाद के तहत आती है । पर्यावरण के सभी चराचरों के अस्तित्व के लिए भूमि और भूमि के समानधर्मी स्त्री को ठीक रूप से पोषण करना चाहिए । 'इदन्नमम' की नायिका मन्दा ऐसी नारी का उदाहरण है, जो अपनी ऊर्जा, शक्ति और समूचा जीवन गाँव के वंचित एवं दुर्बल जनता के लिए समर्पित करती है । विजय बहादुर सिंह के शब्दों में "बऊ परंपरागत पुराने ख्यालों वाली हैं तो मन्दा स्त्री की यातना, सनातन निर्वासन और पुरुष दिमाग की सांस्कृतिक चालाकियों और सामाजिक बदमाशियों की पीड़ा और व्यथा से भरी-भरी और सचेत । उसमें अपार सहानुभूति और करुण गाथा है ।"[10] मन्दा अपने जीवन की विषमताओं को सकारात्मक ऊर्जा में बदलकर, सोनपुरा के लोगों को राजनीतिक षडयंत्रों और शोषणों से मुक्त करने के लिए प्रयत्नरत है ।

उपन्यास का शीर्षक 'इदन्नमम' का अर्थ है 'यह मेरे लिए नहीं' अर्थात् सबके लिए है । नायिका मन्दा अपने लिए नहीं, आत्मनिर्भर और विकसित सोनपुरा के सृजन के लिए अपनी ज़िन्दगी समर्पित करती है । उपन्यास के अंत में मकरन्द डॉक्टर बनकर सोनपुरा में आता है । लेकिन मन्दा से मुलाकात नहीं होती । यह पाठकों में बड़ी विषमता पैदा करती है । लेकिन उपन्यासकार यह स्थापित करना चाहती है कि मकरन्द के आने या न आने से,

मन्दा की ज़िन्दगी में कोई परिवर्तन नहीं होता है । मैत्रेयी पुष्पा ने नारी चरित्रों का विश्लेषण इस प्रकार किया है कि वे पुरुष के बिना भी जी सकती हैं । मन्दा अपना समूचा जीवन गाँव वालों के सुधार के लिए समर्पित करती है । मैत्रेयी पुष्पा ने स्त्री के प्रति होने वाले सभी समस्याओं का सामना करते हुए पारिस्थितिकी और उससे जुड़े गाँववालों का संरक्षण करनेवाली सशक्त नारी के रूप में मन्दा को प्रस्तुत किया है । "मन्दा केवल परंपरागत खेत-किसानी वाला सनातन दिमाग नहीं है । नई सामाजिक-आर्थिक चुनौतियों और राजनीतिक कतर-ब्यौंतों को समझती हुई वह उस अगले मशीनी युग (कलयुग) को लेकर भी सजग है जिनमें नई मनुष्यता को अपना सफर तय करना है ।"[11] मन्दा की लडाई अस्पताल और निजी जायदाद के लिए नहीं, बल्कि भारत के साधारण गाँववालों के संतुलित पर्यावरण के लिए है ।

संदर्भ

1. रोहिणी अग्रवाल – सवालों का कठघरा और इक्कीसवी सदी का स्त्री लेखन, पृ.48
2. मैत्रेयी पुष्पा – इदन्नमम, पृ.154
3. मैत्रेयी पुष्पा – इदन्नमम, पृ.162
4. मैत्रेयी पुष्पा – इदन्नमम,पृ.306
5. मैत्रेयी पुष्पा – इदन्नमम,पृ.310
6. मैत्रेयी पुष्पा – इदन्नमम, पृ.307
7. मैत्रेयी पुष्पा – इदन्नमम, पृ.**322**
8. मैत्रेयी पुष्पा – इदन्नमम,पृ.197
9. डॉ.के वनजा – इकोफेमिनिज़्म, पृ.17
10. विजय बहादुर सिंह –समय और संवेदना, पृ.72
11. विजय बहादुर सिंह –समय और संवेदना,पृ.73

'भूमिका और अन्य कहानियाँ ' में चित्रित सामाजिक समस्याएँ

डॉ. टेसी पौलोस
असिस्टेंट प्रोफेसर
नैपुण्या कॉलेज, पोंगम, कोरट्टी

प्रस्तावना

हर समाज बदलने की चाह रखते हैं। अच्छे सामाजिक आदर्शों को देश के लिए हितकर मानकर उसे बनाए रखने में अपने देश की भलाई संभव है। संजीव अपनी कहानियों के माध्यम से इस बात पर जोर देते है। संजीव एक ऐसा रचनाकार है जो भारतीय समाज की वास्तविकता एवं जीवन संघर्ष को पेश करके एक उचित एवं अलग समाज बनाना चाहते हैं। एक श्रेष्ठ रचनाकार व्यापक जनजीवन के साथ जुड़कर अपने युग की जीवन स्थिति के विविध स्तरों और जनसमस्याओं पर नज़र रखता है। अगर रचनाकार ऐसा नहीं करता तो उसकी रचना व्यापक और प्रभावित नहीं बन सकता। रचनाकार के रचना कर्म की सामाजिक भूमिका से ही उसके रचनात्मक महत्व का उचित मूल्यांकन हो सकता है। संजीव समकालीन जनवादी कहानी धारा के संवेदनशील कहानीकार है। 'भूमिका और अन्य कहानियां' संजीव द्वारा लिखी गई कहानी संग्रह है, जिसमें कई सामाजिक समस्याएं व्यापक एवं यथार्थ रूप में चित्रित किया गया है।

सामाजिक यथार्थ प्रतिबिंबित कहानियाँ

' भूमिका और अन्य कहानियाँ ' कहानी संग्रह में सामाजिक यथार्थ की व्यापक फलक दिखाई देती है। स्वार्थी नेता एवं पूंजीपति वर्ग, रुपए तथा गुंडागर्दी के बल पर चुनाव जीतने के बाद हम पर अत्याचार करवाते हैं और फिर बाद में हमें मदद करने का झूठा नाटक भी करते हैं। रुपयों की लालच में सही और गलत को हम पहचान नहीं पाते। ' भूमिका ' कहानी इसी तथ्य को उजागर करती है। इस कहानी के द्वारा संजीव आज की नेतागिरी का पर्दाफाश करते हैं। कीर्ति पाने और लोगों को भड़काने के लिए नेताओं का तरीका यह है कि पहले वे छुपकर बेरहमी से गांवों को उजाड़ते हैं और फिर खुद ही आकर सबके सामने गांव वालों की मदद करने का दिखावा करते हैं। इससे लोगों की सहानुभूति और अखबारों के द्वारा कीर्ति प्राप्त करते हैं। अपनी निजी मौज - मस्ती के यात्राओं को सरकारी काम का रूप देकर सरकारी खज़ाने का लूट भी करते हैं। " बिल टिकट रैली के नाम पर फोकट में शहर घुम आना, पार्टी की धौंस जमाकर ट्रक वालों, दुकानदारों, दारूखानों, रंडियों से पैसे झाड़ लाना, लाठी, बल्लम, छूरा, बम की बदौलत बूथ कैप्चर कर एलेक्शन जीत लेना और फिर इन्हीं के खिलाफ लिक्चर फोंक आना राजनीति है तो हम साले किस लीडर से कम है?" (1) आज के जमाने में नेताओं के हर चाल को लोग समझते

हैं, फिर भी आज तक हालात में कोई बदलाव नहीं हुआ है। अगर हम चाहे तो देश की स्थिति में बदलाव ला सकता है। उसके लिए पहले जनता को अपने सामर्थ्य और अधिकार को पहचानना होगा। नेता लोग नहीं चाहते कि जनता पढ़ लिखकर समर्थ बने। वे लोग हमेशा सामान्य जनता को अंधेरे में रखना चाहते हैं और समय आने पर उन्हें बहकाकर अपनी इच्छानुसार हथियार के रूप में इस्तेमाल भी करते हैं।

ऐसे ही सामान्य जनता इन नेता वर्ग के गुलाम बनकर रहते हैं। आदिवासियों की प्रगति के लिए उनके बीच काम करने के लिए एक महिला कहानी में आती है। लेकिन गुंडों द्वारा लगाई हुई आग से एक बच्चे को बचाते वक्त उसकी एक आंख नष्ट हो जाती है। मन्नान, पीटर, सावंत, गोराई आदि जब उसे देखने आती है तो वह कहती है कि " रामायण में रावण से भी अधिक शक्तिशाली हनुमान है। अकूत ताकत है हनुमान के पास, लेकिन जिसे अपनी ताकत का पता नहीं - - - - - - - - और उसका इस्तेमाल क्या हुआ? – – – – – – – जिंदगी भर राजा रामचंद्र की गुलामी करता रहा, जिन्होंने उसे रावण और मेघनाथ के खिलाफ इस्तेमाल किया। – – – – – – और और आपके साथी भी हनुमान है।''(2) सही - गलत समझ कर गलत के विरुद्ध संघर्ष करने की शक्ति साधारण जनता में है। किन्तु साधारण जनता उस क्षमता का सही ढंग से उपयोग नहीं करते।

ग्रामीण जीवन में व्याप्त अंधविश्वास तथा लोगों के आपसी संबंधों को उजागर करती है ' महामारी '। महामारी फैलने के बाद गांव की जो हालत बनती है उसका यथार्थ चित्रण है यह कहानी। कथा नायक वैशाख बीस साल बाद भी गांव में कोई परिवर्तन महसूस नहीं करता है। स्वार्थी राजनेताओं की दोगली नीति पर प्रहार करती है ' चुतिया बना रहे हो '। मुख्यमंत्री के कारनामों से नाराज़ होकर हाईकमांड उन्हें पद से हटाकर सूर्यभान सिंह को कुर्सी पर बिठा देती है। सूर्यभान सिंह को इलेक्शन में जिताया जाता है और ठेकेदारों के बिल पहले पास होते हैं, कागजी कार्रवाई बाद में। पद निकल जाने से जख्मी मनबोध हर जगह कहकर घूमते हैं कि अब कितना करप्शन बढ़ गया है। हमारे देश में जाति के आधार पर चुनाव लड़े जाते हैं और जीत भी जाते हैं। यह एक वास्तविकता ही है। सूरजभान सिंह उस इलाके से चुनाव लड़ते हैं जहां उनकी जाति के लोग ज्यादा रहते हैं। इस कहानी में गांवों की राजनीति के समकालीन यथार्थ पर कहानीकार गहरी पकड़ रखता है। असलियत यह है कि पद और कुर्सी हथियाने के बाद स्वार्थी नेता लोग देश को लूटने का ही काम करते रहते हैं।

आज नौकरी पाने के लिए योग्यता नहीं बल्कि रिश्वत की आवश्यकता होती है। किसी बड़े व्यक्ति का रिश्तेदार होना जरूरी है। बड़े-बड़े अफ़सर जो सिफारिश के बल पर ही कुर्सियां हथिया लेते हैं, हमेशा अपने निजी कामों में व्यस्त रहते हैं। वे केवल उन्हीं लोगों से मिलते हैं जिनसे फायदे की उम्मीद हो। अपने मातहत काम करने वाले लोगों को जैसे वे फुटबॉल ही समझ रखा है इन अफसरों ने। इसी अफसरशाही पर व्यंग्य करती है 'फुटबॉल' नामक कहानी। सत्ता की हर शाखा पर ऐसे उल्लू बैठे हैं जिनकी पोल खोलना कहानीकार का उद्देश्य है। फ्लैशबैक शैली का समुचित उपयोग करके कहानीकार ने बरसों से चली आई अफसरी परंपरा पर व्यंग्य किया है। बिल्कुल कम शब्दों के माध्यम से सामाजिक विसंगतियों पर प्रहार किए हैं। जिस तरह से उसका बाप नौकरी के लिए अफसर की मिन्नतें कर रहा था, वह देख कर उसे लगता है, " जैसे वह उसका बेटा नहीं, बेटी हो - जबरन जिसकी

सर्वगुण-संपन्नता बताकर रिश्ते के लिए घिघिया रहा हो।" (3) सामाजिक विसंगतियों और कुरूपताओं पर कहानीकार की कलम गहरी चोट करती है।

गाय - बैलों की तरह बेटे - बेटियों की खरीदी-बिक्री करने से हमारा समाज आज भी पीछा नहीं हटा है। जवान बनने के बाद बेटा या बेटी को अपनी इच्छा से शादी करने का पूरा का पूरा अधिकार है। परंतु जिसके साथ आगे की जिंदगी बितानी है उस जीवनसाथी को चुनने का अधिकार अभी भी हमारे बुजुर्ग अपने ही पास रखे हुए हैं। विवाह के पश्चात जो कुछ नुकसान होता है उन सब का जिम्मेदार बहू को ही ठहराया जाता है। आज भी हमारे समाज की मानसिकता में कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ है। आदमी को गाय-बैल समझने की भूल न करने का संदेश देती है 'अंतराल' नामक कहानी। औरत की मजबूरी, दर्द, गांव के लोगों की सोच, उनका रहन-सहन आदि को गांव ही की भाषा में इस कहानी में अभिव्यक्त की गई है। गांव की भाषा पर कहानीकार की गहरी पकड़ है।

"जब नशा फटता है" नामक कहानी जात-पांत की समस्या पर लिखी गई है। बैजूपुर कुनबे के सभी लोग निर्णय करते हैं कि अत्याचारी, अन्यायी हिंदू धर्म में नहीं रहना है। परंतु उनके सामने समस्या यह है कि 'जाए कहां?' कुछ कहते हैं ईसाई में, तो कुछ मुस्लिम धर्म में। ईसाई धर्म के प्रति आकर्षित होने का कारण वहां पढ़ने लिखने का अवसर है। मुस्लिम धर्म के प्रति वे इसलिए आकृष्ट होते हैं क्योंकि उसमें सभी साथ-साथ नमाज पढ़ते हैं। परंतु यह सच्चाई किसी से भी छिपी नहीं है कि वहां भी स्वास्थ्य नहीं है। 'डॉ बाबासाहेब अंबेडकर ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया था, हम भी उसी में जाए'- ऐसा बताते हुए सभी को सोचने के लिए निर्देश दिया जाता है। अपने सपनों का चिंता करते हुए सुअरों से भी बदतर जिंदगी जीने को अभिशप्त है यह लोग। जिन्हें छूना तो दूर, मारते समय भी ढेले से मारते हैं लोग, ताकि, छूत न लग सके। यह अनपढ़, गंवार, पिछड़े वर्ग के लोग जिन्हें न बोलने का अधिकार है, न खाने का और न ठीक से रहने का। शादी के नाम पर उनको बदतर ज़िन्दगी जीनी पड़ती है।

असली ज़िन्दगी और नाटक की ज़िन्दगी में अंतर है। स्टेज पर राम, लक्ष्मण, सीता, द्रोपदी जैसे आदर्श पात्रों को देखने के पश्चात उनका रोल करने वाले व्यक्ति जब सिगार पीना, पान खाना जैसे गलत काम करते हैं तब बालक मन को आघात पहुंचता है। सीता का रोल करने वाली स्त्री जब उत्तेजक ढंग से नृत्य करने लगती है, तब बच्चे उसके नर्तकी रूप को ही याद रखते हैं। दुबारा सीता की भूमिका में आने पर, आदर्श पतिव्रता के रूप में स्वीकारने के लिए उनका बालमन तैयार नहीं होता है, क्योंकि उन्हें उसका उत्तेजक रूप ही दिखता है, सावित्री बनने के बाद भी। बाल मनोविज्ञान पर केंद्रीकृत कहानी 'नौटंकी' इसी तथ्य को स्पष्ट करती है।

'मुर्दगाह' कहानी मौजूदा हालातों पर प्रहार करती है और हमारे सामने कई सवाल उपस्थित करती है। हिन्दू-मुस्लिम दंगा होने के बाद कमीनगी, महंगाई और दहशत हमारे समाज में उत्पन्न होता है। सामान्य आदमी तो यह दहशत चाहता नहीं है, परंतु उसके चाहने न चाहने से कोई फरक नहीं पड़ता है। मनोहर चाचा कहते हैं "नेक इंसानों पर क्या-क्या सितम ढाए जा रहे हैं। दौलतमंद मुर्दों के फिर से कितने ताजमहल बने, जंग कहां-कहां

छेड़ने वाले हैं जंगखोर, अमीरों को अमीर और गरीबों को गरीब बनाने की कौन-कौन सी चालें चली जा रही है.....।''(4) मुस्लिम परिवेश को जीवंत करती भाषा यानी अरबी-उर्दू शब्दों का प्रयोग हर चरित्र की विशेषताओं से अवगत कराती है। मनोहर चाचा जो मुसन्नी यानी मुस्लिम वेश्या की बेटी को अपनाता है, सच्चाई सामने लाने के लिए अपने प्राणों की कुर्बानी देता है, जिसकी वजह से हिन्दू-मुस्लिम दंगा होते होते टलता है। मनोहर चाचा हिन्दू होने के बावजूद भी उसके जिस्म को कब्र में डालकर, फतेह पढ़कर इस्लाम और अब्बा लौटते-लौटते देखते हैं कि "न कोई फूल, न कोई अगरबत्ती फिर भी ऐसी खुशबू कि कुछ न पूछिए। यह इंसानी रिश्तों की खुशबू थी।"(5) इस्लाम और अब्बा सोचते है कि मनोहर चाचा की मृत्यु पर आंसू नहीं बहाते बल्कि गर्व से सीना उन्नत हो जाता है।

प्रदीप और ललिता की प्रेम कहानी है 'सीपियों का खुलना'। प्रदीप एक पत्र में उपसंपादक है और ललिता एक दफ्तर में नौकरी करती है। दोनों पर अपने अपने परिवार का दायित्व है। प्रदीप का मानना है कि परिवार के साथ साथ हम इस देश और जाति के भी देनदार हैं। परंतु दुर्भाग्य है कि प्रदीप की नौकरी कभी भी नष्ट होने की संभावना है। जमींदारों के खिलाफ चलाए जा रहे गुप्त अभियानों में भाग लेने के लिए उसे कभी भी जेल हो सकती है। तब दो परिवारों का बोझ अकेली ललिता को उठाना पड़ेगा। इस डर से वह प्रदीप के साथ शादी से इनकार करती है। यह कहानी प्रेम के व्यवहारिक पक्ष का यथार्थ रूप को दिखाता है।

संजीव एक अलग किस्म के लेखक है। वे उस बीच हुए सामाजिक, वैयक्तिक, पारिवारिक, सृजनात्मक, वैचारिक और अन्य अनेक बदलावों को अपनी रचनाओं में रेखांकित करते हैं और अपने ढंग से समय के केंद्र में अपनी उपस्थिति दर्ज करते हैं। संजीव की कहानियां उनकी सुघड़ता, दृष्टि संपन्नता और निरंतर अन्वेषण चेतना का साक्ष्य देती है। घटना बहुल सामाजिक यथार्थ के साक्षी लेखक होने के साथ-साथ मन की निगूढ़ वृत्तियों में उतरने और रचना के अंत:सौंदर्य की अनवरत खोज करने में वे समर्थ भी है। उनके कथा-संसार में सृजन का सौंदर्य, हार्दिक स्पर्श और मार्मिकता कहीं अधिक मिलेगी। रचना में विचारों का संकलन अत्यंत कुशलता के साथ करते हैं और जिनकी कहानी को पढ़कर पाठक को एक वैचारिक संपन्नता भी मिलती है। कहानी में कितनी गहरी वैचारिक लड़ाई लड़ी जा सकती है, घटनाओं एवं पात्रों द्वारा अपने समय में किस प्रकार हस्तक्षेप किया जा सकता है - ये कहानियां इन सब का साक्ष्य बनती है।

संजीव की प्रत्येक कहानी में आशावादी स्वर गूंजता है। एक स्वस्थ दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है यह कहानियां। बाल मनोविज्ञान, सामाजिक विद्रूपताएं और विसंगतियां, बालविवाह तय करने के दुष्परिणाम, सच्चाई के रास्ते से भटका समाज, अन्याय, अत्याचार, शोषण, महामारी, ग्रामीण जीवन में व्याप्त अंधविश्वास, सांप्रदायिकता की आग में सदियों से झुलसती भारतीय आम जनता - सब का यथार्थ चित्रण करती है संजीव की कलम।

सन्दर्भ ग्रंथ

1. संजीव : भूमिका और अन्य कहानियाँ : पृ. सं. 12
2. संजीव : भूमिका और अन्य कहानियाँ : पृ. सं. 19
3. संजीव : भूमिका और अन्य कहानियाँ : पृ.सं.53
4. संजीव : भूमिका और अन्य कहानियाँ : पृ. सं. 98-99
5. संजीव : भूमिका और अन्य कहानियाँ : पृ. सं.113